Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामवेद

आध्यात्मिक मुनिभाष्य

DONATION

8164

20

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय
तिशान आदि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या...........

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विश्वनाथ जी द्वारा प्रदत्त संग्रह 20

★ ओ३म् ★

स्वामी ब्रह्ममुनि ग्रन्थमाला पुष्प ६९

DONATION

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

8164

सामवेद

आध्यात्मिक मुनिभाष्य

पूर्वाचिक

रचयिता या हिन्दी भाष्यकार

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

पुस्तक मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान)

न्यू देहली १

प्रथमवार एक हजार | फाल्गुन २०२६ वि० फरवरी १९७० ई० | मूल्य लागत मात्र रु० ७ पै० ५०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

मुद्रक :

शिरीशचन्द्र शिवहरे, एम० ए०
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस,
अजमेर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

उपहार

श्री । वेदाचार्य पं० विश्वनाथ जी
~~प्रिय~~ .... के करकमलों में

.... उपलक्ष्य में

~~सादर~~
सप्रेम यह "सामवेद-आध्यात्मिक मुनिभाष्य" समर्पित है।

समर्पयिता—

स्वामी ब्रह्ममुनि

२८।६।१९८० ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति

श्री पं० प्रो० विश्वनाथजी विद्यालङ्कार विद्यामार्तण्ड भूतपूर्व वेदमहोपाध्याय विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी—

"श्री स्वामी ब्रह्ममुनिजी आर्य जगत् में एक प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हैं, जिन्होंने कि वेदानुसन्धान को अपने जीवन का एक-मात्र ध्येय बनाया हुआ है। आपने अपनी लेखनकलाद्वारा वैदिक साहित्य को सुन्दर रूपमें पल्लवित तथा पुष्पित किया है। आपने सामवेद पर अध्यात्मपरक हिन्दी भाष्य लिखा है। इस हिन्दी भाष्य के कई कठिन मन्त्रों की व्याख्या स्वामीजी के मुख से मैंने सुनी है। इन पर सायणाचार्य ने तथा वर्तमान के वैदिक विद्वानों ने जो अर्थ किये हैं उनकी अयथार्थता को दर्शाकर, स्वामी जी ने प्रमाणों तथा तर्क के आधार पर, इन मन्त्रों के यथार्थ भावों पर अपूर्व प्रकाश डाला है। "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" इस वैशेषिक सूत्र का अनुसरण करते हुए, श्री स्वामीजी ने जो बुद्धिगम्य अर्थ दर्शाए हैं वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं। स्वामीजी के भाष्य से सामवेद के मन्त्रों के कई गूढ़ स्थल सुस्पष्ट हो जायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

विश्वनाथ विद्यालङ्कार, विद्यामार्तण्ड
काँवली रोड, देहरादून
२० अप्रैल, १९६९ ई०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

ऋग्-यजुः-साम-अथर्व नाम से चार वेद हैं, इनमें साम का स्वरूप निम्न प्रकार है—

१—'साम' शब्द "सातिभ्यां मनिन्मणिनौ" (उणादि० ४। १५३) सूत्रानुसार "षो अन्तकर्मणि" (दिवादि०) धातु से बना है। 'कर्मणोऽन्तः-अन्तकर्म' कर्म का अन्त 'अन्तकर्म'† कहलाता है। 'स्यति कर्मान्तमेति'—कर्मान्तस्वरूप साम हुआ। ऐसा निरुक्त में पक्षान्तर से कहा है "स्यतेर्वा" (निरु० ७।१२)।

२—ज्ञान, कर्म, उपासना वेदत्रयी—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के विषय हैं। इससे सामवेद उपासनावेद है, यही अन्तकर्म—कर्मान्तस्वरूप उपासना है साम है। "देवाः सोमं दिवः साम्ना समानयन् तत्साम्नः सामत्वम्" (तै० सं० २।२।८।७) मुमुक्षु महानुभाव साम अर्थात् उपासनाद्वारा द्योतनात्मक मोक्षधाम से सोम—आनन्दरसरूप परमात्मा को हृदय में ले आए। शब्द तथा अर्थ की दृष्टि से 'सामन्'—साम है 'समानयन्' में (समान्-अयन्) पुनः 'अयन्' क्रियारूप को पृथक् कर देने से 'समान्' के अन्तिम दीर्घ आकार को आदि में 'स' के साथ 'सा' रूप में देखने से 'सामन्-साम' होगया, यह अल्पभेद से शब्दसाम्य में अर्थ-प्रधान निरुक्ति है।

३—निरुक्त में पक्षान्तर से "असु क्षेपणे" (दिवादि०) से 'साम' शब्द बनाया है "अस्यते····" (निरु० ७।१२) 'अस्तमृचि' ऋचा में ऋग्वेद के मन्त्र में क्षिप्त रखने से साम है। सामवेदीय उपनिषद् में कहा भी है "ऋच्यध्यूढं साम गीयते" (छान्दो० १। ६।१) ऋचा में आश्रित साम गाया जाता है। 'सा-ऋक् मन्त्र' और 'अम-साम मन्त्र' दोनों मिलकर 'साम'। "प्राणो वा अमो

† "राजदन्तादिषु परम्" (अष्टा० २।२।३१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक् सा तत् साम" (जै० उ० ४।२३।३) वाक्—जप 'सा' है, प्राण—अर्थसहित जपानुभव 'अम' है "तज्जपस्तदर्थभावनम्" (योगदर्शन १।२८) ओ३म् का जप और अर्थानुभव ही साम है।

४—पक्षान्तर से निरुक्त में "समं मेने साम" (निरु० ७।१२) सम—समान अर्थात् ईश्वर के गुणकर्म के समान अपने गुणकर्मों को मैं अनुभव करूं ऐसा उपास्य के गुणकर्मों का उपासक में आ जाना भी साम है "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि" (यजु० १९।९) परमात्मन् तू तेजःस्वरूप है मुझमें तेज धारण करा। तथा "यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः" (ऋ० ८।४४।२३) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! जबकि मैं तू हो जाऊं और तू मैं होजा तो तेरे आशासन–आदेश और हित-कामनाएं इस जीवन में सत्य हो जावें पूरी हो जावें। लोहे का गोला जैसे अग्नि के प्रखरताप से अग्निजैसा लाल या प्रकाशमान होजाता है ऐसा ही 'समं मेने' साम है।

५—यद्यपि चारों वेदों का मुख्य प्रतिपाद्यत्व परमात्मा में स्वामी दयानन्द ने प्रदर्शित किया है जैसा कि कठोपनिषद् में भी घोषित किया है "सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति····तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्" (कठो० १।२।१५) सारे वेद 'ओ३म्'—ब्रह्म परमात्मा को कहते हैं लक्षित करते हैं, और फिर सामवेद का लक्ष्य तो परमात्मा ही है, कहा भी है "ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति" (निरु० १३।७) अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों से शंसन करते हैं यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन—यज्ञ करते हैं और सामवेद के मन्त्रों से स्तवन—स्तुति करते हैं। साम के गाने का वर्णन आता है "उभे वाचौ वदति सामगा इव। गायत्रं त्रैष्टुभं चानुराजति॥ उद्गातेव शकुने साम गायति।" (ऋग्वेद २।४३।१-२) इन वचनों में सामगान लक्षित है। साम गाना है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक गाने को साम नहीं कहते और न यह कि सामसन्त्र केवल गाना ही है अपितु परमात्मा की स्तुतिरूप गाना साम है, जैसे लोक में 'भजन बोलो या भजन गाओ' कथन में 'भजन' गाने को कहते हैं परन्तु प्रत्येक गाने को भजन नहीं कहते हैं, अपितु ईश्वर स्तुति जिसमें हो ऐसे गाने का नाम भजन लक्षित है। 'भजन-भक्ति' एकार्थक शब्द है। यही बात छान्दोग्योपनिषद् में कही है "ऋच्यध्यूढं साम गीयते" (छान्दो० १।६।१) ऋच्—स्तुति में अधिष्ठित साम गान होता है "ऋच् स्तुतौ" (तुदादि०) स्तुति-शून्य गाना साम लक्षित नहीं अपितु स्तुति ही गान—परमात्मगान साम है। अतः साममन्त्रों में परमात्मा से भिन्न वस्तुओं का गुणवर्णन या यजन याग—होम प्रकार को देखना उनसे यज्ञ हवन करना सामवेद के लक्ष्य से बाहिर की बात है अन्यथा व्यवहार है। केवल परमात्मा की चर्चा करना सामवेद का ध्येय है अतएव सामवेद का महत्त्व अधिक है इस बात को ऋग्वेद में स्पष्ट किया है "यूयमृषिमवथ सामविप्रम्" (ऋ० ५।५४।१४) अर्थात् हे लोगो ! तुम सामवेद के ज्ञाता ऋषि की रक्षा करो, उससे प्रीति करो, उसे तृप्त करो, उससे श्रवण करो, उसे अपना स्वामी—अध्यक्ष बनाओ "अव रक्षणप्रीतितृप्तिश्रवणस्वाम्यर्थ....." (भ्वादि०) स्वामी दयानन्द ने भी सामवेद को उपासना का वेद बतलाया है। ज्ञान, कर्म, उपासना वेदत्रयी का विषय कहा है ऋग्वेद में ज्ञानकाण्ड यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और सामवेद में उपासनाकाण्ड कहा है। अतएव सामवेद में देवतारूप अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि नाम केवल परमात्मा के वाचक हैं, अन्य वेदों में अन्य वस्तुओं के भी नाम होने सम्भव हैं।

सामवेद पर अनेक भाष्य होते हुए इस भाष्य करने का प्रयोजन:—

सायणाचार्य का भाष्य प्रायः कर्मकाण्डपरक है जो सामवेद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लक्ष्य से दूर का है, अन्य आर्य विद्वानों के भाष्यों में भी सायणभाष्य का अनुसरण कर मन्त्रों के कर्मकाण्डपरक तथा अग्नि, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि देवताओं वाले अर्थ भौतिक पदार्थ-परक किये हैं। किन्हीं विद्वान् ने अपने भाष्य की भूमिका में "सारे मन्त्रों का आध्यात्मिक प्रक्रिया में ही अर्थ किया गया है" यह प्रतिज्ञा करके भी तीस प्रतिशत ३०% मन्त्रों के आध्यात्मिकता से भिन्न अर्थ किये हैं, अपितु किन्हीं अन्य विद्वान् † ने आध्यात्मिक अर्थ करने की प्रतिज्ञा को बहुत निभाया परन्तु पांच प्रतिशत तो अन्य अर्थ हो ही गए, तथापि उनके आध्यात्मिक अर्थों में प्रमाणशून्य शब्दव्युत्पत्ति या शब्दार्थों में भारी खेंचतान है, साथमें देवतावाचक अग्नि, इन्द्र, सोम आदि नाम जो केवल परमात्मा के ही नाम होने चाहिएं उन्होंने बहुत स्थानों पर भावात्मकरूप दे दिया, भाव के अन्दर न घटने वाले गुणों का अन्यथा आरोप कर दिया। उदाहरणार्थ जब इन्द्र देवता है तब वह परमात्मा और उस समय सोम का भक्तिभाव या भक्तिरस अर्थ कर देना तो ठीक है परन्तु जब सोम देवता है तब उसका अर्थ परमात्मा होना चाहिए इन्द्र का अर्थ जीवात्मा, सोम देवता का परमात्मा अर्थ न करके वही भक्तिभाव या भक्तिरस अर्थ कर डालना उचित नहीं जिसमें कि परमात्मा के गुणों का भारी वर्णन है, यह भारी भूल है, तब दोनों में भेद क्या रहा? इन्द्रदेवता परमात्मा उसके लिये सोम (भक्तिभाव) पुनः सोम देवता होने पर भी वह सोम देवता इन्द्र—परमात्मा के लिये रहा, फिर दो पर्व या काण्ड ऐन्द्र पर्व या काण्ड और पवमानपर्व या काण्ड (सोमपर्व या सोम काण्ड) अन्यथा रहे जब दोनों पर्वों— काण्डों में अदेवता सोम का अर्थ भी भक्तिभाव या भक्तिरस और देवता सोम का

† श्री भगवदाचार्य रामानुज सम्प्रदाय के विद्वान्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अर्थ भक्तिभाव या भक्तिरस कर दिया तब सोम के अदेवता और सोम के देवता होने में क्या भेद पड़ा केवल वाग्विनोद ही है और देवताविज्ञान के विपरीत है। अपितु अग्नि, इन्द्र, सोम आदि का अर्थ परमात्मा करके ही कृतार्थता नहीं होनी चाहिए किन्तु जीवन में घट सकने वाली विशिष्ट आध्यात्मिकता उपादेय है वह होनी चाहिए जो हमारे इस भाष्य में मिलेगी। वाक्यार्थ भी सुसङ्गत और सुबोध सरल मधुर भाषा में होगा।

हमारे इस भाष्य में औरों की अपेक्षा यह एक विशिष्टता होगी कि हमने मन्त्रार्थों में मन्त्रों के ऋषिनामों का भी उपयोग लिया है अतएव ऋषिनामों को यौगिकरूप में उपाधिवाचक समझा है, छान्दोग्योपनिषद् में कहा है वेद के विद्यार्थी को "यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन् स्यात् तां तेवतामुपधावेद् येन च्छन्दसा स्तोष्यन् स्यात् तच्छन्दः" (छान्दो० १।३।९-१०) मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द पर ध्यान रखते हुए वेद पढ़े। कारण कि छन्द है पाठ्य "छन्दो भाषाधर्मः" देवता है विषय और ऋषि है उपाधि। ऋषि यौगिक या उपाधिवाचक नाम है इसमें निरुक्त के सङ्केत हैं "ऋषिः कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्" (निरु० ३।११) स्तुतियों का कर्ता कुत्स ऋषि है, (ऋ० १०।९८) ऋषि देवापि "देवापिः-देवानामाप्त्या" (निरु० २।११) देवों की आप्ति करने वाला देवापि ऋषि है। इत्यादि। ऋषियों का देवताओं या मन्त्रविषयों के साथ सम्बन्ध—उपयोक्ता उपयोज्य, ज्ञाता ज्ञेय, याचक याचनीय, उपासक उपासनीय आदि हैं, जैसा "या ओषधीः पूर्वा जाताः" (ऋग्वे० मण्ड० १०।९७) का देवता ओषधि ऋषि भिषक् वैद्य है "बृहस्पते प्रथमं वाचो...." (ऋ० १०।७१) का देवता ज्ञान, ऋषि बृहस्पति। "न वा उ देवाः क्षुधमिद् वधं दधु...." (ऋ० १०।११७) का देवता धनान्नदानप्रशंसा, ऋषि भिक्षुक "कदा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्वन्तर्वरुणे भुवानि" (ऋ० ७।८६-८९) का देवता वरुण परमात्मा, ऋषि है वसिष्ठ—परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक। स्कन्द स्वामी ने भी ऋग्वेद के भाष्यप्रसङ्ग में लिखा है "तत्रार्षदेवतयोरर्थबोधने-उपयुज्यमानत्वात् ते दर्शयिष्येते" ऋषि देवता मन्त्रार्थ में उपयुक्त है। ऋषि यौगिक उपाधि वाचक नाम है और देवताओं के साथ विशेष सम्बन्ध है मन्त्रार्थ में उपयुक्त है †इस विषय में विशेष देखो हमारी लिखी "वेद में इतिहास नहीं" या "वैदिकवन्दन" पुस्तक में।

हम देवतानिर्देश प्रतिमन्त्र पर नहीं करेंगे, आग्नेयपर्व में अग्नि, इन्द्रपर्व इन्द्र, पवमान पर्व में पवमान सोम हैं इनमें भिन्न देवता का निर्देश अवश्य कर देंगे। छन्दों का ढंग भी ऐसा ही होगा जहां नवीन छन्द होगा उसका नाम दिया जावेगा।

सामवेद में तीन आर्चिक—ऋचासमूह हैं जोकि पूर्वार्चिक, महानाम्न्यार्चिक, उत्तरार्चिक। इनमें विभागक्रम दो हैं शाखाभेद से, एक क्रम है 'प्रपाठक, अर्द्ध, दशति (प्रायः दशमन्त्रगण) का द्वितीय क्रम है अध्याय, खण्ड। हम अपने इस भाष्य में अध्ययन सौगम्य की दृष्टि से अध्याय, खण्ड को ही देंगे।

प्रथम कुछ अध्यायों में अङ्कस्वर सायणाचार्य के भाष्यवाले सामवेद के अनुसार दिए हैं पश्चात् अन्ततक वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित सामवेद संहिता के अनुसार दिए हैं यात्रादि में सायण भाष्य के उपलब्ध न होने से, अन्तर दोनों में शाखाभेद से थोड़ा ही है।

प्रेस के पुराना टाइप होने से रेफ और मात्राएं कहीं कहीं नहीं उठीं तथा टूट गई हैं, पाठक स्वयं ठीक कर लें।

स्वामी ब्रह्ममुनि

११ अगस्त, १९६६ ई० परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

---

†कहीं कहीं 'देवता लिङ्गोक्ताः' के समान 'लिङ्गोक्ता ऋषयः' भी मिलता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

सामवेद

आध्यात्मिक मुनिभाष्य

पूर्वार्चिक

आग्नेय पर्व, काण्ड

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने वाला उपासक†)

देवता – अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)
छन्दः—गायत्री १–३ खण्ड तक।

२ ३ १ २ ३१२ ३२३१२
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१ २र ३१२
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१॥

---

† "वाजयति—अर्चतिकर्मा" (निघं० ३।१४) तथा "वाजं बलम्" (निघं० २।९) वाजमर्चनं तद् बलंच भरन् यः स भरद्वाजः। "राजदन्तादिषु परम्" (अष्टा० २।२।३१)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (वीतये) अपने अन्दर तेरी व्याप्ति—प्राप्ति के लिये "वी गतिव्याप्ति·······" [अदादि०] एवं (हव्यदातये) निज को तेरी भेंट देने के लिये (गृणानः) स्तुत किया जाता हुआ 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययः' (आयाहि) आ—मेरी ओर गतिकर (होता बर्हिषि नि सत्सि) मेरे अध्यात्म यज्ञ का होता—सम्पादन करनेवाला ऋत्विक् बना हुआ अध्यात्म यज्ञ के सदन हृदयाकाश में "बर्हिः-अन्तरिक्षम्" [निघं० १।३] हृदयासन पर विराजमान हो।

प्रिय परमात्मन्! तू स्तुत किया जाता हुआ मेरी ओर आ, मेरा स्वार्थ है मेरे अन्दर अपने ज्ञानप्रकाशस्वरूप से व्याप्त प्राप्त होजा, परन्तु परमात्मन्! मैं केवल अपने ही स्वार्थ के लिये तो नहीं बुला रहा हूं तेरा भी स्वार्थ है निज समर्पण का, तू चेतन है और मैं भी चेतन हूं, चेतन को चेतन से प्यार होता है चेतन का चेतन सजातीय है, चेतन की चेतन के साथ आत्मीयता होती है। कृपा करके मेरे हृदयगृह में आ, विराजमान हो मुझे अपना बना मेरा समर्पण स्वीकार कर मैं तेरे अर्पित हूँ कर स्वीकार समर्पित हूँ मुझे अपने स्वरूप से प्रभावित कर ज्ञानप्रकाश से प्रतिभासित कर "आत्मनात्मानमभिसंविवेश" [यजु० ३२।११] स्वात्मा से मैं तुझ परमात्मा में समाविष्ट होऊं इस आकांक्षा को पूरी कर ॥१॥

ऋष्यादयः पूर्ववत्।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

त्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषाꣳ हितः।

३२ ३१ २ ३ १ २

देवेभिर्मानुषे जने ॥२॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता) तू समस्त यज्ञों—यजनीय श्रेष्ठकर्मों का सम्पादनकर्ता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्विक् (मानुषेजने देवेभिः-हितः) मानुष जगत् में—मनुष्य समाज में वर्तमान विद्वानों ने धारा—माना। तथा (मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता देवेभिः-हितः) मानव समाज में होने वाले-चलने वाले—किए जाने वाले एवं मानव समाज के निमित्त किए जाने वाले समस्त श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादनकर्ता ऋषियों ने तुझे धारा निर्धारित किया, एवं 'हितः-आहितः' अपने अन्दर आधान किया—संस्थापित किया। अतः मेरे अध्यात्म यज्ञ का भी होता बनकर मेरी ओर आ, हृदय घर में विराजमान हो।

परमात्मन्! मैं क्या कहूं? मात्र मेरे अध्यात्म यज्ञ का ही होता सम्पादनकर्ता तू नहीं, किन्तु मानव समाज में जितने भी यजनीय भावना वाले श्रेष्ठ कर्म हैं, भूखों को भोजन दान, पीड़ितों का त्राण, आतुरों को स्वास्थ्य प्रदान, गवादिरक्षाविधान, शिक्षण-प्रदान, योगानुष्ठान है वे तुझे लक्ष्य करके ही हैं:—तेरे आदेश से हैं, तेरे आशीर्वाद को पाने के लिये हैं, तेरे आश्रय से चलते फूलते-फलते हैं, अतः तू मेरी ओर आ, मेरे हृदय सदन में विराज इस अपने अध्यात्म यज्ञ को सिद्ध कर सकूं तेरे स्वरूप को पा सकूं दिव्य जीवन बना सकूं तेरे सङ्ग का अमृत पा सकूं ॥२॥

ऋषिः—काण्वो मेधातिथिः (मननशील मेधावी वक्ता का शिष्य परमात्मा में मेधा से अतनशील प्रवेशशील उपासक†)

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
३ २ ३१ २ ३१ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३॥

† "कण्वो मेधावी" (निघं० ३।१५) "कण शब्दार्थः" (भ्वादि०) वक्ता। "कण धातोः क्वन्" (उणादि० १।१५१)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्य यज्ञस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (होतारम्) सम्पादनकर्ता (दूतम्) अपने दिव्य गुणों के सन्देश के वाहक तथा प्रेरक "दूतो देवानामसि" [निरु० ५।१] "दु गतौ" [भ्वादि०] (विश्ववेदसम्) समस्त ऐश्वर्य वाले "वेदस्—धननाम" [निघं० २।१०] (सुक्रतुम्) सुप्रज्ञान वाले तथा सुप्रज्ञा के हेतुरूप सुकर्मा होते हुए "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] "क्रतुः कर्मनाम" निघं० २।१] (अग्निम्) परमात्मा को (वृणीमहे) वरता हूं "अस्मदो द्वयोश्च" [अष्टा० १।२।५९]।

परमात्मन्! तू मेरे अध्यात्मयज्ञ का होता—सम्पादनकर्ता ही नहीं अपितु अपने दिव्यगुणों—सृष्टिकर्तृत्व कर्मफलदातृत्व नियन्तृत्व आदि का सन्देशवाहक भी है। प्रिय! 'पत्ती-पत्ती तुझे दर्शा रही है, वसन्त तेरी याद दिला रही है, फूलकली तेरा राग सुना रही है, चन्द्र तारों की चाल तुझे बता रही है, विविध देह तेरा कर्मफलदातृत्व दर्शा रही है।' साथ में तू प्रेरक भी है मेरे जीवन का उत्कर्षक है—मुमुक्षुओं का मार्ग दर्शक है, शोभन प्रज्ञान वान् तथा शोभन प्रज्ञाप्रद शोभन कर्मकुशल तू मेरे अध्यात्म यज्ञ को प्रवृद्ध कर समस्त सुख-सम्पत्ति वाले हमें समस्त सुखसम्पत्ति का प्रसाद दें तुझे मैं वरता हूं ॥३॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण करने वाला उपासक)

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
१ २ ३ १र २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४॥

(अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (विपन्यया) हमारे द्वारा की गई विशिष्ट स्तुति—ध्यानोपासना से (समिद्धः शुक्रः-आहुतः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदीप्त किया हुआ, प्रकाशस्वरूप में आया हुआ, भली भांति हृदय में बिठाया हुआ—अपनाया हुआ (द्रविणस्युः) हमारे लिये ज्ञान-सुखैश्वर्य चाहने वाला "छन्दसि परेच्छायां चेति वक्तव्यम्, क्यच्" (वृत्राणि जङ्घनत्) ज्ञानसुखैश्वर्य के आवरकों—प्रतिबन्धकों अज्ञान रोग दुःखदारिद्र्य को भली प्रकार नष्ट करता है।

मानव जब परमात्मदेव की विशेष स्तुति-ध्यानोपासना करता है तो मानव के अन्दर परमात्मा प्रकाशित होकर अज्ञान आदि बाधकों को भलीभांति विनष्ट करके उपासक के ज्ञानसुखैश्वर्य को चाहता है—पूरा करता है अपितु विना मांगे ही सब कामनाएं पूरी होजाया करती हैं। सचमुच मनुष्य व्यर्थ चाहना को बढ़ा-बढ़ा कर अपने को अशान्त कर बैठता है। यदि एक परमात्मा की ही चाह रखे तो अन्य चाह के उठने का प्रसङ्ग ही न रहे। चाहनाओं के स्वामी के पालेने से। सम्पत्तिमान् को अपनाने का लाभ सम्पत्तिभागी बनना ही है ॥४॥

ऋषिः—उशनाः (अपने कल्याणार्थ परमात्मसङ्गति को चाहने वाला†)

१२ ३ १२ ३२ ३१२ ३२
प्रेष्ठं वो अतिथि ँ स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
२ ३ २ ३ १ २र
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वः) तुझ 'वः-त्वाम्-व्यत्ययेन बहुवचनम्' (मित्रम्-इव प्रियम्) मित्र-समान प्रिय को (वेद्यं रथं न) वेदि—पृथिवी "पृथिवी वै वेदिः"

---

†"वश कान्तौ" (अदादि०) "वशेः कनसि" (उणा० ४।२३४) उशनाः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ऐ० ५।२८] पर रमण करने योग्य प्रिय रथ की भांति "न-उपमार्थे" (निरु० १।४) मेरे अन्तःकरण में रमण करने वाले—(प्रेष्ठम्—अतिथिम्) मित्र और रथ से भी प्रिय अतिथिदेव की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ।

परमात्मन् ! तू मेरा प्रियतम् अतिथि है, तू मेरे हृदय गृह में या अन्तःकरण सदन में आता है, परमात्मन् ! मुझे रथ प्रिय है और मुझे उससे भी अधिक प्रिय है वह तो प्रियतर है, मेरा रथ है मेरा शरीर "यद्नो वा रथं वा शरीरम्" [मै० ४।८।३] मेरा मित्र है मेरा प्राण "प्राणो मित्रम्" [जै० उ० ३।१।३।६] परन्तु परमात्मन् ! तू मेरे शरीर और प्राण से भी अत्यन्त प्रिय है मैं तेरी स्नेहपूर्ण स्तुति करता हूं। लौकिक रथ प्यारा है देह का सहारा है लौकिक मित्र प्यारा है मन का सहारा है परमात्मन् ! तू अत्यन्त प्यारा है, आत्मा का सहारा है अतः मेरा अतिथि बनजा मेरे शरीर में नस नस में बसजा मेरे प्राण में रमजा मुझ आत्मा में समाजा, तू लेने वाला अतिथि नहीं तू तो लाने वाला अतिथि है अतएव तू अत्यन्त प्यारा है स्तुति लेजा शान्तिप्रसाद देजा ॥ ५ ॥

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (स्तुति का सुदान कर्ता स्तुति का बहुत सींचने वाला उपासक[1])

१ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २
त्वं नो अग्ने महोभि पाहि विश्वस्या अरातेः।
३ २ ३ १ २र
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू (मर्त्यस्य) मरणधर्मी—सांसारिक साधारणजन के अन्दर होने वाली (विश्व-

१ "सुदीतिरादित्यान् जिन्व" (काठ० १७।७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याः) सारी—(अरातेः) न देने वाली—कृपणता अपि तु अपहरण प्रवृति से (उत) और (द्विषः) द्वेष भावना से (महोभिः) अपने महत्त्वों—ज्ञान बलों के द्वारा (नः पाहि) हमारी रक्षा कर।

साधारण संसारीजन के अन्दर अनेक विध अदान भावना अर्थात् अपने पास आवश्यकता से अधिक होने पर भी अन्य अधिकारी के हित में अपना धन अन्न विद्या को न देने की भावना अपितु अन्य से अपहरण की प्रवृति तथा इसी भांति विविध द्वेषभावना अर्थात् अन्य से अल्प अपकार हो जाने पर अपितु स्वाभीष्ट की प्राप्ति न होने पर उसके प्रति क्रोध पीड़ा पहुँचाने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ये दूसरे को तो हानि पहुँचाती है, या नहीं, पर ऐसी भावनाएं रखने वाले को तो अवश्य ही हानि पहुंचाती हैं उसका अन्तःकरण मलिन और आत्मा अशान्त हो जाती है परमात्मा के सत्सङ्ग का मिलना तो कहां ? अतः परमात्मन् ! मुझ उपासक को इनसे बचाए रखना, यह मेरे अन्दर न उठने पावें ॥६॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञानबल को धारण करने वाला उपासक)

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एत्यु षू ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
३ १ २ ३ १ २
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तेरे लिये (इतराः-गिरः- उ-इत्या सुब्रवाणि) उपासना समय से भिन्न व्यवहार समय में भी वाणियां—बातें अवश्य सत्य ही बोलूं बोलता हूं बोलूंगा।

"इत्था सत्यनाम" [नि० घं० ३।१०] (एभिः-इन्दुभिः-वर्धासे)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सोमों आर्द्र उपासनारसों से "सोमो वा इन्दुः" [श० २।२।३। २३] तू बढता है—मेरे अन्दर साक्षात् होता रहता है, अतः (एहि) मेरे हृदयरूप यज्ञसदन में आ ॥

परमात्मा की सद्भाव से स्तुतियां उपासना कालमें करें वैसे ही व्यवहारकाल में चरित्रार्थ करें, ऐसा नहीं कि उपासना समय में अन्य स्तुति करना और व्यवहार में उसके विपरीत कहना मानना उपासक को आध्यात्मिक और सांसारिक एक ही सत्य पर निर्भर रहना चाहिए। प्रवञ्चना से पृथक् रहे, परमात्मा तो बाहिर भीतर की बात सब जानता है वह प्रवञ्चना में नहीं आता। सत्य स्तुति तो बाहिर भीतर जीवन में समान घटने वाली होती है और तब ही उसका भीतर साक्षात्कार बढ़ता जाया करता है कारण कि परमात्मा स्वयं सत्य-स्वरूप है "सत्यश्चित्रःश्रावस्तमः" [ऋ० १।१। ५] सो सत्य से ही प्राप्त होता है "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा" [मुण्ड० ३।१।५] ॥ ७ ॥

ऋषिः—काण्वो वत्सः (मननशील मेधावी का शिष्य या अत्यन्त मेधावी वक्ता—स्तुतिकर्ता जन)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्तात् ।
२ ३ १ २ ३ २
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (वत्सः) तेरे गुणों का वक्ता—स्तुतिकर्ता "वदः सः" [उणादि० ३।६२] (परमात् सधस्थात्-चित्) परमसहस्थान—मोक्षधाम से भी (ते मनः-आ यमत्) तेरे माननीय स्वरूप को स्वात्मा में खींच ले आता है (त्वां गिरा कामये) तुझे स्तुति-द्वारा चाहता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे परम प्रिय परमात्मन् ! यद्यपि तू सर्वव्यापक है परन्तु कैवल्य दृष्टि से तेरा स्थान परमसधस्थ—मोक्षधाम है जहां तेरा मेरा परम सहवास होता है, संसार में रहते हुए तेरा मेरा सहवास होता है मेरे हृदय-सदन वह स्थान अल्प है वह अवम सधस्थ है, पर हां इस अपने घर में मैं तेरे मननीय स्वरूप को अवश्य परमसधस्थ—मोक्ष-धाम से स्तुति बल खींच लाता हूँ तुझे अपना अङ्गसङ्गी बना लेता हूं जब तक परमसधस्थ—मोक्षधाम में न पहुचूं। कारण कि मैं तुझे स्तुति से चाहता हूं, तुझे तेरी स्तुति चाहिए मुझे तेरा मननीय-स्वरूप चाहिए। जब मैं तेरी स्तुति करते करते अपने आत्मा को पूर्णरूप से झुका देता हूं तब तू भी अपने मननीय स्वरूप को मेरी ओर नमा देता है। स्तुति तेरे दर्शन का अमोघ साधन है अतः स्तुति द्वारा तुझे चाहता हूं रिक्त हस्त नहीं स्तुति भेट द्वारा ॥ ८ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक)

१२ ३ १ २ ३१र २र ३ १२
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
३ १र २र ३१२
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वाम्) तुझे (अथर्वा) स्थिर वृत्ति वाला ध्यानीजन "अथर्वा-थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः" [निरु० ११।१९] (विश्वस्य मूर्ध्नः—वाघतः) समस्त प्राणीमात्र के मूर्धारूप तथा वहन करने वाले वाहक—निर्वाहक—"वाघतो वोढारः-वाघत्-वोढा" [निरु० ११।१६] पुष्करात्-अधि) पुष्कर—वपुष्कर—शरीर निर्माण करने वाले "पुष्करं वपुष्करम्" [निरु० ५।१४] हृदयकमल में "पुष्करं पुण्डरीकम्" [तां० १८।९।६] "पुण्डरीकं नव द्वारम्" [अथर्व० १०।८।४३]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हृदयपुण्डरीके" [योग० १।३६ व्यासः] (निरमन्थत) निर्मन्थित करता है—साक्षात् करता है।

हां हे मेरे परमात्मन्! मैं समझ गया, तेरे समागम का अव-मसधस्थ मेरे शरीर में हृदय सदन है जो देह का निर्माण करने वाला एवं रक्त और प्राणों का प्रमुख वाहक है। यहां पर ही अभ्यास और वैराग्य के सम्मिश्रण से या सगुण और निर्गुण स्तुतियों के निर्मन्थन से स्थिरध्यानीजन तुझे प्रकाशित करता है—साक्षात् करता है जैसे दो काष्ठों के अनुलोम प्रतिलोम मन्थन से या खनिज वस्तुओं के संघर्षण से अग्नि को प्रकाशित करते हैं। उस तुझे साक्षात् कर मैं भी अपने को कृतकृत्य करूं॥ ९॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय† उपासनीय देव परमात्मा वाला उपासक)

२ ३ १२ ३ १ २ ३१ २ ३१ २ ३२
अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
३ १२ २२ ३ २
देवो ह्यसि नो दृशे॥ १०॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (महे-ऊतये) महती रक्षा—अखण्डसुखसम्पत्ति—मुक्ति के निमित्त (विवस्वत्-आभर) अभ्यास और वैराग्य से साध्य अपने विशेष प्रकाशमय वास वाले स्वरूप को पहुंचा—प्राप्त करा (दृशे) दर्शन करने—साक्षात् करने के लिये (नः-देवः-हि-असि) तू हमारा इष्टदेव ही है।

परमात्मन्! हमारे लिये जो महती रक्षा अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति है उसकी प्राप्ति के लिये अभ्यास और वैराग्य के द्वारा या

† "वामस्य वननीयस्य" (निरु० ४।२५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सगुण स्तुति और निर्गुण स्तुति के द्वारा सिद्ध होने वाला तेरा विशेष प्रकाशमय स्वरूप है उसे आभरित कर—प्राप्त करा, वह हमारे दर्शन के लिये—साक्षात् करने के लिये है हम उसके अर्थी हैं और तू हमारा इष्टदेव है, फिर हम उस दर्शन से वञ्चित रह सकें और उसके साधनरूप अभ्यास और वैराग्य तथा सगुण स्तुति निर्गुण स्तुति को तीव्र संवेग से कर रहे हैं अवश्य तेरे दर्शन कर सकेंगे कारण कि हम मनुष्य हैं मननशील हैं तेरे दर्शन के उत्सुक हैं, पशु केवल संसार को देखते हैं मनन नहीं करते, उनकी दृष्टि स्थूल है उसमें मनन नहीं है, हमारी दृष्टि में मनन है, यदि मनन न हो तो हम पशु जैसे हो जावें तेरे दर्शन के विना। संसार में मानव आया तेरा दर्शन न पा सका तो मानव जीवन का लाभ क्या ? ॥१०॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—आयुङ्क्ष्वाहिः (परमात्मा में अपने को समस्तरूप से युक्त कर ऐसा कहने वाला† उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देतकृष्टयः।
१ २ ३ १ ३
अमैरमित्रमर्दय ॥१॥

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्म देव ! (कृष्टयः) तुझे अपनी ओर कर्षणशील—खींचने वाले या तेरे प्रति आकृष्ट हुए उपासकजन "कृष्टयः—मनुष्याः" [निघं० २।३] (ओजसे) ओज—

† 'आयुङ्क्ष्व' इति—'आह'-ब्रवीति-इति बाहुलकात् किः प्रत्यय औणदिकः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मबल ज्ञानबल प्राप्त करने के लिये (ते नमः-गृणन्ति) तेरे लिये नम्र स्तवन—स्तुति उच्चारण करते हैं† (अमित्रम्-अमैः अर्दय) अध्यात्म यज्ञ के घातक काम क्रोध आदि शत्रु को बलों से "अमो बलम्" [निरु० १०।२१] नष्ट कर "अर्द हिंसायाम्" [चुरादि०]

प्रिय परमात्मन् ! तुझे अपनी ओर आकर्षित करने वाले या तेरे प्रति आकृष्ट हुए उपासकजन तेरी ओर आने के लिये ओज—आत्मबल ज्ञान बल को प्राप्त करने के हेतु तेरी नम्र-रसीली स्तुतियां किया करते हैं, अतः मैं तेरी ओर आने को तेरी नम्र-मीठी स्तुतियां करता हूं तेरी ओर आने में बाधक काम क्रोध आदि शत्रु हैं इन्हें अपने बलों से नष्ट कर, जब मैं तेरी ओर आना चाहता हूँ तो ये बाधक बनकर आगे खड़े होजाते हैं। तू ओजःस्वरूप है मुझे ओज दे "ओजोऽस्योजो मयिधेहि" (यजु० १९।९) ॥१॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दूतं वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम् ।
१ २ ३ २
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२॥

(दूतम्) निज दिव्यगुणों के संदेश वाहक प्रेरक—(विश्ववेदसम्) समस्तैश्वर्यवान् (हव्यवाहम्) मेरे हावभावपूर्ण आत्महवि को

---

† 'नमः' शब्द का सम्बन्ध वैदिक पद्धति में वाणी के साथ है, यहां 'नमः'-गृणन्ति' है तथा "नम उक्ति विधेम" (यजु० ४०।१६) मस्तक झुकाना अर्थ नहीं "नमो महद्भ्य नमो अर्भकेभ्यः" (ऋ० १।२७। १३) यथायोग्य स्वागत वचन बड़ों के लिये छोटों के लिये भी बोलना 'नमः' है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्षधाम प्राप्त्यर्थ स्वीकार करने वाले (अमर्त्यम्) मरणधर्मा—मनुष्य विषयक जन्ममरण अज्ञान आदि गुणों से रहित (यजिष्ठम्) मेरे अध्यात्म यज्ञ के महान सम्पादक (वः) 'त्वाम्' तुझ 'वचन-व्यत्ययः' ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (गिरा) स्तुतिरूप वाणी से (ऋञ्जसे) प्रसाधित करता हूं—अनुकूल बनाता हूं—अपने अन्दर संस्थापित करता हूं।

हे मेरे अध्यात्म यज्ञ के महान् सम्पादक परमात्मन्! तू अपने गुणों के सन्देश देने वाला मेरे अन्दर दिव्य गुणों को प्रेरित करने वाला अग्रणेता अमर्त्य—अमर धर्मों वाला है, मैं तो मर्त्य हूं—मरणधर्मा हूं कारण कि "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते, येऽस्य हृदिश्रिताः। अथ मर्त्यो अमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" (कठो० २।६।१५) कामभोगों के वश मनुष्य मरा रहता है, कामनाएं न मिलने पर मनुष्य मैं मरा कहता है अधिक सेवन करने से मैं मरा, कमनीय वस्तुएं नष्ट हो गईं तो मैं मरा कहता है उनके नष्ट होने के साथ हाय मैं मरा—अपने को नष्ट हुआ समझता है। अतः परमात्मन्! तुझे मैं स्तुति द्वारा अपने अन्दर प्रसिद्ध करता हूं—साक्षात् करता हूं ॥२॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि प्रज्वलन वेत्ताओं की परम्परा में प्रयोगकर्ता उपासक)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
३ १ २
वायोरनीके अस्थिरन् ॥३॥

(हविस्कृतः) जैसे हवियों—आहुतियों को देने वाले की आहुतियां 'लुप्तोपमानोपमावाचकालङ्कारः' (वायोः-अनीके) वायु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दल-वायुदल—बादल में (उप-अस्थिरन्) उपस्थित होजाती हैं—पहुँच जाती हैं पुनः वृष्टिजल लाने को, वैसे ही (जामयः-देदिशतीः-गिरः) एक दूसरे के पीछे बढ़-बढ़ कर "जाम्यतिरेकनाम" [निरु० ४।२०] निरन्तर अग्र प्रगतिक्रम से एक दूसरे को प्रेरित करती हुई स्तुतियां (त्वा) 'उप-अस्थिरन्' तुझ परमात्मा के पास ठहर जाती हैं—पहुंच जाती है उपासक तक तेरे दर्शनामृत को ले आने के लिये—ले आती हैं।

परमात्मन्! जैसे अहुतियां वायुदल—मेघस्थान में जाकर वृष्टिजल बरसाती हैं वैसे ही उपासक की हावभावभरी आन्तरिक सत्य स्तुतियां परस्पर सन्तति क्रम से एक दूसरे के पीछे बढ़-बढ़ कर अग्रगति करती हुईं एक दूसरे को प्रेरित करती हुईं तुझ तक पहुंच तेरे दर्शनामृत मुझ तक बरसाने में—ले आने में समर्थ होजाती हैं, अतः मैं अध्यात्म प्रयोगकर्ता तेरे दर्शनामृत के प्राप्त करने पान करने में अवश्य समर्थ होजाऊँगा ॥३॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (आध्यात्मिक मीठास का इच्छुक उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
२ ३ १ २ ३ १ २
नमो भरन्त एमसि ॥४॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वयम्) (दिवे दिवे) दिन दिन—प्रतिदिन—निरन्तर "दिवे दिवे—अहर्नाम" [निघं० १।८] (दोषावस्तः) सायं प्रातः "दोषावस्तः सायं प्रातः" [दयानन्दः वेङ्कट माधवश्च] (धिया) धारणा—ध्यानवृत्ति या मन से "धीरसीत्याह यद्धि मनसा ध्यायति" [तै० सं० ६।१।७।४-५] (नमः-भरन्तः) स्तुति समर्पण करते हुए (त्वा) तुझे (उप-एमसि) प्राप्त होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय परमात्मन् ! तेरी समीपता पाने के लिये प्रातः और सायं दोनों वेलाओं में प्रतिदिन ध्यान और स्वात्मा के नम्रीभाव का अनुष्ठान करते हैं। ध्यान—गुणचिन्तन से तेरे प्रति अभिरुचि रूप परवैराग्य बनता है और नमस्कार—स्वात्म समर्पण से अभ्यास साधा जाता है। व्यसन-वासना रूप कालिमा छोड़ी जाती है ध्यान से—गुणानुराग वैराग्य से और कृतघ्नता नास्तिकता रूप कठोरता छूटती है सर्वतोभाव से स्वात्म समर्पणाभ्यास द्वारा, सो मैं उपासक इन दोनों को प्रातःसायं प्रति दिन सेवन कर तुझे प्राप्त करें करते हैं।।४।।

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषय लोलुप उत्थान का उच्छुक जन)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोम रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

(जराबोध) स्तुति के द्वारा बोध कराने वाले "जरा जरतेः स्तुति कर्मणः" [निरु० १०। ८] तथा जरा-जीर्णता—जरावस्था द्वारा चेताने वाले परमात्मन् ! "जराबोध जरया बोधयितः" [निरु० १०।८] (विशे विशे) प्रत्येक मनोनिवेशरूप ध्यानयज्ञ के निमित्त "यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि [श० ८।७।३।२१] (यज्ञियाय रुद्राय) तुझ ध्यान यज्ञ के अभीष्टदेव तथा स्तुति द्वारा पूर्ण प्रकाशमान हुए या जरावस्था द्वारा रुलाने वाले परमात्मा के लिये "अग्निरपि रुद्र उच्यते" [निरु० १०।८] (तत्-दृशीकं स्तोमम्) उस दर्शन साधक स्तुति वचन को (विविड्ढि) भली प्रकार विष्ट हो—अपना ले।

प्रिय परमात्मन् ! जब मैं तेरी स्तुति करता हूं तो तू मुझे बोध देता है तथा जरावस्था में सावधान करता है—नश्वर संसार से छूट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी शरण में आने को प्रेरित करता है। इस प्रकार बोधन कराने वाले परमात्मन् ! तू मेरे प्रत्येक मनोनिवेशरूप ध्यान यज्ञ में प्रविष्ट हो—प्राप्त हो—उसे अपना—स्वीकार कर। तुझ प्रकाशस्वरूप ध्यान यज्ञ के इष्टदेव तथा जन्मजन्मान्तर से भोगों की दौड़ में पड़े हुए को पूर्ण पश्चात्ताप कराने कराने वाले के लिये दर्शन साधन मेरे स्तुतिसमूह को स्वीकार कर॥ ६॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा गति प्रवृत्ति वाला)

२ ३ १ २र ३१ २ ३ २ ३ १२
प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे।
३ १ २ ३ १ २
मरुद्भिरग्न आगहि॥ ९॥

(त्यं चारुम्—अध्वरं प्रति) उस सुन्दर तथा हिंसा चाञ्चल्यादि-दोषरहित अध्यात्म यज्ञ के प्रति—उसके साधनार्थ (गोपीथाय) स्तुति-प्रार्थनोपसना रसरूप सोम पान करने—स्वीकार करने के लिए "गोपीथाय सोमपानाय" [निरु० १०।३६] (अग्ने प्रहूयसे) परमात्मन् ! तू आमन्त्रित किया जा रहा है (मरुद्भिः—आगहि) अपने ज्ञानानन्दप्रकाश रश्मियों के साथ आ "मरुतः—रश्मयः" [तां० १४।१२।९]।

हे प्रिय परमात्मन् ! यह सत्य है जब मैं हावभाव भरी स्तुति-प्रार्थनोपासना रूप सोमरस तेरे अर्पित करता हूँ तो तू आमन्त्रित हुआ मेरे सुन्दर अध्यात्म यज्ञ में आता है और अपने ज्ञानानन्द प्रकाश-गुणों के साथ आता है—मुझे ज्ञान आनन्दप्रकाश प्रसाद प्रदान करता हुआ आता है, हे वरप्रद तेरी वरद शरण पाने के लिये मेरा अध्यात्मयज्ञ चलता रहे॥ ९॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुक जन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र
अश्वं न त्वा वारवान्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
३ १२ ३ १ २
सम्राजं तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

(अश्वं न वारवन्तम्) दंशमशक निवारक बालवाले "वारवन्तं बालवन्तं बाला दंशमशकनिवारणार्था भवन्ति" [निरु० ३।६२] घोड़े के समान अध्यात्मयाजी के वहनकर्ता विघ्नहर्ता एवं दोषनिवारणबल वाले तथा वरने योग्य ज्ञानानन्द गुणवाले—अपि च वार—वरण शरण रखने देने वाले (अध्वराणां सम्राजं तं त्वा-अग्निम्) विविध स्तुति प्रार्थना उपासना यज्ञों के अधिनायक प्रकाशक तुझ परमात्मा की (नमोभिः—वन्दध्यै) नमस्कारों से आत्मसमर्पण भावों से स्तुति करता हूँ ।

हे अध्यात्म यज्ञ की ओर ले जाने वाले, उसमें आने वाले विघ्न बाधाओं दोष प्रकोपों को निवृत्त करने वाले घोड़े के समान संसार यात्रा सुख से कराने वाले परमात्मन् ! विविध स्तुति प्रार्थनोपासनाओं से तेरी पूजा करता हूँ । मुझे अपनी शरण में स्वीकार कर ॥ ७ ॥

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि प्रज्वलन में कुशल प्रयोग कर्ता उपासक)

३१ १ २र ३ १ ३ १ २र
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

(और्वभृगुवत्) उर्वी-पृथिवी में होने वाले—और्व गन्धक पोटास आदि "उर्वी पृथिवीनाम" [निघं० १।१] खनिज पदार्थों से अग्नि

† "भृगुर्भृज्यमानो न देहे" (निरु० ३।१७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रकट करने वाले रासायनिक विद्वान् की भांति—जैसे वह अग्नि को भौम पदार्थों से प्रकट करता है वैसे। तथा (अप्नवानवत्) संघर्षण कर्म—मन्थन के सेवन करने वाले के समान "अप्नः कर्मनाम" [निघं० २।१] "वन सम्भक्तौ" [भ्वादि०] अथवा दोनों भुजाओं प्रशस्त भुजाओं वाले शिल्पीजन के समान "अप्न-वाना बाहुनाम" [निघं० २।४] 'तौ प्रशस्तौ यस्य सोऽप्नवानः, अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः' । अग्नि को प्रकट करता है ऐसे मैं अध्यात्मयज्ञकर्ता उपासक आध्यात्मिक भृगु और आध्यात्मिक आप्नवान बनकर (समुद्रवाससं शुचिम्-अग्निम्-आहुवे) अन्तरिक्ष—आकाश—महाकाश "समुद्रोऽन्तरिक्षनाम" [निघं० १।३] है वासस्—वास स्थान जिसका उस व्याप्त परमात्मा अग्नि को प्रदीप्त-साक्षात् आमन्त्रित करता हूँ—प्राप्त करता हूं—प्रकट करता हूँ।

अग्निविद्या में निष्णात विद्वान् गन्धक आदि पदार्थों के सम्मिश्रण से या चकमक पत्थर और लोहे के संघर्षण से या वशकाष्ठों के मन्थन से अग्नि को प्रकट कर लेता है इसी प्रकार अध्यात्मयाजी ध्यानी उपासक भी अभ्यास और वैराग्य के स्वाध्याय—जप और योग—अर्थभावन के सम्मिश्रण से विश्वाकाश समस्त संसार में व्याप्त परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित कर सकता है "स्वाध्याद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते" [योग० १।२८ व्यासः] अतः मैं आत्मसमर्पी ध्यानी उपासक भी परमात्मन् ! तुझे अपने अन्दर साक्षात् कर सकूंगा तुझे अपने अन्दर आमन्त्रित करता हूँ ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धानो मनसा धियँ सचेत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वाभिः ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्-इन्धानः) परमात्मरूप अग्नि को या ज्ञानप्रकाश स्वरूप परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करने के हेतु (मनसा धियं सचेत) मन से परमात्म-चिन्तनरूप कर्म सेवे—करे "धीः कर्मनाम" [निघं० २।१] (विवस्वभिः-अग्निम्-इन्धे) कि मैं परिचर्याओं—"विवासति परिचरणकर्मा" [निघं० ३।५] निदिध्यासनरूप अभ्यासक्रियाओं के द्वारा परमात्मा को प्रकाशित करूं—साक्षात् करूं।

परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करने के लिये मनुष्य श्रुतियों से परमात्मा के गुणों का श्रवण करके उन्हें जगत् की रचना में मन से मनन करे कि भिन्नाभिन्न जीवशरीरों का गठन हाथी और ऊंट जैसे प्राणी को लम्बी सूंड और लम्बी ग्रीवा ऊपर नीचे से खाने को दे देना, भूतल पर ऊंचे स्थान से जलधाराओं को नीचे स्थानों में मार्ग बना बहाते हुए अत्यन्त निम्न स्थान समुद्र में पहुँचाकर भूपृष्ठ पर मनुष्य आदि के निवासार्थ भूभाग बनाना, आकाश में ग्रहतारों को अपनी अपनी गति से चलाने आदि से परमात्मगुणों का मनन कर पुनः आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधिरूप अभ्यास क्रियाओं से निदिध्यासन कर परमात्मा को अपने अन्दर प्रकाशित—साक्षात् करे। सो मैं उपासक ऐसा कर परमात्मा का साक्षात् करूं॥ ९॥

ऋषिः—वत्सः (अध्यात्म वक्ता जन)

२उ ३ २३ १२ ३ १ २ ३ २
आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
३ २उ ३ १ २ ३ २
परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥

(आत्-इत्) अनन्तर ही—निदिध्यासनरूप अभ्यास के अनन्तर ही (प्रत्नस्य रेतसः) इस जगत् से पूर्व वर्तमान शाश्वतिक तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र जगत् में प्राप्त अग्नि—प्रकाशस्वरूप परमात्मा की "रेतो वा अग्निः" [मै० ३।२।१] (वासरं ज्योतिः) 'वास-र' मुक्त आत्माओं को वास देने वाले ज्योति को (पश्यन्ति) देखते हैं ध्यानीजन (यत्-दिवि परः-इध्यते) जो द्योतनात्मक अमृतरूप मोक्षधाम में "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] अत्यन्त दीप्त हो रही है।

जगत् से पूर्व वर्तमान तथा जगत् में व्याप्त परमात्मा की ज्योति को जो कि प्रकाशमय मोक्षधाम में अत्यन्त दीप्त हो रही है उसे ध्यानी योगाभ्यास के अनन्तर साक्षात् प्राप्त किया करते हैं। परमात्मा का ज्योतिःस्वरूप अनन्त मोक्षधाम में है वही ध्यानी जन के हृदय में साक्षात् होता है केवल अल्पकालिक है और एक देशी सा प्रतीत होता है परन्तु परमात्मा तो अनन्त है किन्तु मनुष्य का अधिकार तो हृदय में ही साक्षात् करने का है वह अनन्त नहीं हो सकता "हृद्यपेक्षा तु मानुष्याधिकारत्वात्" [वेदान्त० १।३।२५] ॥१०॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अग्नि प्रकटीकरण में कुशल अध्यात्म प्रयोगकर्ता विद्वान्)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
२ ३ २ ३ १ ३
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

(अध्वराणां वृधन्तं पुरूतमम्) हिंसारहित अहिंसा सत्य आदि व्रतों के "ध्वरति हिंसाकर्मा" [निरु० १।८] बढाने वाले अति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पं० विश्वनाथ स्मृति संग्रह
पुस्तकालय 8164

महान्—सर्वमहान् तथा बहुत कमनीय (कः-अग्निम्) 'वः-त्वम्-वचनंव्यत्ययः' तुझ ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (नप्त्रे सहस्वते) तेरा नप्ता होने के लिये सहस्वान् होने के लिये—परमात्मन् मुझे अपना नप्ता बनाले अपने से न पतित कर और सहः—आत्म बल दे, अतः (अच्छ) तुझे अभ्याप्त करूं—सम्यक् प्राप्त करूं।

परमात्मन्! अध्यात्म यज्ञ के अङ्गों अहिंसा आदि सद्व्रतों का बढ़ाने वाला है, तेरी शरण में आने से बढ़ते हैं। सूर्य आदि बड़े-बड़े पिण्ड पुरु हैं महान् हैं, आकाश व्यापक होने से पुरुतर अतिमहान् है तू तो आकाश से भी महान् होने से पुरुतम है, अन्यत्र वेद में कहा भी है "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" (ऋ० १।५२।१२) परमात्मन् तू आकाश भी पार है कामनापूर्तिकर होने से अतीव कमनीय भी है। मैं तेरा नप्ता-पौत्र होजाऊं—तेरा पौत्रवत् अति प्रिय होजाऊं—आत्मज होजाऊं और बल का भागी होजाऊं—तुझे अपनी पृष्ठ पर समझ बलवान् रहूँ। सहस्वान् बलवान् बनकर संसार का ऐश्वर्यभोगूं और नप्ता—गुणवान् बनकर मोक्ष का अमृतानन्द पाऊं ॥१॥

ऋषिः—बार्हस्पत्यो भरद्वाजः (वेदाचार्य का शिष्य परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २, ३ २ २ ३ २ १ २
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद् विश्वं न्यात्रिणम्।
३ १ २ ३ २
अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२॥

(अग्निः-विश्वम्-अत्रिणम्) तेजःस्वरूप परमात्मा उपासक के अन्दर उठने वाले सकल पाप भाव को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३।१] (तिग्मेन शोचिषा नियंसत्) तीक्ष्ण ज्ञानमय तेज से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शोचिः-ज्वलतोनाम" [निघं० १।१७] नियन्त्रित करता है—दबा-देता है—अकिञ्चित्कर बना देता है, पुनः (अग्निः-नः-रयिं वंसते) ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमारे लिये अध्यात्मधन—अमृतानन्द को प्रदान करता है।

परमात्मा जब मुझ उपासक के अन्दर साक्षात् प्रकाशित हो जाता है तो अपने ज्ञानमय तेज से मेरे आन्तरिक जीवन के भक्षक तत्त्वों—पापभावों को नियन्त्रित भस्मीभूत करके मुझे आध्यात्मिक अमृतधन का भागी बना देता है। कारण कि मुझ आत्मा का वह आत्मा है "य आत्मनि तिष्ठन्-आत्मा यस्य शरीरम्" [श० १४।६।७।३२] जैसे मुझ आत्मा का शरीर मेरी देख रेख में होने मुझे उसके निर्दोष रहने का ध्यान रहता है वैसा मैं यत्न से निर्दोष करता हूं तब जब मैं आत्मा उस परमात्मा का शरीर हुआ तो मुझे निर्दोष करना मेरे में स्वगुणप्रसाद भरना स्वाभाविक है ॥२॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय देव परमात्मा जिसका है ऐसा उपासक)

१ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र
अग्ने मृड महाँ अस्ययं आ देवयुं जनम्।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
इयेथ बर्हिरासदम् ॥३॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (महान्-अयः-असि) महान् प्रगतिशील है (देवयुवं जनं मृड) तुझ इष्टदेव के चाहने वाले मुझ जन को सुखी बना "मृड सुखने" [तुददि०] अतः (आसदं बर्हिः-आ-इयेथ) भली भांति बैठने योग्य मेरे हृदया-वकाशरूप सदन में समन्त रूप से विराजमान हो।

परमात्मन्! सम्बन्धीजन और मित्रगण सुख देने वाले हैं परन्तु सदा नहीं और न सच्चा सुख दे सकते हैं, जड़ वस्तुओं का सुख तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षणिक होता है उसमें भी "भोगे रोगभयं वियोगे शोक भयम्" उनके भोग में रोग भय और वियोग में शोक भय है। सच्चा सुख और स्थायी सुख तूही अपने चाहने वाले जन को देता है जो चाहता है, तू उसे चाहता है। अन्य सुखदाताओं का समागम बाहिर बाहिर रहता है तुझ सुखदाता का समागम मेरे अन्दर अभिन्न अछिन्न होता है। अतः मेरे अन्दर आ अपना सर्वात्मना सुख पहुँचा ॥३॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने रक्षा णो अँहसः प्रति स्म देव रीषतः।
१ २ ३ १ २
तपिष्ठैरजरो दह ॥४॥

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मदेव ! तू (नः-अंहसः-रक्ष) हमें पाप से बचा (अजरः) तू अजर-जरारहित होता हुआ (तपिष्ठैः-रिषतः प्रतिदह स्म) अपने सन्तापक साधनों से पीडित करने वाले कामक्रोध आदि को भस्म कर दे।

परमात्मदेव ! तू अन्दर बैठे पीडा देने वाले कामक्रोध आदि पाप को अपने सन्तापक बलों से भस्म करके हमारी रक्षा करता है, परमात्मन् ! तू अजर है जरा से रहित है, संसार में हमारी रक्षा करने वाले तो जराधर्मी हैं कोई जरा को प्राप्त होगए कोई प्राप्त होने वाले हैं, तेरा रक्षण सदा रहने वाला है अतः हम तेरे आश्रित हैं तू ही रक्षा कर ॥४॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को अपने अन्दर धारण करने वाला)

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
३ १ २३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने देव) हे ज्ञानप्रकासस्वरूप परमात्मदेव ! (ये तव साधवः-आशवः—अश्वासः) जो तेरे साधु—कल्याणसाधक संसार में व्यापने वाले कर्तृत्व नियन्तृत्व आदि गुणधर्म घोड़ों के समान 'अत्र लुप्तोपमेयोपमानोपमावाचकालङ्कारः' मेरे मन रूप रथ को मोक्षधाम की ओर वहन करने वाले (अरं वहन्तु) वह पूर्ण रूप से वहन करें—पहुँचावें (युङ्क्ष्व हि) इन्हें अवश्य जोड़।

परमात्मदेव मेरी यात्रा के दो क्षेत्र या दो स्थान हैं, एक तो संसार भोगस्थान जिसकी ओर लेजाने वाले शरीररथ में इन्द्रियां घोड़े हैं "इन्द्रियाणि हयानाहुः" [कठो० १।३।४] जो जहां तहां भटकाते हैं संकट तक में डालते हैं। दूसरा है यात्रा का मोक्षधाम अपवर्ग स्थान जिसकी ओर ले जाने वाले मनरथ में जुड़ने वाले तेरे संसारव्यापी कर्तृत्व नियन्तृत्व आदि घोड़े जिनका मनन मन में निरन्तर होने से मनरथ को मोक्षधाम की ओर लेजाते हैं, कृपया उन्हें मेरे मनरथ में जोड़ वहां मैं अमृत आनन्द प्राप्त करूं ॥ ५ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)

१ २ ३ १२ ३ २
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
३ १२
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥

(नक्ष्य) हे व्याप्ति में समर्थ तथा प्राप्तव्य—शरण्य "नक्षति व्याप्तिकर्मा" [निघं० २।१६] "नक्षति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (विश्पते) प्रजाओं के पालक ! (आहुत-अग्ने) हम उपासकों द्वारा अध्यात्म यज्ञ के निमित्त समन्त रूप से स्वीकार किए हुए ज्ञान प्रकाश-स्वरूप परमात्मन् ! (त्वा) तुझ (द्युमन्तं सुवीरम्) ज्योतिष्मान् तथा अपने सुसिद्ध नियन्तृत्व आदि वीर्यों बलों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त को "स ह वाव वीरो य आत्मन् एव वीर्यमनु वीरः" [जै० २।२८२] (वधं निधीमहे) हम उपासक अपने अन्दर धारण करें।

परमात्मन् ! तू हम प्रजाओं का पालक राजा सब में व्याप्त और प्राप्तव्य है तू गुणों से प्रकाशमान और अपने सुसिद्ध नियन्तृत्वादि बलों से युक्त विश्व का राजा है, तेरे गुण और कर्मबल हमारे लिये कल्याणकारी हैं ग्राह्य हैं, तेरे शासन और शरण में हम तेरी सुप्रजा बनें अतः तुझे अपने अन्दर धारण करें ध्यावें ॥ ७ ॥

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविध प्रकार से रूपित निरूपित करने वाला उपासक)

३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १र २र
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ ७ ॥

(अयम्-अग्निः-मूर्धा) यह परमात्माग्नि लोकत्रय—पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक की अग्नियों में मूर्धारूप है उनके ऊपर शासक है और उनका भी प्रकाशक है, अपितु (दिवः ककुत्) द्युलोक का उच्च भाग जो प्रकाशक सूर्य है वह गौण है यह परमात्मा ही उच्च प्रकाशक है "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म्। खं ब्रह्म" [यजु० ४०।१७] सूर्य में जो प्रकाशक पुरुष है सो वह ओ३म् व्यपाक ब्रह्म है। एवं (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी पर जो भौतिक अग्नि है वह गौण है यही परमात्मा अग्नि-अग्रणेता है "तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [मुण्डक० २।१०] उस परमात्मा के प्रकाशमान होने से सब प्रकाशमान होता है उसी की ज्योति से सब चमकता है (अपां रेतांसि जिन्वति) और जो अन्तरिक्ष के "आपः-अन्तरिक्षम्" [निघं० १।३] जलों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"रेतः-उद कनाम" [निघं० १।१२] प्रेरित करती है विद्युत् अग्नि सो वह भी गौण प्रेरक है वह भी यह परमात्मा ही है प्रेरक है।

संसार में प्रकाश और ताप गुणों का आधार अग्नितत्त्व है, वह पृथिवी पर अग्नि नाम से अन्तरिक्ष में विद्युत् नाम से और द्युलोक में सूर्य नाम से है। परन्तु इन तीनों अग्नियों का प्रकाशक और तापप्रद तीनों लोको में वर्तमान परमात्मा ही है उसे ही सब ज्योतियों का ज्योति अग्नियों का अग्नि मान और जानकर उसकी उपासना करें इन जड़ अग्नियों की नहीं ॥ ७ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषय लोलुपउत्थान का इच्छुक)

३२३ २३ ३ १२ ३१ २३१२ २१
इमम् षु त्वमस्माकँ सनिं गायत्रं नव्याꣳसम्।
१ २ ३२३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू (इमम्-उ) इस ही (गायत्रम्) गायत्री—वाणी से सम्बद्ध—वाणी विषयक "वाग्वै गायत्री" [काठ० २३।५] (सु सनिं नव्यांसम्) सुन्दर सम्भजनीय संसेवनीय "वनषण सम्भक्तौ" [भ्वादि०] 'नवीयांसम्' ईकारलोपश्छान्दसः, पुनः पुनः नवीन—नवतर अध्यात्म प्रवचन को (अस्माकं देवेषु प्रवोचः) हमारी इन्द्रियों के निमित्त प्रभाषित करा हमें अपनी इन्द्रियों को तेरी ओर प्रवृत्त करने की प्रेरणा दे।

हे परमात्मन् ! हमारी इन्द्रियां विषयों में फंस कर कुमार्ग में गति करती हैं अपितु अधःपतन का कारण बन जाती हैं, परन्तु परमात्मन् ! जब तेरी शरण लेते हैं तो तू हमें इन्द्रियों को कुमार्ग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में न जाने देने तथा उन्हें सुमार्ग में चलाने का आदेश उपदेश देता है तथापि हमारी भी आकांक्षा इन्द्रियां तेरी ओर प्रवृत्त करने में हैं "भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः" [ऋ० १। ८९। १] हम कानों से भद्र—अर्चनीय—स्तोतव्य परमात्मा को "भद्रे भन्दनीये" [निरु० ११।२०] "भन्दते अर्चतिकर्मा" [निघं० १। १६] सुनें उसका श्रवण करें और आंखों से अर्चनीय स्तोतव्य परमात्मा को देखें-दृश्य चित्र में चित्रकार को देखें ॥ ८ ॥

ऋषिः—गोपवनः (गौओं—इन्द्रियों को पवित्र करने रखने वाला संयमी उपासक)

१ २ ३१२ ३१र २र
तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१२ ३ १२
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

(अङ्गिरः पावक-अग्ने) हे अङ्गों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले पवित्रकारक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (तं त्वा) उस तुझ को (गोपवनः) अपनी इन्द्रियों को पवित्र करने वाला जन (गिरा जनिष्टत्) स्तुति से अपने अन्दर प्रसिद्ध करता है—साक्षात् करता है (सः—हवं श्रुधि) वह तू हमारे ह्वान-पुकार को सुन ।

परमात्मन् ! पवित्र करने वाला तथा अपने उपासक की भीतरी अभ्यर्थना को सुनने वाला है, तथा उपासक के अन्दर साक्षात् होजाता है पुनः इन्द्रियों में संयम शक्ति प्राप्त कर उनकी अशान्ति से छूट जाता है । परमात्मा का कृपापात्र बन जाता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला)

२ ३ १२ ३२३२ ३ १
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
२ ३ १२ ३ १२
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाजपतिः कविः-अग्निः) अमृत अन्न भोग—मोक्षानन्द का स्वामी "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप परमात्मा (दाशुषे रत्नानि दधत्) स्तुति हाव भाव पूर्ण आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये रत्नों—रमणीय अङ्गों उपकरणों को धारण कराने के हेतु (हव्यानि पर्यक्रमीत्) हावभाव पूर्ण स्तुतियों को परिप्राप्त करता है—स्वीकार करता है।

उपासक की हावभाव पूर्ण स्तुतियों को अमृतान्न भोग का स्वामी सर्वत्र अन्तर्यामी परमात्मा स्वीकार करता है और आत्म-समर्पणकर्ता उपासक के लिये रमणीय अङ्गों तथा स्वास्थ्य, मधुर वाणी, सुबुद्धि, धैर्य, शान्ति, अमृत भोग वररूप में शतगुणित सहस्रगुणितफल प्रदान करता है "देहि मे ददामि ते" [यजु० ३। ५०] तू दे तो मैं तुझे देता हूँ" को चरितार्थ करता है ॥ १० ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी)

देवता—सूर्याग्निः (सर्वप्रकाशक सर्वप्रेरक परमात्मा)

२ ३ २ ३१२ ३१ २ ३ १ २
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
३१२ २र ३ १ २
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥

(त्यं जातवेदसं सूर्य देवम्) उस जात-उत्पन्नमात्र में विद्यमान तथा जातमात्र-उत्पन्नमात्र जिसमें विद्यमान हैं ऐसे सर्वाधार तथा प्रकाशक प्रेरक परमात्मदेव को (विश्वाय दृशे) विश्व के दृष्ट कराने—बोध कराने के लिये (केतवः) ज्ञान् कराने वाले प्रज्ञान रूप "केतुः प्रज्ञाननाम" [निघं० ३।९] सरित सागर गिरि पर्वत चन्द्र तारे (उद्वहन्ति) उद्घोषित करते हैं।

समस्त ग्रह तारे पृथिवी आदि पिण्ड उत्पादक सर्वव्यापक सर्वा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार प्रकाशक परमात्मा को उद्घोषित कर रहे हैं समस्त मानवों को बोध कराने सुझाने के लिये है इनके द्वारा मनन परमात्मा का होता है ॥ ११ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन गमनशील उपासक)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
३ १ २ ३ १ २
देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

(अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (कविं सत्यधर्माणम्) क्रान्तदर्शी-सर्वज्ञ अविनश्वर नियमवाले—नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव वाले (अमीवचातनम्-अग्निदेवम्) मानस रोग विनाशक परमात्मदेव की (उपस्तुहि) उपासना कर ।

परमात्मा के कर्तृत्व नियन्तृत्व कर्मफलदातृत्व आदि नियम अटल हैं वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव और अनन्तप्रकाश-ज्ञानानन्दस्वरूप है उसकी उपासना करना उसे अध्यात्म यज्ञ का देव बनाना उपासक के समस्त आन्तरिक रोगों के विनाश का हेतु है ॥ १२ ॥

ऋषिः—सिन्धुद्वीप आम्बरीषस्त्रित आप्त्यो वा (स्यन्दमान संसारप्रवाह और स्यन्दमान मोक्षप्रवाह—दोनों प्रवाहों में आप्ति प्राप्ति वाला अभ्युदय और निश्रेयस का साधक हृदयाकाश में ईषा—गतिवाला या व्यापक परमात्मा में स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर बन्धन से रहित हुआ जीवन्मुक्त)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता—देव्यः (परमात्मा की ज्ञान ज्योतियां)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
२३ ३ १ २
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥१३॥

(देवीः) परमात्मा की ज्ञानज्योतियां (नः-अभीष्टये) हमारी अभिकांक्षा-आभ्युदयिक सुखसम्पत्ति के लिये (शं भवन्तु) कल्याणकारी होवें, तथा (नः पीतये शम्) हमारी तृप्ति-निःश्रेयस-प्राप्ति—मुक्ति के लिये कल्याणकारी होवें (शंयोः-नः-अभिस्रवन्तु) वे सुख शान्ति को हमारे 'अभि-उभयतः'—दोनों क्षेत्रों में बहावें वर्षावें ।

परमात्मा की ज्ञानज्योतियां सर्वत्र व्याप्त हैं, वे हैं सृष्टि-कर्तृता, नियन्तृता, कर्मफलदातृता आदि हमारी अभिकांक्षाओं गन्धसुख रससुख आदि के लिये, प्रत्येक गन्धादि भोग्य वस्तु में परमात्मा की महिमा, कला, विभूति, झांकी भासित होती रहे, तभी गन्धादि सुख सच्चा सुख हो सकेगा अन्यथा परिणामतः दुःख ही सिद्ध होगा । एवं आत्मा के अन्दर साक्षात् हुईं ज्योतियां आनन्द धाराएं बनकर तृप्ति—मुक्ति के लिये सिद्ध होंगी ॥१३॥

ऋषिः—उशनाः (कल्याण की कामना करने वाला उपासक)

१ २ ३१२ २२ ३ १ २
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥

(सत्पते) हे सत्पुरुषों मुमुक्षुओं के पालक परमात्मन् ! (कस्य नूनम्) किसी के फिर "नूनं तर्के" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (धियः) 'मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार' प्रज्ञानों को "धी प्रज्ञानाम"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[निघं० ३।१] (परिणसि) भूमा में—मोक्ष में "परिणसा बहुनाम" [निघं० ३।१] "भूमा वै सुखम्" [श० ३।१।१।१२] (जिन्वसि) तृप्त करता है (ते गिरः-यस्य गोषाताः) तेरे लिये जिसकी स्तुतियां इन्द्रियों में संसेवित—संगत होगईं।

हे परमात्मन्! तेरे लिये की हुई स्तुतियां जिसकी इन्द्रियों में बैठ जाती हैं चरितार्थ होजाती हैं, इन्द्रियां अपने-अपने विषय से विरत हो तेरी स्तुतियों में लग जाती हैं वही उपासक महान् आनन्द या महान् धाम—मोक्ष को प्राप्त होता है। उसी जीवन्मुक्त का अन्तः-करण चतुष्टय तृप्त होता है, उसी पर तेरी परम कृपा होती है ॥१४॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (विद्यानिष्णात आचार्य से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक)

छन्दः बृहती।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
१ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१॥

(यज्ञा यज्ञा गिरा गिरा च) मेरे सकल यज्ञ और सकल स्तुतियां "द्विरुक्तिर्वीप्सायामुभयत्र सुस्थाने-आकारादेश: "सुपां सुलुकपूर्वसवर्णाच्छे......" [अष्टा० ७।१।३९] (वः-दक्षसे-अग्नये) "तुभ्यम्, वचनव्यत्ययः" तुझ प्रवृद्ध—सर्वत्र व्याप्त एवं ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये हैं, अतः (अमृतं जातवेदसम्)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ अमृतरूप तथा उत्पन्नमात्र के आधार और ज्ञाता—(प्रियं मित्रं न) प्यारे मित्र समान परमात्मा की (वयं प्र प्रशंसिषम्) 'अहं वचनव्यत्ययः' मैं निरन्तर प्रशंसा-स्तुति करता हूं।

हे सर्वोत्पादक सर्वाधार सर्वज्ञ अमृतस्वरूप परमात्मन्! प्रतिदिन किया जाता हुआ यज्ञ—श्रेष्ठकर्म सदाचरण और प्रतिदिन की जाती हुई स्तुति तुझ सर्वत्र व्याप्त महान् ज्ञानप्रकाशस्वरूप के लिये—तेरी प्राप्ति के लिये हैं। तुझ प्रिय मित्र जैसे को बहुत और निरन्तर प्रशंसित करता हूं—चाहता हूं मित्र समान स्नेही सङ्गी बन जा यह प्रार्थना है ॥१॥

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)

३ २ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया।
३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२॥

(ऊर्जां पते वसो-अग्ने) हे शक्तियों के स्वामी वसाने वाले ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (नः) हमारी (एकया पाहि) अपनी एक शक्ति रूप ऋग्वाणी से—ऋग्वेदानुसार स्तुति से रक्षा कर (उत द्वितीया पाहि) और अपनी दूसरी शक्तिरूप यजुर्वाणी-यजुर्वेदानुसार प्रार्थना से हमारी रक्षा कर (तिसृभिः-गीर्भिः पाहि) अपनी तीसरी शक्तिरूप तीसरी "एकवचने बहुवचनं व्यत्ययेन" सामवाणी सामवेदानुसार उपासना से हमारी रक्षा कर (चसृभिः पाहि) अपनी शक्तिरूप चतुर्थ अथर्ववाणी अथर्व वेदानुसार जप से हमारी रक्षा कर।

ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा वेदचतुष्टयी वाणी से सब मनुष्यों की रक्षा करता ही है और हम उपासकों की वेदानुसार स्तुति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना उपासना और साक्षादर्थभावन जप से हमारे अन्दर ऊर्जा-ऊंचे बलों को इन्द्रियों और मन को नियन्त्रित करने तथा आत्मबल को मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रदान कर अपने पूर्ण रक्षण में ले लेता है ॥२॥

ऋषि:—शंयुर्बार्हस्पत्य: (विद्यानिष्णात आचार्य से सम्बद्ध कल्याण का इच्छुक उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ रेवत् पावक दीदिहि ॥३॥

(पावक-अग्ने देव) हे पवित्रकारक परमात्मदेव ! (बृहद्भिः-अर्चिभिः) हमारे द्वारा की गई बडी अर्चनाओं-हावभाव भरी स्तुतियों से "अर्च पूजायाम्" [भ्वादि०] "अर्चति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] "ततः-इसिः प्रत्यय औणादिकः" पुनः प्रसन्न होकर (शुक्रेण शोचिषा) अपने सत्य ज्ञान प्रकाश से "सत्यं वै शुक्रम्" [श० ३।९।३।२५] (समिधानः) दीप्यमान-प्रकाशमान हुआ (यविष्ठ) नित्य युवा—जरारहित परमात्मन् ! (भरद्वाजे रेवत्-दीदिहि) तेरे अर्चन ज्ञानप्रकाशबल धारण करने वाले मुझ उपासक के निमित्त ऐश्वर्ययुक्त प्रकाशित हो ।

हे पवित्रकारक नित्य अजर परमात्मन् ! तू अपने उपासक की महत्त्वपूर्ण हार्दिक अर्चनाओं--स्तुतियों से प्रसन्न होकर उस अर्चनाकर्ता के निमित्त अपने सत्यज्ञानप्रकाश से प्रकाशमान हुआ अध्यात्मैश्वर्य प्रकाशित कर जो अनश्वर है—अमर है ॥३॥

ऋषि:—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वाहुत-अग्ने) हे भली प्रकार अपने अन्दर अपनाए हुए ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (ये सूरयः) जो स्तुतिकर्ता उपासकजन "सूरिः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] (त्वे) तेरे लिये चतुर्थ्यां शे— "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे...." [अष्टा० ७।३।३९] (गोनाम्-ऊर्वं दयन्त) स्तुतियों का बाहुल्य "उरु बहुनाम" [निघं० ३।१] प्रदान करते हैं—भेंट देते हैं (जनानां मघवानः-यन्तारः प्रियासः सन्तु) वे मनुष्यों में धनवान् दानी प्यारे हैं।

हे मुझे आत्मभाव से प्राप्त परमात्मन् ! तुझे स्तुतिकर्ता उपासक प्यारे लगते हैं वे तेरे लिये स्तुतियां देते हैं तेरी दृष्टि में ये जन ही धनी हैं और दानी हैं, भौतिक धन के धनी और दानी ऊंचे धनी और दानी नहीं। उनका धन और दानफल अस्थिर है, यहीं रहजाने वाला है। परन्तु जो स्तुति के धनी और दानी हैं वे महामानव धन्य हैं हम तेरी स्तुति के धनी और दानी बनें ॥४॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः।
१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५॥

(जरितः-गृहपते देव-अग्ने) "जरयितः-अन्तर्गतणिजर्थः" हे अपनी स्तुति की प्रेरणा देने वाले, मेरे हृदय सदनवासी स्वामी अन्तर्यामी परमात्मदेव ! तू (रक्षसः-तेपानः-विश्पतिः) जिससे रक्षा करनी चाहिए ऐसे कामक्रोध आदि पाप का तापित करने वाला प्रजापालक राजा के समान "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः" (दिवः पायुः-महान्-असि) अमृत लोक-मोक्ष धाम का "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [यजु० ३१।३] रक्षक है महान् है, परन्तु (दुरोणयुः-अप्रोषि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वान्) मेरे हृदय घर को चाहता हुआ "दुरोणं गृहनाम" [निघं० ३।४] "छन्दसि परेच्छायांक्यच्" उससे प्रवास न करने वाला भी तू है।

परमात्मन्! तू दोषों दुष्टविचारों से हमें बचाता है प्रजा-पालक राजा की भांति रक्षा करता है, मेरे हृदय घर में आकर बसने वाला सच्चा साथी है एक बार आकर त्यागता नहीं है। अपनी स्तुति की प्रेरणा देता है मेरे कल्याणार्थ तथा मेरे लिये मोक्षधाम का रक्षक है ॥५॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रँ राधो अमर्त्य।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥६॥

(जातवेदः-अमर्त्य-अग्ने) हे उत्पन्नमात्र में विद्यमान तथा उत्पन्नमात्र के ज्ञाता अमर परमात्मन्! तू (दाशुषे) स्वात्मसमर्पण कर देने वाले उपासक के लिये (उषसः) स्वप्रकाशरूप मोक्षधाम के (विवस्वत्-चित्रं राधः) विशेष सुख जिसमें है ऐसे अलौकिक ऐश्वर्य को (आवह) प्राप्त करा (अद्य) आज—इसी जीवन में (त्वम्) तू (उषर्बुधः-देवान्-आवह) स्वप्रकाशरूप मोक्षधाम को अनुभव करने वाले मुक्तात्माओं की ओर मुझे लेजा।

परमात्मा के प्रति उपासना द्वारा आत्मसमर्पण करने वाले के लिये मोक्षैश्वर्य प्रदान करता है और उसे मुक्तात्माओं में पहुँचा देता है जहां अमर परमात्मा का सङ्ग निरन्तर होता रहता है। नश्वर संसार में तो यह मर्त्य-मरण धर्मा बना रहता है ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—तृणपाणिः (समित्पाणि के समान तृणपाणि—भारी भेंट भी परमात्मा के लिये तृण समान है उसके वरदान के सम्मुख, ऐसा निरभिमान उपासक)

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७॥

(चित्र वसो-अग्ने) हे अद्भुत गुण शक्ति सम्पन्न तथा सबके अन्दर बसने वाले परमात्मन् ! (त्वम्) तू (नः-ऊत्या) हमारी रक्षा हेतु (राधांसि चोदय) संसिद्ध धनों को प्रेरित कर (अस्य रायः-रथीः-असि) इस अभीष्ट धनैश्वर्य का तू रमणकर्ता—धनस्वामी या धन रथ का ईरयिता—प्रेरक प्रदाता है (तुचे तु नः-गाधं विदा) सन्तानोत्पादन के लिये "तुक् 'तुच्' अपत्यनाम" [निघं० २।२] तो जो प्रतिष्ठारूप वीर्य को प्राप्त करा संयत कर "गाधृप्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च" [भ्वादि०]।

परमात्मा अद्भुत देव है वह हमें बसने के साधन देता है और संसिद्ध भोग धनों को और भोग साधनों को भी प्रेरित करता है, वह रमणीय धन का स्वामी है। हमारे शरीर के अन्दर मूल धातु वीर्य को संयत करने का बल देता है वह जीवन का स्नेह है स्नेह से ही ज्योति आती है मृत्युरूप तमः को हटाती है ॥७॥

ऋषिः—विरूपः (परमात्मा को विविध निरूपित करने वाला उपासक)

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्रातः समिधान दीदिवः-अग्ने) हे त्राणकर्ता, अपने गुण प्रदान कर चमकाने वाले "समिन्धयमानः-अन्तर्गतणिजर्थः" स्वयं देदीप्यमान परमात्मन्! (त्वम्-इत्) तू ही (सप्रथाः-ऋतः कविः-असि) सर्वतः पृथु-सर्वत्र-व्याप्त एवं प्रसिद्ध "सप्रथाः सर्वतः पृथु....." [निरु० ६।७] सत्यव्रती "ऋतवान्-अकारो मत्वर्थीयः" सर्वज्ञ है (त्वां वेधसः-विप्रासः-आविवासन्ति) तुझे वेधन करने वाले—लक्ष्य बनाने वाले "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते" [मुण्ड० २ २।४] मेधावी विद्वान् भली प्रकार अपने अन्दर स्तुति द्वारा सेवन करते हैं।

परमात्मन्! तू ही त्राणकर्ता सर्वत्र प्रसिद्ध प्रकाशक, प्रकाशमान सर्वज्ञ देव है तथा सत्यवान् सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति धृति में स्थिरधर्मा जीवों के कर्मफलों के देने में सत्यव्रती है, अतएव तुझ से प्रार्थना की परम्परा है "असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मा अमृतं गमय" [श० १४।२।१।३०] असत्—पापसे सत् पुण्य की ओर लेजा, अन्धकार से ज्योति की ओर लेजा, मृत्यु से अमृत की ओर लेजा। मेधावी लक्ष्यवेधी तेरा वेधन करते हैं ओ३म् को धनुष अपने आत्मा को शर और तुझ ब्रह्म को लक्ष्य बनाकर वेधन करते हैं तेरा आनन्दरस चुवाने के लिये। सो मैं उपासक भी उनमें से एक हूं ॥८॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा विषय लोलुप उत्थान का इच्छुक जन)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृध२ँ रयिं पावक श२ँस्यम्।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृह२ँ सुनीती सुयशस्तरम् ॥९॥

(पावक-उपमाते-अग्ने) हे पवित्रकारक, जीवन को ऊंचा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने वाले, अग्रणायक परमात्मन् ! (नः) हमारे लिये (वयोवृधं शंस्यम्) आयुवर्धक, प्रशंसनीय (रयिं सुनीती-आरास्व) ओजधन को सुनेतृत्व से भरपूर दो तथा (पुरुस्पृहं सुयशस्तरम्) बहुत चाहने योग्य, अत्यन्त अच्छयश करने वाले (च) और (नः) हमारे लिये 'रयिम्-आरास्व' ज्ञान धन को सुनेतृत्व से भरपूर दे।

परमात्मा उपासक के भीतरी जीवन का निर्माण करता है अपितु उसके अन्दर प्रशंसनीय जीवनगतिवर्धक ओज को सुनेतृत्व से भर देता है। तथा उसे पवित्र कर बहुत आकांक्ष्य अत्यन्त अच्छे यश करने वाले अध्यात्म ज्ञान को भी सुनेतृत्व से भर देता है ॥९॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने में कुशल उपासक)

२उ ३ १२ ३ २३ १ २ ३ १र २र
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥

(यः-मन्द्रः-होता जनानाम्) जो हर्षित करने वाला दाता "हु दानेऽत्र" परमात्मा जनो के लिये "चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि" [अष्ट० २।३।१२] (विश्वा वसु दयते) समस्त प्रकार के धनों को देता है। (अस्मै-अग्नये) इस परमात्मा के लिये (मधोः-न प्रथमानि पात्रा) मधुर रस के श्रेष्ठ पात्रों के समान (स्तोमाः प्रयन्तु) हमारे स्तुतिवचन हावभाव रस भरे प्राप्त हों।

परमात्मा हर्षयिता दाता है, उसके दिए सब प्रकार के पदार्थ हैं उदरपूर्ति के लिये अन्न, स्वाद के लिये फल, स्वास्थ्य के लिये ओषधि, सुख लाभ के लिये कपास काष्ठ लोह, भूषार्थ स्वर्णादि,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रत्न, पीने-नहाने-धोने को जल, ताप प्रकाशार्थ अग्नि, श्वास लेने को वायु आदि दिए हैं। इनके प्रतीकार में हम केवल हाव-भाव भरे स्तुति वचन मधुर रस भरे पात्रों के समान उसके लिये दे सकते हैं—देते हैं कृतज्ञता प्रदर्शित करने और सङ्ग लाभ के लिये ॥१०॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठो वामदेवोवा (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला या वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)

३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १र २र ३ १ २ ३१र २र ३ २ ३ १ २
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

(वः) तुझ 'वचन व्यत्ययः' (उर्जः-नपातम्) अपने और मेरे आत्मबल के न गिराने वाले (प्रियम्) स्नेह करने वाले और स्नेह करने योग्य—(स्वध्वरम्) श्रेष्ठ अध्यात्म यज्ञ के आधार देव—(चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेताने वाले—(अरतिम्) कामवासनारहित या प्राप्तव्य—(विश्वस्य-दूतम् अमृतं-अग्निम्) सबको अपना सन्देश देने वाले अमर स्वरूप परमात्मा को (एनः-नमसा-आहुवे) इस नम्र स्तुतिरूप भेंट द्वारा अपने अन्दर आमन्त्रित करता हूं।

मेरे परमात्मन्! तू अपने और उपासक के आत्मबलों को न गिराने वाला है अपितु उपासक को ऊपर उठाते-उठाते अपने अमृत शरण में ले लेता है, तू अमृतस्वरूप है। उपासक को सदा साव-धान रखता है चेष्टाकुशल बनाता है उपासक का प्यारा और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक से प्यार करने वाला है सत्य सदेश से हितसाधक परमात्मा तू है तुझे मैं अपने हृदय में नम्र स्तुति से आमन्त्रित करता रहूं ॥१॥

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २

अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि ॥२॥

(वनेषु मातृषु शेषे) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू रश्मियों "वनं रश्मिनाम" [निघं० १।५] मानव मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुरसों में "यः कपाले रसो लिप्त आसीत् ते रश्मयोऽभवन्" [श० ६।१।२।६] एवं शरीर की नाड़ियों में "मातरः-नद्यः" [निघं० १।१३] "सीराः-नद्यः" [निघं० १।१३] "सीराः-नाड्यः सीरा युञ्जन्ति कवयो...." [यजु० १२।६७] निहित रहता है (त्वां मर्तासः समिन्धते) तुझे मनुष्य प्रदीप्त करते हैं—साक्षात् करते हैं (अतन्द्रः) तू तन्द्रारहित-सावधान-अनन्त ज्ञानवान् (हविष्कृतः-हव्यं वहसि) आत्मसमर्पी की हावभाव भरी स्तुतिरूप भेंट को वहन करता है—स्वीकार करता है (आत्-इत) इसके अनन्तर ही (देवेषु राजसि) तू उस आत्मसमर्पी मर्त्य—मरणधर्मीजन को मुक्तात्माओं में विराजमान कर देता है 'राजयसि-राजसि-अन्तर्गतणिजर्थः"

परमात्मन्! तू मानव मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं और शरीर की प्राणनाडियों में अदृश्य रूप में वर्तमान है, तुझे उपासक अपनी स्तुतियों से वैराग्यपूर्वक मन में बिठाता है और मस्तिष्क तन्तुओं में प्राणनाड़ियों में अभ्यास से सिद्ध कर हृदय में साक्षात् करता है। ऐसे उपासक को परमात्मन् तू मुक्तात्माओं में पहुँचा देता है अपना अमृतानन्द पुरस्कार प्रदान करता है ॥ २ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि:—सौभरि: (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने में कुशल)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
३ २ ३ १२ २र २ ३ १ १ ३ १ २
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

(यस्मिन् व्रतानि-आदधुः) जिसकी प्राप्ति के निमित्त व्रतों-ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य आदि को समन्त-रूप से धारण करते हैं "यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" [कठो० १।१।१५] (गातुवित्तमः-अदर्शि) हमारी विधि का भलीभांति ज्ञाता "गातुः-गमनम्" [निरु० ४।२२] दृष्ट होता है—साक्षात् हो जाता है (आर्यस्य वर्धनं सुजातम्-अग्निम्) उपासक या श्रेष्ठ गुण के वर्धक सम्यक् साक्षात् परमात्मा को (नः-गिरः) हमारी स्तुतियां (उपनक्षन्तु—उ) निरन्तर प्राप्त होती रहें "नक्षति गतिकर्मा" [निघं० २।१४]

जो परमात्मा हमारी गतिविधियों को जानता है जिसकी प्राप्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य आदि व्रत धारण करते हैं उसका आत्मा में साक्षात्कार हो जाता है, उसे हमारी स्तुतियां निरन्तर प्राप्त होती रहें जिससे कि वह मुझ उपासक एवं श्रेष्ठगुण को बढाता रहे ॥३॥

ऋषि:—मनु: (मननशील उपासक)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥

(उक्थे-अध्वरे) स्तुतिरूप यज्ञ में (अग्निः पुरोहितः-ग्रावाणः-बर्हिः) अग्नि तो है परमात्मा शेष पुरोहित, ग्रावाणः-विद्वान्-ऋत्विक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विद्वांसो हि ग्रावाणः" [श० ३।९।३।१४] और बर्हि-यजासन हैं सो वे (ब्रह्मणस्पते-मरुतः-देवाः) हे मेरे शरीर के अन्दर वर्तमान अन्तःकरणयुक्त प्राण ! "प्राणो वै ब्रह्मणस्पतिः" [श० ४।४।१। २३] अन्य प्राण ऋत्विक् "प्राणा देवाः" [श० ६।३।१।१५] और इन्द्रियां "प्राणा इन्द्रियाणि" [तां० २।१४।२३] तुम हो। अतः (वरेण्यम्-अवः-ऋचा यामि) यजनीय परमात्मा से वरने योग्य रक्षण को स्तुति के द्वारा मांगता हूँ कि तुम इस वाक्-यज्ञ को सम्यक् सिद्ध करो।

स्तुतियज्ञ में यज्ञाधिनायक बाहिरी अपेक्षित नहीं किन्तु यजनीय देव तो परमात्मा, पुरोहित है हृदयस्थ अन्तःकरणसहित मुख्य प्राण, ऋत्विक् हैं अन्य प्राण तथा इन्द्रियां, स्तुतिकर्ता अपना आत्मा है यजमान, शरीर है वेदि, स्तुतियां हैं आहुतियां। ये सब यज्ञिय भावना से प्रवृत्त हुए परमात्मा को प्रकाशित करते हैं ॥४॥

ऋषिः—सुदीतिपुरुमीढावृषी (आत्मसमर्पण सुदानकर्ता, स्तुति का बहुत सींचने वाला उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
३ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥

(पुरुमीढ-अवसे गाथाभिः) हे बहुत स्तुतियों को सींचने वाले उपासक तू अपनी रक्षा के लिये स्तुतियों से "गाथा वाङ्नाम" [निघं० १।११] (शीरशोचिषम्-अग्निम्-ईडिष्व) सर्वत्र शयन-शील-व्यापक ज्योति वाले परमात्मा की अवश्य स्तुति कर (राये श्रुतम्-अग्निम्) मोक्षैश्वर्य के लिये प्रसिद्ध परमात्मा की शरण ले (सुदीतये-अग्निः-नरः-छर्दिः) सुदान-आत्मदान-आत्मसमर्पण करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले के लिये नायक परमात्मा शरण बन जाता है "छर्दिः-गृहनाम" [निघं० ३।४]

मानव की सच्ची रक्षा परमात्मा की स्तुति से प्राप्त होती है अतः स्तुतियों से उस को तृप्त कर, सर्वत्र व्याप्त परमात्मा की शरण परमरक्षा है, वह आत्मसमर्पण करने वाले अपने उपासक को मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने के लिये अपनी अनश्वर शरण में ले लेता है ॥ ५ ॥

ऋषिः — प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥ ६ ॥

(श्रुत्कर्ण-अग्ने) हे श्रवणसमर्थ कर्णशक्तिवाले—श्रवणार्थ शक्तिरूप कर्ण वाले परमात्मन् ! तू (श्रुधि) मेरी प्रार्थना को सुन स्वीकार कर, वह यह कि (अध्वरे बर्हिषि) अध्यात्म यज्ञ में हृदयाकाश में (सयावभिः-वह्निभिः-देवैः) साथ गमन करने वाले साथ प्राप्त होने वाले निजस्वरूप वाहक दिव्यगुणों के साथ तू 'आसीद-इत्याकांक्षा' आविराज । तथा (मित्रः-आसीदतु) आप वायुरूप होकर "अयं वै वायुर्मित्रोयोऽयं पवते" [श० ६।५।४।१४] विराजें (प्रातर्यावभिः-अर्यमा 'आसीदतु') आप अपने से प्रथम आने वाले—प्राप्त होने वाले गुणों के साथ सूर्यरूप में "अर्यमा-आदित्यः" [निरु० ११।१३] आ विराजें ।

परमात्मा स्तुति आमन्त्रण को सुनने में स्वीकार करने में पूर्ण समर्थ और स्वतन्त्र है वह उपासक के हृदय में आता है अग्निरूप में ज्वालाओं के समान वाहक गुणों के साथ, वायुरूप में प्रवाहों के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान प्रेरक गुणों के साथ और सूर्यरूप में प्रातः रश्मियों के समान ज्ञानप्रकाशक गुणों के साथ। वह तेज, बल और ज्ञान का दाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मगुणों को अपने अन्दर धारण करने में कुशल उपासक)

३र २र ३ २३२३ ३ २ ३ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
१ २ ३१२ ३१र २र ३ १र २र ३ १२
अनु मातरं पृथिवीं विवावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥

(दैवोदासः-अग्निः-देवः) द्युलोक के दर्शक सूर्य में वर्तमान "दिवोदासः-षष्ठीविभक्तेरलुक् समासे, दासो दर्शकः सूर्यः" दस दर्शने (चुरादि०) तत्र वर्तमानः-दैवोदासः" परमात्मा देव "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म्, खं ब्रह्म" [यजु० ४०।१७] (नाकस्य शर्मणि तस्थौ) आनन्द के घर मोक्षधाम "शर्म गृहनाम" [निघं० ३।४] में स्थिर हुआ (मातरं पृथिवीं प्रवावृते-अनु 'अनु वावृते' वि 'विवावृते') समस्त वस्तुओं की निर्मात्री प्रथित जगती सृष्टि "जगती हीयं पृथिवी" [श० २।२।१।२०] "जगत्यां जगत्" [यजु० ४०।१] के प्रति पुनः पुनः प्रवृत्त होता है—उत्पन्न करता है, पुनः पुनः अनुवृत्त होता अनुशासित करता है—धारण करता है, पुनः पुनः विवृत्त होता है—उससे विगत होता है—उसका संहार करता है, यह ऐसा है (इन्द्रः-न मज्मना) जैसे राजा शासन बल से "मज्मना बलनाम" [निघं० २।९] राष्ट्र को बनाता-बढ़ाता है, उसका रक्षण करता है, उससे निवृत्त भी हो जाता है। वह ऐसा परमात्मा मोक्ष से पूर्व मेरे हृदय में प्राप्त हो।

सूर्य के प्रकाश और ताप का प्रभाव बड़ा भारी है परन्तु इस में प्रकाश और ताप देने वाला इसके अन्दर वर्तमान व्यापक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् ब्रह्म परमात्मा है वही मुक्तों को मोक्षरूप आनन्द भवन में बसाता है और वही इस विस्तृत सृष्टि को उत्पन्न करता है धारण करता और अन्त में इसका प्रलय करता है, उसे हृदय में धारण करना चाहिए ॥७॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च (मेधा से परमात्मा में अतनगमन प्रवेश करने वाला या पवित्र हो गति प्रवेश करने वाला उपासक)

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
३ १ २ ३क २र ३ १ ३ ३ १ २
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८॥

(जात सुक्रतो) हे प्रसिद्ध तथा सुकर्मवाले ! "क्रतुः कर्मनाम" [निघं० २।१] तू (अध ज्मः-अधवा बृतः-रोचनात्-दिवः-अधि) अथवा पार्थिव वस्तुओं में वर्तमान "ज्मा पृथिवी" [निघं० १।१] अथवा महान् प्रकाशमन द्युलोक में द्युलोकस्थ तारामण्डल में वर्तमान तेरे गुणों से (मम गिरा) मेरी स्तुति से (अया तन्वा वर्धस्व) इस अपनी द्यावापृथिवीमयी एक पाद काया से "पादोऽस्य विश्वा भूतानि" [ऋ० १०।९०।३] मेरे अन्दर बढ़कर साक्षात् हो (पृण) इस प्रकार मुझे तृप्त कर ।

परमात्मन् ! पृथिवी की वनस्पतियों, सोना-चांदी रत्नों, मनुष्य पशु-पक्षी सरिसृपों, सरित् सागर पर्वतों में और द्युलोक के विविध ग्रहतारों में तेरे कृतिगुणों के दर्शन से द्यावापृथिवीमयी सृष्टिरूप तेरी एक पाद काया द्वारा तेरे अनन्त स्वरूपज्ञान से और मेरे द्वारा की गई स्तुति से मेरे अन्दर बढ़-बढ़ कर साक्षात् होता रहे मुझे प्राप्त कर ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सबको मित्र बनाने वाला उपासक)

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ २
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥६॥

(अग्ने) हे परमात्मन् ! तू (वना कायमानः) ज्ञानतन्तुओं—वैराग्यभावनाओं को चाहता हुआ मेरे प्रमाद से (यत्-मातॄः-अपः-अजगन्) जो वैराग्यशून्य अभ्यासमात्र के द्वारा नाड़ियों प्राणों के प्रति चला गया—छिप गया साक्षात् न हो सका (तत् ते निवर्तनं न प्रमृषे) तेरा वह यह मेरी ज्ञानदृष्टि वैराग्यदृष्टि से हट जाना सहन नहीं करता हूं (यत्-दूरे सन्-इह-अभुवः) कि तू मेरे ध्यान से दूर होता हुआ यहां मेरे अन्दर साक्षात् हो सके।

परमात्मा का साक्षात्कार अभ्यास और वैराग्य से होता है, वैराग्य का स्थान ऊंचा है "तस्य परं वैराग्यमुपायः" [योग० १।१८ व्यास०] असम्प्रज्ञात समाधि का उपाय परवैराग्य है, उसे प्रमाद से त्याग कर अभ्यासमात्र से परमात्मा के साक्षात्कार की आशा रखना तो परमात्मा को अपने से दूर करना है ॥९॥

ऋषिः—कण्वः (मेधावी वक्ता प्रगतिशील उपासक)

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥

(अग्ने) हे परमात्मन् ! (त्वां ज्योतिः) तुझ ज्योति को (शश्वते जनाय) शाश्वतिकजन—अमरजन मुक्त आत्मा होजाने के लिये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मनुः-निदधे) मननशील उपासक अन्दर धारण करता है, (ऋत-जातः-उक्षितः) ऋत-वेदज्ञान के श्रवण से प्रसिद्ध तथा ध्यान से सिक्त-निदिध्यासन से प्राप्त हुआ (कण्वे दीदेथ) मेधावी ध्यानी के अन्दर प्रकाशित होजाता है (यं कृष्टयः- नमस्यन्ति) जिस परमात्मा को कर्मशील साधारणजन "कृष्टयः-मनुष्याः" [निघं० २।३] नमस्कार करते हैं बाहरी रीति से स्वीकार करते हैं।

साधारणजन परमात्मा का श्रवण करके प्रत्येक कर्म के अनुष्ठान में उसे नमस्कारमात्र करके स्वीकार करते हैं। उनसे उत्कृष्टजन श्रवण के अनन्तर परमात्मा का मनन भी करते हैं। और ऊंचे अधिकारी उपासक श्रवण मनन के पश्चात् परमात्मा का निदिध्यासन भी करके परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। "आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्" [योग० १।४८ व्यास०] आगम—श्रवण से, अनुमान—मनन से, ध्यानाभ्यासरस—निदिध्यासन से इन तीन स्थानों में प्रज्ञा को लगाकर साक्षात्कार प्राप्त करते हैं ॥१०॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः— वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥१॥

(द्रविणोदाः-देवः) द्रविण-धन-मोक्षैश्वर्य "द्रविणोदाः-धनं द्रविणम्" [निरु० ८।१] को देने वाला परमात्मा "द्रविणोदा इति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रविणं ह्येभ्यो ददाति" [श० ६।३।३।१३] (वः पूर्णाम्-आसिचम्) उपासकजनो तुम्हारी—अपनी हावभावभरी स्निग्ध उपासनास्थली—हृदय भूमि को (विवष्ट) विशेषरूप से चाहे "वश कान्तौ" [अदादि०] अतः (उत्सिञ्चध्वं वा-उपपृणध्वं वा) तुम अपनी स्निग्ध उपासनाधारा से परमात्मा को सींचो और आपूर भरपूर करदो (आत्-इत्) अनन्तर ही—तुरन्त ही (देवः-वः-ओहते) परमात्मदेव तुम्हें अपनी ओर समन्तरूप से वहन कर लेता है—अपने में स्थान दे देता है।

वह मोक्षदाता परमात्मा उपासक की स्नेहभरी उपासनास्थली हृदयभूमि को चाहता है जबकि उपासक अपनी स्नेहभरी उपासना धारा से उसे सींचे और सींचते सींचते उसे आपूर भरपूर कर दे—सींचते-सींचते सींचने की आत्मशक्ति समाप्त कर दे तो परमात्मा उसे अपनी परमदया से ऊपर उठाकर इस देहबन्धन से छुड़ा निज आश्रय में ले अमृतरूप मोक्ष प्रदान करता है ॥१॥

ऋषिः—कण्वः (मेधावी वक्ता प्रगतिशील उपासक)

देवता—ब्रह्मणस्पतिः (वेद एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा)

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२॥

(ब्रह्मणस्पतिः प्रैतु) वेदज्ञान एवं ब्रह्माण्ड का स्वामी परमात्मा मुझे अध्यात्म यज्ञ में प्रेरित करे—आगे बढ़ावे (सूनृता देवी प्र-एतु 'प्रैतु') दिव्या मन्त्रस्तुति भी मुझे अध्यात्म यज्ञ में प्रेरित करे (देवाः) मेरे प्राण "प्राणा वै देवाः" [श० ८।२।२।८] (नः) हमारे (वीरं नर्यम्) प्रगति देने वाले मानवहितकर (पंक्तिराधसम्) पांच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक् श्रोत्र नेत्र मन आत्मा के समर्पण द्वारा सिद्ध हुए (यज्ञम्) अध्यात्म यज्ञ को (अच्छ नयन्तु) व्याप्तरूप में निर्बाध आगे आगे जीवन में चलावें बढ़ावें।

अध्यात्मयज्ञ मानव का कल्याणसाधक है जिसे चलाने वाले प्राण हैं। ये बलिष्ठ होने चाहिएं निर्बलप्राणोंवाला मनुष्य स्वास्थ्यरूप भौतिक अमृत को नहीं पा सकता तब आध्यात्मिक अमृत का आस्वादन तो दूर ही रहेगा। अध्यात्मयज्ञ में मानव का सर्वाङ्गसमर्पण आवश्यक है, वाणी, कान, आंख, मन और आत्मा इन पांचों को हुत होजाना—लग जाना चाहिये। वाणी से स्तवन कीर्तन करना, श्रोत्र से गुणश्रवण करना आंख से संसार में उसकी कला परखना, मन से मनन, और आत्मा से उसका भावन-अनुभव करना। साथ में विश्वात्मा ज्ञानदाता की दया उसमें पूर्ण श्रद्धा अपितु उसकी मन्त्रगत स्तुति भी प्रमुख साधन है ॥२॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता-अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भि विह्वयामहे ॥३॥

(नः ऊर्ध्वः-उ-ऊतये सुतिष्ठ) हे अग्रणायक परमात्मन्! तू हमारे ऊपर निरन्तर रक्षा के लिये स्थिर रह (सविता देवः-न-ऊर्ध्वः) सूर्य देव जैसे ऊपर स्थित प्रकाश देता है (वाजस्य सनिता) अमृत अन्न-मोक्षानन्द का "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] सेवन कराने वाला (ऊर्ध्वः) हमारे ऊपर बना रह (यत्-अञ्जिभिः-वाघाद्भिः) यतः तुझे वहन करने वाली—बुलाने वाली स्निग्धमन्त्रस्तुतियोंद्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"छन्दांसि वा अञ्जयो वाघतः" [ऐ० २।२] (विह्वयामहे) विशेषरूप से बुलाते हैं—अपने हृदयसदन में आमन्त्रित करते हैं।

परमात्मन् ! सूर्य जैसे अन्धकार से बचाने के लिये प्रकाश देता हुआ ऊपर स्थित है ऐसी तू भी अज्ञान से रक्षा के लिये ज्ञान-प्रकाश देता हुआ हमारे ऊपर विराजमान रह यह एक प्रार्थना है, दूसरी प्रार्थना है कि तू मोक्षानन्द अमृतभोग का देने वाला है तुझे स्निग्ध मन्त्र स्तुतियों से अपने हृदय में आमन्त्रित करते हैं, सो दोनों तू स्वीकार कर ॥३॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर भरने तथा परमात्मा के लिये स्तुति धारण करने वाला उपासक)

२उ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र यो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥४॥

(यः-मर्त्तः) जो मनुष्य (राये प्र-निनीषति 'प्रणिनीषति') रमणीय मोक्षैश्वर्य के लिये "राये रणाय रमणीयाय" [निरु० १३।३०] अपने को प्रणयन करना चाहता है—ढालना चाहता है (वसो) हे मुझे सुख-शांति में बसाने वाले परमात्मन् ! (यः-ते दाशत्) जो तेरे लिए अपने को दे देता है—समर्पित कर देता है (अग्ने) परमात्मन्! (सः-वीरम्-उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणम्) वह तुझ बलवान् प्रशंसनीय कल्याण प्रवचनकर्ता असंख्य प्रकार से पोषणकर्ता को (त्मना धत्ते) अपने आत्मा से—अपने आत्मा में धारण करता है।

जो उपासक रमणीय मोक्षधाम में पहुंचना चाहता है और परमात्मा के आश्रय में रहना चाहता है उसे अपने आत्मा में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसनीय कल्याण वक्ता बहुत प्रकार से पालनकर्ता परमात्मा को स्तुति द्वारा धारण करना चाहिए, सर्वस्थिति में बैठते चलते भी उसका ध्यान रहे, प्रतिकूल विचार और आचार न हो ॥४॥

ऋषिः—काण्वः (मेधावी से सम्बद्ध उपासक)

१ २ ३१२ ३२ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यंसमिदन्य इन्धते ॥५॥

(पुरूणां देवयतीनां विशाम्) बहुत "पुरु बहुनाम" [निघं० ३।१] तुझ अपने इष्टदेव परमात्मा को चाहने वाले उपासकजनों के "विशः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (वः-अग्निम्) 'वः-त्वाम्'-वचनव्यत्ययः' तुझ अग्रणायक को (सूक्तेभिः-वचोभिः) उत्तम कथन किए मन्त्रवचनों—स्तवनों द्वारा (वृणीमहे) हम सम्यक् भजें "वृङ् सम्भक्तौ" [क्र्यादि०] (यम्-अन्ये-इत समिन्धते) जैसे अन्य कर्मकाण्डीजन निरन्तर सन्दीपन करते हैं "अत्र लुप्तोमानोपमा वाचकालङ्कारः" ।

जैसे भौतिक अग्नि को कर्मकाण्डीजन यज्ञ सदन में सन्दीपन करते हैं वसे परमात्मदेव को चाहने वाले मनुष्यों में विरले परमात्मा को अपने हृदय सदन में विविध मन्त्र स्तवनों से निरन्तर अपनाना चाहें ॥५॥

ऋषिः—उत्कीलः (पापदारिद्र्य का उच्छेद करने वाला उपासक)

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अयम्-अग्निः) यह सर्वप्रकाशक परमात्मदेव (सुवीर्यस्य सौभगस्य-हि-ईशे) उत्तम आयु—मुक्ति की आयु "आयुर्वीर्यम्" [मै० १।७।५] का और सौभाग्य का स्वामित्व करता है अतएव उसका प्रदान करता है (स्वपत्यस्य गोमतः-रायः-ईशे) उत्तम अपत्य सन्तान जिससे होती है ऐसे प्रशस्त इंद्रियां रहती हैं जिसमें ऐसे सदाचार संयमरूप ऐश्वर्य का स्वामित्व करता है (वृत्राहथानाम्-ईशे) पापों के हनन साधनों का "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] भी स्वामित्व करता है।

परमात्मा मानव के मोक्षैश्वर्य का भी स्वामी है जीवन्मुक्त को प्रदान करता है मोक्ष की प्रशस्तदीर्घ आयु को प्रदान करता है तथा इहलोक संसार में मानव की प्रशस्त बीजशक्ति के स्थिर भाव-सदाचार प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमरूप ऐश्वर्य का भी स्वामी है उसे प्रदान करता है। इन दोनों ऐश्वर्यों के घातक पाप भावों के नाशक विचारों का भी स्वामी है उन सद् विचारों से पाप भाव नष्ट होजाते हैं ॥६॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला)

१ २   ३ १ २ ३   १ र   २ र   ३ २
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे।
१ र   २ र   ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७॥

(विश्ववार अग्ने) हे सबके बरने योग्य अग्रणेता परमात्मन्! (त्वं गृहपतिः) तू मेरे हृदय सदन का स्वामी है (नः-अध्वरे) हमारे अध्यात्मयज्ञ में (त्वं होता) तू होता नाम का ऋत्विक्-ऋग्वेदपाठी (त्वं पोता) तू शोधन करने वाला—उद्गाता सामवेदपाठी (प्रचेता) प्रकृष्ट चेताने वाला ब्रह्मा (वार्यं यक्षि यासि च) तू हावभाव रूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम हवि को यजनकर्ता अध्वर्यु यजुर्वेदपाठी बनकर चला अमृतफल प्राप्त करा।

हे परमात्मन्! यद्यपि मैं अपने हृदय सदन का स्वामी हूँ परन्तु परमात्मन्! वहां तेरे रक्षक बनकर आने के कारण तू ही स्वामी है क्योंकि मैंने अपने को तेरे प्रति समर्पित कर दिया। अतः तू ही स्वामी है और मैं अध्यात्मयज्ञ में लगा हूँ तू ही इसे सम्पन्न कर, तू ही इसका होता है तू ही पोता—उद्गाता, तू ही अध्वर्यु है और तू ही ब्रह्मा तू ही अध्वर्यु है। बाहिरी होता आदि मुझे नहीं चाहिए, तू सबके वरने योग्य अमृतप्रसाद को प्रदान करे ॥७॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र है)

१ २ ३ १र २र ३ १ २
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपान्नपात ँ सुभग ँ सुद ँ सस ँ सु प्रतूर्तिमनेहसम् ।८॥

(सखायः-मर्तासः) हे परमात्मन्! तेरे मित्र—तुझ से मित्रता चाहने वाले तथा जिन्हें तू मित्र बना लेता है ऐसे हम उपासकजन (ऊतये) रक्षा के लिये (अपां नपातम्) प्राणों के न गिराने वाले अपितु बढ़ाने वाले—"प्राणा वा आपः" [तां० ९।९।४] (सुभगम्) श्रेष्ठ ऐश्वर्य मोक्ष के निमित्तभूत (सुदंससम्) यथार्थ सृष्टिरचनारूप और जीवों के कर्मफल प्रदानरूप कर्मों वाले—"दंसः कर्म" [निघं० २।१] (सुप्रतूर्तिम्) अच्छे संवत्सर-जीवनकाल के हेतु भूत "संवत्सरो वाव प्रतूर्तिः" [श० ८।४।१।१२] "आयुस्संवत्सरः" [मै० ४।६।८] ऐसे (अनेहसम्) क्रोधरहित अपितु दयालु—"एहस् क्रोधनाम" [निघं० २।१३] (त्वा देवम्) तुझ परमात्मदेव को (ववृमहे) स्वीकार करते हैं 'ववृमहे-छान्दसो लिट्प्रयोगः'।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा हमारा मित्र है वह भी हम उपासकों को मित्र मानता है, उससे रक्षण मिलता है संसार में भी और मोक्ष में भी। वह हमारे प्राणों को चलाने वाला दीर्घजीवन देने वाला है अमृत प्राण भी देने वाला है, उत्तम सुखैश्वर्य को भुगाने वाला जीवनकाल को सुन्दर प्रवाहित कराने वाला पूर्ण दयालु है। जीवन के प्रत्येक क्षण में हम उसे अपनावें—अपनाते रहें ॥८॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वो वामदेवो वा (प्रगतिशील निर्दोष इन्द्रिय-घोड़ों वाला या वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)

छन्दः—१, ३, ५-९ त्रिष्टुप् २, ४ जगती १० विराड् गायत्री।

१ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥१॥

(हविषा-आजुहोत) हे उपासकजनो! उस स्वतेजःस्वरूप परमात्मा को समन्तरूप से आमन्त्रित करो (हविषामर्जयध्वम्) श्रद्धारूप भेंट से प्रेरित करो "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२।४३] (होतारं गृहपतिं निदधिध्वम्) स्वीकार करने वाले हृदयसदन के स्वामी परमात्मा को अपने अन्दर ध्यान से धारण करो (पस्त्यानां यजतम्) प्रजाओं—मनुष्यों के "विशो वै पस्त्याः" [श० ५।३।५।१९] "विशो मनुष्यनाम" [निघं० २।३] यजनीय-सङ्गमनीय—(रातहव्यम्) दिए हैं भोग पदार्थ जिसने उस ऐसे परमात्मा को (इडःपदे) श्रद्धा के स्थान हृदय में—स्वात्मा में "श्रद्धा इडा" [तै० सं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१।७।२।५] (नसा सपर्यत) नम्रस्तुति से पूजित करो—सत्कृत करो—सेवन करो।

मनुष्यमात्र के यजनीय-सङ्गमनीय भोगप्रद तेजःस्वरूप परमात्मा का श्रद्धा के स्थान हृदयसदन में नम्रस्तुति द्वारा सत्कार करो अपने अन्दर श्रद्धास्नेह वैराग्य से आमन्त्रित कर आत्मसमर्पण धारा को उसकी ओर प्रेरित कर निरन्तर ध्यान करें, इसमें मानव का उत्थान और आत्मकल्याण है ॥१॥

ऋषिः—वार्ष्टिहव्य उपस्तुतः (ज्ञानवृष्टि में स्नात उपासक)

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे।
२ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि२ दूत्यां चरन् ॥२॥

(शिशोः-तरुणस्य) इस शिशुरूप प्रशंसनीय प्रिय "शिशुः-शंसनीयः" [निरु० १०।३९] एवं युवा के समान महाबलवान् परमात्मा का (चित्रः-वक्षथः-इत्) अद्भुत संसार वहन कार्य है कि (यः-मातरा धातवे न-अन्वेति) जो जगत् भर की माताओं—द्यौ और पृथिवी की ओर स्तन पान करने नहीं जाता है (अनूधा) क्योंकि ये दोनों दुग्धाधान से रहित हैं भले ही जीवात्माओं के लिये रखती हों परमात्मा शिशु के लिये नहीं क्योंकि (अजीजनत्) जैसे ही यह परमात्मा शिशु प्रसिद्ध हुआ (अध चित्) अनन्तर ही (सद्यः) तुरन्त (महि दूत्यं चरन्) सबके भारी प्रेरणकार्य को करता हुआ (आववक्षथ) समन्तरूप से प्राणीमात्र मनुष्यमात्र का उत्पादन कर्मफलप्रदान को पूरा करता है।

उपासक की दृष्टि में परमात्मा एक सुन्दर प्रशंसनीय प्रिय शिशु के रूप में आता है, समस्त जगत् के पदार्थों की दो माताएं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, एक द्यौः-जो अपने दिव्य जलरूप दुग्ध का पान कराती है दूसरी पृथिवी जो अपने ओषधिरस दुग्ध को पिलाती है परन्तु परमात्मा शिशु इन दोनों के दुग्ध लेने नहीं जाता उसके लिये ये दुग्धाधान रखती ही नहीं तब समस्त संसार का चालनकार्य स्वसामर्थ्य से महा बलवान् युवा बनकर करना उसका आश्चर्य ही हुआ कारण कि हमारे जैसा देहधारी तो वह है ही नहीं ॥२॥

ऋषिः—बृहदुक्थः (बढ़ चढ़कर वक्ता—स्तुतिकर्ता उपासक)

३२ ३ १२ ३१२ ३१२ ३१२ ३१ २ ३१२
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।
३१२ ३ २ १२ ३ २ ३१२ ३२ ३१२
संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्र ॥३॥

(ते-इदम्-एकम्) हे परमात्माग्ने ! यह पृथिवीस्थ अग्नि तेरी एक ज्योति है (परः-उ ते-एकम्) पर—द्युलोकस्थ सूर्य अग्नि तेरी दूसरी ज्योति है (तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व) तीसरी तेरी ज्योति—अमृत ज्योतिस्वरूप है उससे हमारे अन्दर प्रवेश कर । (संवेशनः) अन्दर संवेश गहन प्रवेश समागम करने वाला तू (तन्वे) अपने तनुरूप मुझ आत्मा में "य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्" [श० १४।६।७।३२] (चारुः-एधि) भली प्रकार हो—रहो (देवानां प्रियः) तू मुमुक्षुओं का प्रिय है—स्नेही है (परमे जनित्रे) और मैं तुझ परम उत्पादनाधार में समर्पित हूं ।

द्यावापृथिवी में नीचे ऊपर अग्नि और सूर्य परमात्मा की दो ज्योतियां है "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [कठो० ५।१५] ये ज्योति तो दिन रात प्राप्त होती हैं काम आती हैं परन्तु तृतीय ज्योति परमात्मा की अमृतस्वरूप ज्योति है, जिसके लिये कहा है "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८।३।४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस अपनी अमर ज्योति को परमात्मा हमारे आत्मा में प्रविष्ट करता है तब ही आत्मकल्याण होता है वह मुमुक्षुओं का प्रिय है परन्तु परमात्मा अपनी अमृत ज्योति को देता है जबकि उस परम उत्पत्तिस्थान परमात्मा में अपना समर्पण कर दिया जाता है ॥३॥

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता उपासक†)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ः १ २
इम ँ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सम्महेमा मनीषया ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १र २ ३ १ २
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य स ँ सद्यग्ने सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥४॥

(अर्हते जातवेदसे) पूजनीय "अर्हते कर्मणि शतृप्रत्ययश्छान्दसः" सर्वज्ञानप्रकाशक तथा सर्वज्ञ परमात्मा के लिये (इमं स्तोमम्) इस स्तुतिसमूह स्तुतिप्रवाह को (रथम्-इव) रथ जैसे को—रथ जैसे अभीष्ट स्थान पर पहुँचाता है ऐसे अभीष्ट मोक्षधाम पर पहुँचाने वाले को (मनीषया सम्महेम) हृद्यभावना—श्रद्धा से हम समर्पित करते हैं (अस्य संसदि) इस परमात्मा की सङ्गति-उपासना में (नः प्रमतिः-भद्रा हि) हमारी प्रकृष्ट धारणा—मानसिक स्थिति—अन्तःस्थली पुण्य एवं कल्याणरूपा होजावे, अतः (अग्ने तव सख्ये) हे परमात्मन् ! तेरे सखापन में (वयं मा रिषाम) हम पीड़ित न हों ।

मानव का प्राप्तव्य इष्टदेव परमात्मा तथा गन्तव्यस्थान मोक्ष धाम है, परमात्मा पूज्य है जो हम सबको जानने वाला है उसे पाने या उस तक पहुँचने के लिये स्तुतिप्रवाह रथ के समान है पहुँचाने वाला साधन है । उसके सहारे हम उस तक पहुँच सकेंगे। परन्तु चलें श्रद्धा से परमात्मा की उपासना में सङ्गति—हमारी आत्मस्थिति अपने रूप में परिमार्जित कल्याणमयी हो जावेगी जो

† "कुत्सः कर्ता स्तोमानाम्" (निरु० ३।२२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष में होती है उस परमात्मा के सखिभाव में हम बाधित न होंगे और मोक्ष से निर्बाध रहेंगे ॥४॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चनबल को धारण करने में कुशल उपासक†)

३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ उ ३ २ ३ १
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
कवि ँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥५॥

(दिवः—मूर्धानम्) द्युलोक के मूर्धारूप को—द्युलोक से भी परे वर्तमान को (पृथिव्याः-अरतिम्) पृथिवीलोक के स्तर—निम्न-रूप—पृथिवी के भी अवर वर्तमान को (कविं सम्राजम्) क्रान्तदर्शी सम्यक् सर्वत्र राजमान—(जनानाम्-अतिथिम्) जन्यमान प्राणी-मात्र के सत्करणीय—(नः-आसन्-पात्रम्) हमारे प्रमुख पूजापात्र (ऋत-आजातम्) अध्यात्म यज्ञ में प्रसिद्ध होने वाले (वैश्वानरम्-अग्निम्) विश्वनायक परमात्मा को (देवाः-जनयन्त) ध्यानी मुमुक्षु जन अपने अन्दर प्रसिद्ध करते हैं—साक्षात् करते हैं ।

परमात्मा द्युलोक के ऊपर और उसके सम्भालनेवाला है तथा पृथिवीलोक निम्नस्तर और उसके भी सम्भालने वाला विश्वनायक है वह सर्वज्ञ विश्व का सम्राट् मनुष्यों का सत्करणीय अतिथि और पूजा का प्रमुख पात्र है उसे ध्यान यज्ञ में मुमुक्षुजन साक्षात् करते हैं ॥५॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
वि स्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥६॥

† "वाजयति-अर्चतिकर्मा" (निघं० ३।१४)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने) हे अग्रणायक परमात्मन् ! (उक्थेभिः) स्तुतियों द्वारा नम्र हुए (देवाः) मुमुक्षुजन (त्वत्) तुझ से—तेरे से (विजनयन्त) अपनी प्राप्तव्य कामनाओं को विशेषरूप में प्रादुर्भुत करते हैं—प्राप्त करते हैं (पर्वतस्य पृष्ठात्-आपः-न) जैसे पर्वत के उपरिभाग से निम्न स्थल पर जल बहते हुए प्राप्त होते हैं (सुष्टुतयः-गिरः) भली प्रकार स्तुति वाणियां (तं त्वा वाजयन्ति) उस तुझको हमारी ओर प्रेरित करती हैं या प्रेरित होने को बल देती हैं (गिर्ववाहः-अश्वाः-आजिं जिग्युः) जैसा कि योद्धा के 'गिर्ववाह' वाणी समूह को वहन किए हुए—प्रेरणा पाए हुए—घोड़े संग्राम को जीतते हैं "आजौ संग्रामे" [निघं० २।१७]

परमात्मा की आनन्द धाराएं पाने के लिये उपासकजन स्तुतियां करते करते इतने नम्र होजाते हैं कि उससे आनन्द धाराएं बहती हुईं ऐसे चली आती हैं जैसे पर्वत से नम्रस्थल पर जल धाराएं बहती चली आया करती हैं तथा उपासक की स्तुतियां परमात्मा को अपनी ओर प्रेरित करती हैं जैसे संग्राम में योद्धा की बढ़ावा देने वाली वाणियां विजय पाने के लिये घोड़ों को प्रेरित करती हैं ॥६॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ २ १ २
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳसत्ययजꣳरोदस्योः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निं पुरा तनयित्नो रचित्ताद्धिरण्य रूपमवसे कृणुध्वम् ॥७॥

(अध्वरस्य राजानम्) अध्यात्म यज्ञ के प्रकाशक इष्टदेव—(रुद्रं होतारम्) सन्मार्ग वक्ता एवं आत्मसमर्पण स्वीकार करने वाले को (रोदस्योः) द्यावापृथिवीमयी सृष्टि के "रोदसी द्यावा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवीनाम" [निघं० ३।३०] (सत्ययजम्) सत्ययजन करने वाले—यथार्थ नियन्त्र करने वाले—(हिरण्यरूपम्) स्वर्णरूप-तेजःस्वरूप—(अग्निम्) परमात्मा को (अचित्तात् तनयित्नोः पुरा) चेतना रहित जिससे होजाता है उस शिर पर गर्जते हुए मृत्यु से पूर्व (अवसे) अपने रक्षण के लिये—आत्मरक्षा जिसमें है ऐसे मोक्ष-धामरूप अमृत शरण प्राप्ति के लिये—जीवन्मुक्त बनने के लिये (वः) तुम उपासको "विभक्तिव्यत्ययः" (आकृणुध्वम्) परमात्मा को अपनाओ।

द्यु लोक—ऊपर से लेकर पृथिवी—निम्न तक समष्टि सृष्टि का यथावत् नियमन करने वाला तेजःस्वरूप परमात्मा मानव का सच्चा हितकर और सत्यमार्ग का उपदेश देता रहता है वह अध्यात्मयज्ञ का परम इष्टदेव है उसको पदे पदे शिर पर गर्जते हुए मृत्यु से बचने के लिये अपनाना—धारण करना ध्येय होना चाहिए ॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३ १उ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्धे राजा समर्यो नमोभि र्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८॥

(राजा-अर्यः) विश्व में राजमान स्वामी परमात्मा "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३।१।१०३] (नमोभिः) नम्र स्तुति वचनों से (समिन्धे) आत्मा में प्रकाशित होता है (यस्य प्रतीकम्) जिसका प्रत्यक्ष—प्रतिदर्शन—साक्षात्स्वरूप" प्रतीकं प्रत्यक्तं भवति प्रतिदर्शनमिति वा" [निरु० ७।३१] (घृतेन-आहुतम्) स्वतेज से प्राप्त है युक्त है "तेजो वै घृतम" [तै० सं० २।२।९।४] अतः जब (नरः सबाधः-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हव्येभिः-ईडत्ते) देवजन-मुमुक्षुजन "नरो वै देवविशः" [जै० १।८९] अध्यात्मयज्ञ के ऋत्विज बनकर "सबाधः-ऋत्विनः" [निघं० ३।१८] अपने हावभावरूप स्निग्ध स्तवनों से उसकी स्तुति करते हैं तो (उषसाम्-अग्रम्) उषा वेलाओं में—जीवन के प्रभातों में प्रथम (अग्निः-आशोचिः) परमात्मा प्रकाशित होता है।

विश्व में व्यापक विश्व का राजा अपने तेजःस्वरूप से स्वयं प्रकाशमान है, जब मुमुक्षुजन अध्यात्मयज्ञ के याजक बनकर उसके लिये अपनी हावभाव भरी स्निग्ध स्तुतियां अर्पित करते हैं तो वह जीवन के प्रभातवेला में अपना ऐसा प्रकाश देता है वे जीवनभर अज्ञानान्धकार से परे रहकर अपनी जीवनसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥८॥

ऋषिः—त्वाष्ट्रः-त्रिशिराः (त्वष्टा-सूर्य-ज्ञानसूर्य परमात्मा से सम्बद्ध उपासक वेदत्रयी या स्तुति प्रार्थना उपासना में शिरोवत् मूर्धन्य मुमुक्षु)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥९॥

(अग्निः-बृहता केतुना) प्रकाशस्वरूप परमात्मा अपने महान् प्रज्ञान-प्रकृष्टगुण-ज्ञानप्रकाश से "केतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] (रोदसी प्रयाति-आ) द्युलोक और पृथिवीलोक को—द्यावापृथिवीमयी समष्टि सृष्टि से पृथक् गया हुआ है और इसमें आगत—प्राप्त भी है (वृषभः-रोरवीति) ज्ञानप्रकाश करने वाला वेद का पुनः पुनः उपदेश करता है (दिवः-चित्-अन्तात्) मोक्षधाम से लेकर "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (उपमाम्-उदानट्) मेरे समीप—हृदय या आत्मा तक "उपमे अन्तिकनाम" [निघं० २।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उदानट्) प्राप्त है (महिषः-आपम्-उपस्थे ववर्द्ध) वह महान् देव "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३।३] मेरे प्राणों के "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] उपाश्रयभूत हृदय में ध्यान द्वारा प्रवृद्ध होता है।

परमात्मा अपने महान् ज्ञानमय प्रकाश से समस्त द्यावापृथिवी मयी समष्टि सृष्टि से बाहिर और उसके अन्दर भी प्राप्त है वह सुख की वृष्टिकर्ता सत्य ज्ञान वेद का उपदेश तथा सत्य नियम का घोष करने वाला है, अपने मोक्षधाम से लेकर समीप से समीप हमारे हृदय एवं अन्तरात्मा तक को प्राप्त हुआ है, वह प्राणों के केन्द्र-हृदय में उपासना द्वारा साक्षात् है ॥९॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)

३ २उ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
३ १ २ ३१२ ३ २
दूरे दृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१०॥

(नरः) हे मुमुक्षु जनों ! "नरो वै देवविशः" [जै० १।८९] तुम (दूरे दृशम्) दूर—अतीन्द्रिय विषय में भी ज्ञानदर्शक—(गृहपतिम्) हृदय सदन के स्वामी—(अथव्युम्) अचल योगी को चाहने वाले—"अथर्वाणोऽथनवन्तः-थर्वति गतिकर्मा तत्प्रतिषेधः" [निरु० ११।१९] "रेफलोपश्छान्दसः" (प्रशस्तम्) अत्यन्त प्रशंसनीयस्तोतव्य (अग्निम्) परमात्मा को (दीधितिभिः) प्राणायाम आदि क्रियाओं से "दीधी दीप्तिदेवनयोः" [जुहो०] "तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्" [मनु० ६।७१] "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" [योग० २।५२] "योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः" [योग० २।२८] (अरण्योः-हस्तच्युतं जनयत) 'उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः' दो लकड़ियों में से हस्तगत हुई अग्नि की भांति मन और हृदय में से हस्तगत—साक्षात (जनयत) प्रकट करो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीन्द्रिय विषयक ज्ञान के दर्शाने वाला अत्यन्त स्तुतियोग्य परमात्मा जो अचलचित्त वाले उपासक को चाहता है उसके हृदय सदन का स्वामी—प्रिय सङ्गी रक्षक है वह मुमुक्षुजनों द्वारा प्राणायाम योगाङ्गरूप अध्यात्मज्ञान दीपन क्रियाओं द्वारा मन और हृदय में ध्यानरूप मन्थन से मुमुक्षुजन साक्षात् करते हैं ॥१०॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—बुधगविष्ठिरावृषी (ज्ञानी और वाणी के चयन में स्थिर—दृढ़प्रतिज्ञ उपासक)

छन्दः—त्रिष्टुप्

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥

(जनानां समिधा) उपासकजनों की समिध्—आत्मसमिध् आत्मरूप इध्म—आत्मसमर्पण से "आत्मा वा इध्मः" [तै० सं० ३।२।१०।३] "अयं त इध्म आत्मा" [आश्व० गृ० १।१०।१२] (अग्निः-अबोधि) परमात्माग्नि उपासकों के हृदय में जाग उठता है (प्रति धेनुम्-इव-आयतीम्-उपासम्) जैसे पृथिवी के प्रति "इयं पृथिवी वै धेनुः" [श० १२।९।२।१०] पृथिवी पर जैसे सूर्य-अग्नि "लुप्तोपमानालङ्कारः" आती हुई उषा—प्रभातवेला में प्रकट हो जाता है "उषासम्-अत्यन्तसंयोगे द्वितीया" [अष्टा० २।३।५] (यह्वाः-इव वयां प्रोज्जिहानाः) जैसे महान्—बहुत पक्षी "लुप्तोपमानालङ्कारः" शाखा पर प्रकृष्टरूप से उतरते हैं—आश्रय लेते हैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वया शाखा" [निरु० १।७] "ओहाङ् गतौ" [जुहो०] 'आत्मने-पदत्वात्' ऐसे (भानवः-नाकम्-अच्छ प्रसस्रते) उपासकों के प्रज्ञान—आत्मभावनाएं भासमान हुईं उस नितान्त सुखरूप परमात्मा को प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होती हैं।

आत्मसमिधा से—आत्मसमर्पण से परमात्मा उपासकों के हृदय में ऐसे प्रकाशमान होता है जैसे उषावेला में पृथिवी पर सूर्य प्रकाशमान होजाता है। उपासक की सारी आत्मभावनाएं—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार सब भासमान होकर उस सुखस्वरूप परमात्मा को ऐसे प्राप्त होजाते हैं जैसे शाखा पर पक्षी आश्रय लेते हैं॥१॥

ऋषिः—वत्सप्रिः (अपने को परमात्मा का वत्स—पुत्र समझ वैसा प्रेम करने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३१र २र ३ २ ३ १ २
प्रभू र्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्।
१ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम्॥२॥

(प्रभूः) 'प्रभवन्ति यास्ताः प्रभुवस्ताः प्रभूः-स्त्रीलिङ्गे द्वितीया-बहुवचनप्रयोगः' संसाररचने में सम्भव समस्त शक्तियों को (जयन्तम्) पहुंचे हुए—"जयति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (महां विपोधाम्) महान् एवं विप-मेधावी-ऋषि-मुमुक्षु उपासकों के धारण करने वाले—"विपो मेधाविनः" [निघं ३।१५] (मूरैः पुरां दर्माणम्-अमूरम्) मूढ़ों—अज्ञानबद्ध जीवात्माओं द्वारा प्राप्त पुरों—शरीरों का ज्ञान प्रदान कर विदारण करने वाले—अमूढ़—ज्ञानपूर्ण-सर्वज्ञ अज्ञानबन्धन से रहित—(गीर्भिः-वनाधियं नयन्तम्) स्तुतियों द्वारा वनों—वननीय श्रेष्ठ गुणों और बुद्धि को प्राप्त कराने वाले—(वर्मणा हरिश्मश्रुं न) प्रकाशरूप वारण घेरे की दृष्टि से—ज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश का घेरा डालने वाला होने से सूर्य के समान ज्ञानसूर्य हुआ हुआ "हरिकेशः सूर्यरश्मिः" [मै० २।८।१०] "यद्धरिकेश इत्याह-हरिरिव ह्यग्निरादित्यः" [श० ८।६।१।१६] (वनर्चि धाः) धारण करने योग्य अर्चि-ज्योति वाले परमात्मा को धारण कर—ध्यान में ला।

समस्त रचनाशक्तियों वाले एवं मुमुक्षु उपासकों के आधार सर्वज्ञ तथा अज्ञान से बद्ध जीवात्माओं के उद्धारक स्वयं अज्ञान-बन्धन से रहित स्तुतियों के द्वारा श्रेष्ठ गुणों और बुद्धि को प्राप्त कराने वाले सूर्य के समान स्वतः प्रकाश से पूर्ण एवं धारण करने योग्य जिसकी अर्चना या ज्योति है ऐसे परमात्मा का ध्यानोपासन करना चाहिए ॥२॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला उपासक†)

देवताः—पूषा (पोषणकर्ता परमात्मा)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषूरूपे अहनी द्यौरिवासि।
२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥३॥

(स्वधावन् पूषन्) हे रसवन्—जीवनरस एवं मोक्षरस देने वाले रसीले "स्वधायै त्वा रसाय त्वेत्येतदाह" [श० ५।४।३।७] तथा पोषणकर्ता परमात्मन्! (ते) तेरे (विषूरूपे अहनी) परस्पर विषमरूप—विरुद्धरूप वाले अहन्तव्य दो दिनमान हैं (ते) तेरा (अन्यत्-शुक्रम्) अन्य—एक तो शुभ्र—प्रकाशमान मोक्षनामक दिनरूप है "न तत्र सूर्यो भांति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति

†"अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३]

५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुतोऽयमग्निः" [कठो० ५।१५] वहां न सूर्य प्रकाश कर सकता है न चन्द्र तारे न विद्युतें चमक दीखाती हैं यह अग्नि क्या करेगी (अन्यत्-यजतम्) दूसरा एक यजनीय—यजन में आने योग्य—आचरण में लाने योग्य रात्रिसमान संसार नामक है, इस प्रकार (द्यौः-इव-असि) तू सूर्यसमान है जैसे सूर्य दिन और रात्रि का आधार है या हेतु है ऐसे तू मोक्ष और संसार का आधार या हेतु है (विश्वाः-मायाः-हि-अवसि) एवं तू संसाररूप में अपनी समस्त मायाओं—प्रकृतिजन्य कृतियों की "मायां तुप्रकृतिं विद्यात्" [श्वेताश्व० ४।१०] हमारे लिये रक्षा करता है—यथावत् रचन धारण करता है तथा (ते भद्रा रातिः-इह-अस्तु) भजनीय—भानवती दत्ति—देने—मोक्षसम्पत्ति इस मानव जीवन में प्राप्त हो।

परमात्मा उपासकजनों का पोषक और आनन्दरसप्रद है। संसार में हमें पुष्ट करता है योग्य बनाता है और मोक्ष में आनन्द-रस प्रदान करता है। संसार और मोक्ष उसके दिन और रात के समान हैं वह इनका आधार या हेतु है जैसे सूर्य दिन और रात का आधार या हेतु है। उपासकों के लिये परमात्मा संसार भाग में प्रकृति की विकृतियों भिन्न रचनाओं की रक्षा करता है और मोक्ष में कल्याणानन्द सम्पत्ति देता है ॥३॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
इडामग्ने पुरुदꣳसंꣳसनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
१ २ ३ १र २र ३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४॥

(अग्ने) अग्रणेता परमात्मन्! (इडाम्) स्तुति स्थली मेरी हृदय भूमि "इडा पृथिवी" [निघं० १।१] को (गोः सनिम्) स्तुति का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मक्त—स्तुतिसिक्त बनादे "गौवाङ्नाम" [निघं० १।११] (पुरुदंसम्) बहुत कर्मशक्ति वाले—(शश्वत्तमम्) शाश्वतिक मोक्ष सुख को (हवमानाये साध) शुभ आह्वान करने वाले उपासक के लिये सिद्ध कर, तथा (तनयः सूनुः) "तन तन्तुसन्ताने" ततो घञर्थकविधानं छान्दसम्" तनं शरीरं याति प्राप्नोति यः स सूनुः प्राणः' शरीर को प्राप्त सुनयनकर्ता प्राण (विजावा) विशेष प्रसिद्ध—प्रबल हो, ऐसी (ते) तेरी (सा सुमतिः) कल्याणी मति कृपाभावना (अस्मे-अस्तु) हमारे लिये हो।

स्तुति से सिक्त—सनि हुई उपासक की हृदय स्थली जब हो जाती है तो अग्रणेता परमात्मा बहुत कर्मों से प्राप्त होने वाले नित्य सुख मोक्ष को उपासक के लिये सिद्ध करता है, तथा संसार में भी प्राण विशेष प्रसिद्ध बलवान् दीर्घ और स्वस्थ जीवन वाला होजाता है तथा परमात्मा की कल्याणी मति—कृपादृष्टि भी प्राप्त होती है ॥४॥

ऋषिः—वत्सप्रिः (अपने को परमात्मा का प्रेमपात्र बनाने वाला उपासक)

३र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र होता जातो महान् नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते ।
१ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २ ३ २
दधद् यो धायी सुते वयांꣳसि यन्ता वसूनि विधते तनूपा ॥५॥

(महान् होता जातः) महान् स्वीकारकर्ता—अपनाने वाला प्रसिद्ध (नृषद्मा) मनुष्यों में विराजमान (नभोवित्) उनके हृदयाकाश को प्राप्त (अपां विवर्तन) प्राणों के विवर्तन—गमनागमन संस्थान "आपो वै प्राणाः" [श० ४।८।२।२] (प्रसीदत्) जीवन प्रसाद देता है (यः-दधत्) जो उन प्राणों को धारण करता हुआ (धायी) तेरा धाता—ध्याता (ते विधते) तुझ आत्मसमर्पण करते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए के लिये (वयांसि) अन्न ज्ञान जीवनों को (वसूनि) वास भोगों का (सु-यन्ता) सुदाता (तनूपाः) तेरे शरीर का रक्षक परमात्मा है।

परमात्मा अत्यन्त अपनाने वाला हृदयाकाश को प्राप्त हुआ मनुष्य में रहकर प्राणसंस्थान में जीवनप्रसाद देता है और प्राणों का धारक है वह सब प्रकार के अन्न ज्ञान जीवनबलों का तथा वास भोगधनों का अच्छा दाता है ॥५॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु॥६॥

(कृष्टीनाम्) मनुष्यों के "कृष्टयः-मनुष्याः" [निघं० २।३] (अनुमाद्यस्य-असुरस्य) यथार्थ वन्दनीय प्राणप्रद तथा प्रज्ञाप्रद "प्राणो वाऽसुः" [श० ६।६।२।६] "असुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] (पुंसः) पौरुषयुक्त—सृष्टिरचनसमर्थ तथा कर्मफल प्रदान-समर्थ परमात्मा के (प्रशस्तं सम्राजम्) प्रसिद्ध सम्यक्-राजमान स्वामित्व को (प्र) 'प्रस्तुत' प्रस्तुत—प्रकृष्टरूप से बखानकर—ध्यान में ला (तवसः-इन्द्रस्य-इव कृतानि) बलवान् सूर्य के समान कर्म—विश्वसञ्चालन और ज्ञान प्रदान हैं उन्हें भी (प्र०) बखान-कर (वन्दद्वारा) वे कर्म वन्दना के द्वार हैं (वन्दमाना विवष्टु) वन्दन वचनों—स्तुतिवचनों को वह चाहे-स्वीकार करे—करता है।

मनुष्यों का स्तुतिपात्र परमात्मा है वह प्राण और प्रज्ञा का दाता है, सृष्टिरचना में और मनुष्य के कर्मफल देने में पूर्ण समर्थ है, सूर्य की भांति उसके प्रताप और प्रकाश कार्य विश्व में हो रहे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जो वन्दना के सूचक हैं वह हमारे द्वारा की गई स्तुतियों को स्वीकार कर हम पर कृपा करता है ॥६॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब जिसके मित्र हैं जो सबका मित्र है सर्वस्नेही उपासक)

३२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥७॥

(जातवेदाः-अग्निः) सबको जानने वाला—जातमात्र—उत्पन्न-मात्र में विद्यमान प्रकाशस्वरूप परमात्मा (अरण्योः-निहितः) दो लकड़ियों के समान मन और हृदय में निहित है, मन में मनन और हृदय में निदिध्यासन के द्वारा प्रकट होने से (गर्भिणीभिः) गर्भ-वती स्त्रियों द्वारा (गर्भः-इव-इत् सुभृतः) गर्भ की भांति ही सम्यक् धारित हुआ सा है (जागृवद्भिः-हविष्मद्भिः) जागरूक सावधान एवं हावभाव भरी स्तुतिरूप भेंट देने वाले (मनुष्येभिः) मनुष्यों द्वारा (दिवे दिवे-ईड्यः) दिन दिन—प्रतिदिन स्तवनीय-उपासनीय—उपासना से साक्षात्करणीय है ।

परमात्मा महान् चेतन अग्नि है, जो गर्भवती स्त्रियों में गर्भ की भांति उपासकों में छिपा हुआ है, तथा दो लकड़ियों में छिपा हुआ अग्नि जैसे उनके सङ्घर्षण से प्रकट होता है ऐसे परमात्मा मन में मनन और हृदय में निदिध्यासन साधन से प्रकाशित होता है, प्रतिदिन उसके प्रति हावभाव भरी स्तुति भेंट देने वाले उपासक सावधान हो श्रद्धा से अपने अन्दर साक्षात् करते हैं ॥७॥

ऋषिः—पायुः (दोषनिवारण गुणधारण अपनी रक्षा करने वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनुदह सह मूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥

(अग्ने) हे शोधक अज्ञानान्धकारनाशक परमात्मन् ! तू (यातुधानान्) अपने तथा अन्यों के प्रति यातना धारण करने वालों पीड़ा पहुंचाने वाले पापविचारों तथा पापीजनों को (सनात्-मृणसि) नित्य या सर्वदा "सनात् नित्ये—सर्वदा वा" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] हिंसित करता है नष्ट करता है (त्वा रक्षांसि पृतनासु न जिग्युः) तुझे राक्षस—जिनसे रक्षा करनी चाहिए ऐसे पापविचार और पापीजन संघर्ष संग्रामों में "पृतनाः संग्राम नाम" [निघं० २।१७] जीत नहीं सकते हैं—तेरे दण्ड-विधान का उलङ्घन नहीं कर सकते हैं (मूरान् कयादः-सह-अनुदह) मूढ—अज्ञानपरायण तथा शरीरस्थ मांस खाने वालों को एकसाथ भस्म कर दे—कर देता है—तुच्छ असमर्थ कर देता है "लडर्थे लोट्" (दैव्यायाः-हेत्याः) तेरी दैवी—तीक्ष्ण हेति वज्रशक्ति से "हेतिः-वज्रनाम" [निघं० २।२०] (ते मा मुक्षत) वे न छूट सकें—नहीं छूट सकते।

परमात्मा सदा से या नित्य मनुष्यों के पीडक विचारों—पाप भावों एवं पापियों को नष्ट करता है, पाप और पापी उसके सम्मुख तुच्छ हैं उन ऐसे शरीर का मांस सुखाने तथा खाने वाले पाप-विचारों और पापियों को एक साथ भस्म करने तुच्छ करने में समर्थ है उसके दिव्य वज्र से कोई पाप और पापी बच नहीं सकता, उसका चिन्तनबल पाप को भगाने वाला उसका आश्रय पापियों से रक्षा करता है ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम खण्ड

ऋषिः—गयत्रिः (अध्यात्म धन का रक्षक तथा वर्धक उपासक)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न ओजिष्ठमाभर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

(अध्रिगो-अग्ने) हे धृतगमन—अनिरुद्धगतिवाले—सर्वथा सर्वदा पूर्ण शक्तिवाले परमात्मन् ! "अध्रिगो-अधृतगमन" [निरु० ५।१०] (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ओजिष्ठं द्युम्नम्) अत्यन्त ओजस्वी यश सत्कर्म ख्याति को "द्युम्नं यशः" [निरु० ५।५] (आभर) समन्तरूप से धारण करा, तथा (पनीयसे राये वाजाय) प्रशंसनीय ऐश्वर्य—मोक्षैश्वर्य के लिये और प्रशंसनीय-बल—आत्मबल के लिये "वाजो बलम्" [निघं० २।९] (नः पन्थां प्ररत्सि) हमारे मार्ग को निर्माण कर—तैयार कर।

अप्रतिहत शक्तिवाला परमात्मा उपासकों में संसारनिर्वाहक ऊंचा यश धारण कराता है तथा मोक्षैश्वर्य और आत्मबलप्राप्ति का मार्ग भी बनाता है उसकी उपासना करना उसकी शरण लेना अपना समर्पण करना कल्याणकारी और परम आवश्यक है ॥ १ ॥

ऋषिः—वामदेवो वा भरद्वाजो वा (वननीय परमात्मदेव वाला या अमृत अन्न भोग को धारण करने वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यदि वीरो अनुष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२॥

(यदि 'यत्-इ') जब हि—जब कि (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्-इन्धीत) परमात्मा को अपने आत्मा में प्रदीप्त करे—उपासना में लावे—ध्यावे (अनु) फिर (वीरः-स्यात्) वह वीर होजावे स्वात्मबल का बलवान् होजावे—वास्तविक स्वाश्रय वीर बन जावे "स ह वाव वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० २।२८२] (आनुषक्-हव्यम्-आजुह्वत्) पुनः आनुपूर्व्य—क्रमशः—निरन्तर "आनुषगितिनामानुपूर्व्यस्यानुषक्तं भवति" [निरु० ६।१५] उस परमात्मा अग्नि में अपने आत्मभाव हवि को समन्तरूप से समर्पित करता है, तो (दैव्यं शर्म भक्षीत) देवों—मुक्तों वाले सुख—मोक्षानन्द को "शर्म सुखनाम" [निरु० ३।६] भोगता है।

धनबल या शरीरबल या सत्ताबल या जनबल के आधार पर बलवान् नहीं होता किन्तु परमात्मा की शरण उसके आराधन उस पर आस्था रखने से बनता है पुनः निरन्तर परमात्मा के प्रति अपना समर्पण रखने से मोक्षानन्द को भी भोगता है ॥२॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १र २र
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः ।
३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३॥

(पावक) हे पवित्र करने वाले परमात्मन्! (ते) तुझ (त्वेषः-धूमः) तेजस्वी का तेज (शुक्रः सन्) शुभ्र हुआ (दिवि-आततः) मोक्षधाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में समन्तरूप से वर्तमान हो "त्रिपादस्यामृत दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (ऋणवति) विश्व में गति कर रहा है "ऋणवति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (हि सूरः-न द्युता) सचमुच सूर्य जैसे दीप्ति से, ऐसे (त्वं कृपा रोचसे) तू अपनी तेजोमय सामर्थ्य प्रकाशित हो रहा है।

परमात्मन् ! मोक्षधाम में वर्तमान तेरा प्रकाशमय अमृतस्वरूप सारे जगत् में फैल रहा है, जैसे सूर्य अपनी प्रखर ज्योति से चमक रहा है ऐसे तू अपनी तेजोमयी शक्ति से विश्व में छाया हुआ है। तू महान् उपासनीय देव है ॥३॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अर्चन ज्ञान बल को धारण करने वाला उपासक)

१र २र ३ १र २र ३ १र २र
त्वᳬहि क्षैतवद् यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४॥

(अग्ने) हे प्रकाशमान परमात्मन् ! (त्वं हि) तू ही (क्षैतवत्-यशः) क्षिति पृथिवी का—पार्थिव देह, "क्षितिः पृथिवीनाम" [निघं० १।१] पार्थिव देहवाले उदक—जीवनरस पर "यशः-उदकनाम" [निघं० १।१२] (पत्यसे) स्वामित्व करता है "पत्यते-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २।२१] (मित्रः-न) प्राण के समान "प्राणो वै मित्रः" [श० ६।५।१।५] प्राण जैसे शरीरस्थ जीवनरस पर स्वामित्व करता है (विचर्षणे वसो) हे सर्वद्रष्टा बसाने वाले परमात्मन् (त्वम्) तू (श्रवः पुष्टिं न पुष्यसि) मेरे आत्मयश को भी "श्रव इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ११।९] पुष्टि के समान—जीवनरस की पुष्टि के समान पुष्ट करता है—उन्नत करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हे परमात्मन् ! तू अपनी महती कृपा से मुझ उपासक के जीवनरस को प्राण के समान उसे प्रवृद्ध करने वाला है और मेरे आत्मयश को भी पुष्ट-प्रवृद्ध करके अपने आश्रय में बसाने वाला है, मैं किस भावना से तेरी शरण में आने को उत्सुक हूँ यह तू जानता है। अतः मुझे अपनी शरण दे ॥४॥

ऋषिः—द्वितो मृक्तवाहाः (दोनों प्रकार से शरीर और आत्मा को पवित्र एवं अलङ्कृत कर आगे वहन करने वाला)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५॥

(पुरुप्रियः) बहुत प्रकार से प्रिय "पुरु बहुनाम" [निघं० ३।१] (अतिथिः) मेरे हृदयगृह में प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्रणेता परमात्मा ! (प्रातः) प्रातःकाल—सर्व कार्य से प्रथम (विशः स्तवेत) मनुष्य प्रजाओं द्वारा "विशो मनुष्याः" [निघं० २।३] "तृतीयार्थे प्रथमा" स्तवन में लाया जाए—उपासित किया जावे (यस्मिन्-अमर्त्ये) जिस अमरदेव के आश्रय में (विश्वे मर्तासः) सब मरणधर्मा—जन्ममरण में आने वाले मनुष्य (हव्यम्-इन्धते) अपने मन को शुद्धरूप में प्रकाशित करते हैं।

परमात्मा समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अत्यधिक प्रिय है, उस हृदयसदन के अतिथि सत्करणीय परमात्मा की मनुष्य सर्वप्रथम स्तुति करें, उस के आश्रय में अपने मन को पवित्ररूप में प्रकाशित करें ॥५॥

ऋषिः—वसूयव आत्रेयाः-ऋषयः (मोक्षैश्वर्य चाहने वाले इसी जीवन में साधने वाले उपासक)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ २२ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यद् बाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।
१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥६॥

(विभावसो) हे विशेष बुद्धि के साथ बसने वाले उपासक! या विशेष भा—ज्योति जिसमें बसी है ऐसे—"चतुर्थ्यर्थे सम्बोधनम्" (अग्नये) परमात्मा के लिये (यत्-बृहत्-वाहिष्ठम्) जो महान् तेरे जीवन को वहन करने वाले होजाने वाला प्राण या मन है (तत्-अर्च) उसे समर्पित कर (महिषी-इव) भूमि के समान उस परमात्मा से "भूरिति महिषी" [तै० ३।९।४।५] (त्वद्रयिः) तेरा अभीष्ट धन (त्वद्वाजाः) तेरे भोज्यपदार्थ (उदीरते) उभर आते हैं—प्रकट होजाते हैं।

उपासक का बहुमूल्य पदार्थ प्राण या मन है यदि बुद्धिमान् उसे परमात्मा के प्रति समर्पित कर दे तो पृथिवी के धन और भोज्यपदार्थ उसे सदा प्राप्त होते रहेंगे कारण कि इनका हेतु या स्वामी तो परमात्मा है ॥६॥

ऋषिः—गोपवनः सप्तवध्रिर्वा (अपनी इन्द्रियों को पवित्र करने वाला या पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन और बुद्धिको बान्धने—नियन्त्रण में रखने वाला उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७॥

(वः) तुम 'विभक्ति व्यत्ययः' (वाजयन्तः) अपने आत्मबल को चाहने के हेतु (विशः-विशः) मनुष्य मनुष्य—प्रत्येक के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अतिथिः) सदा साथ प्राप्त पूज्य (पुरुप्रियम्) बहुत प्रिय (वः शूषस्य दूर्यम्-अग्निम्) तुम्हारे सुख—कल्याण के "शूषं सुखनाम" [निघं० ३।६] घर "दुर्यं गृहनाम" [निघं० ३।४] परमात्मा को (मन्मभिः-वचः) मननीय वचनों से उसके गुण चिन्तन स्तुति वचनों से "मन्मानि मननीयानि" [निरु० ८।६] 'वचः-वचोभिः-विभक्तेर्लुक्' (स्तुषे) स्तुति करो 'पुरुषवचनव्यत्ययः' ।

मनुष्यों को अपना आत्मबल बढ़ाने के लिये सुखशान्ति के धाम सदा के साथी पूज्य सर्वप्रिय परमात्मा की उसके गुणचिन्तन वचनों से स्तुति करनी चाहिए ॥७॥

ऋषिः—आत्रेयः पुरुः (यहां ही—इसी जीवन में तृतीय मोक्ष-धाम का साधक बहुत यत्नशील अपने में परमात्मा को पूरण करने वाला)

३२उ ३ २ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८॥

(भानवे देवाय-अग्नये) स्वयं प्रकाशस्वरूप अन्यों को प्रकाशित करने वाले परमात्मदेव के लिये (बृहद्-वयः-हि) अधिक से अधिक जीवनकाल अवश्य (अर्च) हे उपासको ! अर्चित करो क्योंकि (मर्तासः प्रशस्तये) मरणशील—जन्ममरण में आए जन अपनी कल्याण प्राप्ति के लिये (यं मित्रं न) जिसको मित्र के समान (पुरः-दधिरे) सम्मुख लक्ष्य में रखते हैं ।

संसार में जन्ममरण चक्र में पड़े जनों की प्रशस्ति—कल्याण भावना का नितान्त सहारा मित्र के समान साक्षात् परमात्मा ही है शोक दुःख ताप से ऊपर उठाए रखता है अतः प्रसिद्ध प्रकाशमान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के लिये अपने जीवनकाल का अधिकाधिक भाग उसकी अर्चना में अर्पित करे, बाल्यकाल में तो उसका ध्यान सम्भव नहीं है, वृद्धावस्था में कुछ ही सम्भव है अधिक नहीं अशक्ति और रोगों के कारण, अतः केवल यौवनकाल से ही उसकी आराधना का अभ्यासी बनना चाहिए वृद्धावस्था में भी वह अभ्यास साथ देगा ही ॥ ८ ॥

ऋषिः—गोपवनः (इन्द्रियों को पवित्र करने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीके इध्यते ॥९॥

(यः स्म) जो ही परमात्मा (श्रुतर्वन्) प्रसिद्ध अर्वा-रश्मि-घोड़ों वाले सूर्य में (बृहदनीके-आर्क्षे) बड़े खुले अवकाश में नक्षत्र तारागण द्युमण्डल में (इध्यते) प्रकाशित होरहा है। "योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् 'ओ३म् खं ब्रह्म' [यजु० [४०।१७] "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [कठो० ५।१५] (वृत्रहन्तमं ज्येष्ठम्-आनवम्-अग्निम्) इस पाप विनाशक "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] श्रेष्ठ तथा मनुष्य सम्बन्धी "अनवः-मनुष्याः" [निघं २।३] इष्टदेव परमात्मा को (अगन्म) प्राप्त करें ।

परमात्मा दिन में सूर्य के अन्दर रात्रि में महान् नक्षत्रगण-मण्डल में प्रकाश देता हुआ साक्षात् होता है वह मनुष्यों के भीतर आत्मा में से अज्ञानान्धकार और पाप को हटाता हुआ वर्तमान है उसे हम अपने अन्दर साक्षात् करें ॥९॥

ऋषिः—मारीचो वामदेवः कश्यपो वा, मनुर्वैवस्वतो वा (वासनाओं को मार देने वाली वैराग्य ज्योतियों से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न वननीयदेव वाला या शासन में आने योग्य मन से परमात्मामृत का पानकर्ता या सूर्यसमान ज्ञानप्रसारक परमात्मा का मननकर्ता जन)

३ १र २र३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः ।
३ २उ ३ १र ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥

(अग्निः) पापों वासनाओं का शोधक ज्ञानप्रकाशक परमात्मा (यत्) 'यः' 'लिङ्गव्यत्ययः' जो (कश्यपस्य पिता) सूक्ष्मदर्शी मन को निरुद्ध करने वाले योगी का "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १।८।८] पिता—पालक (श्रद्धा माता) श्रद्धा वाले 'श्रद्धावतः-मतुब्लोपश्छान्दसः' श्रद्धा योग में प्रज्ञा के पश्चात् निष्ठा वाले आत्मसमर्पी की माता—मान करने वाला—आश्रय देने वाला "प्रज्ञापूर्वरुपं श्रद्धोत्तररूपम्" [शां० आ० ३।७] (मनुः कविः) 'मनोः' विभक्तिव्यत्ययः' मनन करने वाले का अनूचान—गुरु है "ये वा अनूचानास्ते कवयः" [ऐ० २।२। ३८] (यत् सवृद्भिः सहाभुवः) जबकि इनके साथ समागम वर्तन करने वालों के द्वारा सहभाव को प्राप्त हुआ परमात्मा (परेण धर्मणा जातः) अलौकिक अमृतगुण से प्रसिद्ध—साक्षात् हुआ करता है ।

परमात्मा सूक्ष्मदर्शी अभ्यासी का पिता—पालक, श्रद्धायुक्त वैराग्यवान् की माता और मननशील का आचार्य बनकर उनके द्वारा धारणा ध्यान समाधि में परम अमृतगुण के साथ साक्षात् होता है । इस प्रकार वह श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा साक्षात् हुआ करता है ॥१०॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम खण्ड

ऋषि:—अग्निस्तापस: (तप से सम्पन्न अग्निसमान तेजस्वी अभ्यासी उपासक)

देवता—विश्वे देवा: (सब देवनामों से प्रसिद्ध परमात्मा के भिन्न भिन्न स्वरूप)

छन्द:—अनुष्टुप् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सोमꣳराजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुꣳसूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥१॥

(राजानम्) सर्वत्र राजमान—विराजमान (सोमम्) उत्पत्ति-कर्ता होने से सोमनामक—(अग्निम्) अग्रणायक होने से अग्नि-नामक—(आदित्यम्) अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के अधिपति होने से आदित्यनामक—(विष्णुम्) सबमें व्यापक होने से विष्णुनामक—(सूर्यम्) सबके प्रेरक प्रकाशक होने से सूर्यनामक—(ब्रह्माणम्) सृष्टि रचयिता होने से ब्रह्मा नाम वाले (च) और (बृहस्पतिम्) वेदवाणी का रक्षक होने से बृहस्पति नाम वाले परमात्मा को (अन्वारभामहे) अनुष्ठित करें—उपासित करें—उपासना में लावें ।

परमात्मा अपने भिन्न भिन्न गुणों और कर्मों के कारण भिन्न भिन्न नाम से उपासित करने—उपासना में लाने योग्य है, संसार के दिव्य पदार्थ सोम आदि में गुण उस परमात्मा से आते हैं वही उनमें उनके दिव्यगुणों का आधान करने वाला होने से उस उस रूप में देखा जाता है अत: वह उस उस रूप में एवं योगवशात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मवान् होने से वैसा स्मरण करने योग्य है, मनुष्य सांसारिक सोम आदि पदार्थों में ही न फंसा रहे ॥१॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मा देव जिसका है ऐसा उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

३२ ३२ ३१२ ३२ ३१२ २२
इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्यारुहन् ।
२ ३२३ १२ ३१२ २२
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥२॥

(एते-अङ्गिरसः) ये सोम आदि नाम वाले परमात्मा के उपासक श्रवणशील मननशील निदिध्यासनशील आत्मसमर्पण द्वारा अङ्गी—अङ्गों के स्वामी स्वात्मा को रसीला बनाने वाले योगीजन (इतः-उदारुहन्) इस मर्त्य स्थिति से ऊपर उठ जाते हैं पुनः ऊपर उठते उठते (दिवः पृष्ठानि-आरुहन्) सूर्य की पृष्ठों पर—सूर्य की तेज रश्मियों पर आरूढ़ हो जाते हैं। "तेजो वै पृष्ठानि" [तै० सं० ५।५।८।१] "सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषोह्यव्यय आत्मा" [मुण्डको० १।२।११] (द्यां प्रययुः) तेजो रश्मियों द्वारा अमृतधाम को प्रगमन कर जाते हैं प्राप्त हो जाते हैं "द्यौरपराजिता अमृतेन विष्टा" [तै० ४।४।५।२] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (यथा भूर्जयः पथः) जैसे स्वगुणपराक्रमों से भूमण्डल पर जय पाते हुए राजा लोग उत्तम शासन पथों मार्गों को प्राप्त करते हैं।

सोम आदि नामों से परमात्मा की उपासना करने वाले श्रवण मनन निदिध्यासन परायण उपासकजन अङ्गों के स्वामी आत्मा को रसीला बनाने वाले योगीजन मरणदेह से ऊपर उठकर सूर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तेजोरूप रश्मियों पर आरूढ़ हो जाते हैं पुनः अमृतरूप मोक्षधाम को प्राप्त हो जाते हैं जैसे भूमि के जय करते हुए राजा लोग उत्तम शासन पथों—मार्गों को प्राप्त होते हैं ॥२॥

ऋषिः—कश्यपोऽसितो देवलो वामदेवो वा (सूक्ष्मदर्शी, दुर्वासनारहित, अपने देवधर्मों को लाने वाला या वननीय देव का उपासक)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईडिष्वा हि महे वृषन् द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (महे दानाय राये) महान् दान मोक्षैश्वर्य के लिये (त्वा समिधीमहि) तुझे अपने अन्दर प्रकाशित करें—साक्षात् करें, इस हेतु (वृषन्) जीवनवृष्टि करने वाले! तू (महे होत्राय) तेरे महान् दान मोक्षैश्वर्य के प्रतीकार में हमारे महान् होत्र—आत्मसमर्पण के लिये (द्यावा-पृथिवी हि-ईडिष्व) हमारे प्राण उदान को "इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२] बढा "ईडते वर्धयन्ति" [निरु० ८।१]।

प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तेरा दान महान् है जो कि मोक्षैश्वर्य है उससे बड़ा दान कोई नहीं है, उसकी प्राप्ति के लिये हम अपने अन्दर तुझे प्रकाशित करें—साक्षात् करें, इसका उपाय या इस के प्रतीकार या परिवर्तन में हम भी अपने आत्मा को आत्मभाव से स्तुतिसमर्पण को तेरी भेंट दे सकें इस हेतु हमारे प्राण उदान को बढ़ा अर्थात् हमें स्वस्थ दीर्घजीवी बना दे ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—भार्गहुतिः सोमो वा (ज्ञान में परिपक्व आत्मसमर्पण से सम्पन्न या सोम्यगुणवाला उपासक)

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

(यत्-ईम्-दधन्वे) जो उपासक इस स्वात्मसमर्पण द्वारा इष्टदेव परमात्मा को साक्षात् प्राप्त कर लेता है "धविगत्यर्थः" [भ्वादि०] 'लिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपं छान्दसं चात्मने पदम्' (वा) और "वा-अथापि समुच्चयार्थे भवति" [निरु० १।५] (अनुवोचत्-ब्रह्म-इति) फिर अन्यों को उसका प्रवचन करता है कि ऐसा "इति प्रकारे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] ब्रह्म—सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्राप्तव्य देव है (तत्) तिससे वह (वेः-उ) निश्चित कान्तिमान् एवं अन्यों का कमनीय होजाता है "वी गतिकान्ति...." [अदादि०] तथा (विश्वानि काव्या परिभुवत्) समस्त जीवनज्ञानविज्ञानों को परिभव करता है—घेर लेता है—आश्रय बन जाता है (चक्रं नेमिः-इव) जैसे चक्र का घेरा चक्र को घेर लेता है—आश्रय में ले लेता है "यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" [बृहदा० २।४।५] ।

योगाभ्यास आत्मसमर्पण द्वारा परमात्मा को जो उपासक साक्षात् प्राप्त कर लेता है और अपने साक्षात् ज्ञान के अनुसार उसका अन्य को उपदेश देता है कि ऐसा महत्त्वपूर्ण देव ब्रह्म है तो वह स्वयं कान्तिमान् हुआ अन्यों का भी कमनीय—चाहने योग्य हो जाता है, तथा समस्त जीवन के ज्ञानविज्ञानों का घेरा—आश्रय बन जाता है ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—पायुः (परमात्मशरण ले अपने को पाप दुःखाज्ञान से सुरक्षित रखने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क २र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥५॥

(अग्ने) हे पापतापक दोषशोधक अज्ञानान्धकार निवारक परमात्मन् ! तू (हरसा) अपने तेज से (यातुधानस्य रक्षसः) मेरे प्रति यातना—पीड़ा धारण करने वाले तथा जिससे हम अपनी रक्षा करते हैं ऐसे पाप रोग दोष के (हरः) ज्वलन वेग, बल को (विश्वतः परि) सब ओर से सब प्रकार से सर्वथा (प्रति शृणाहि) प्रतिहिंसित करदे—प्रतिरोध से नष्ट कर दे (बलं वीर्यं न्युब्ज) प्रबल प्रभाव को भी पूर्वरूप में ऋजु—निर्बल कर दे "उब्ज आर्जवे" [तुदादि०]।

परमात्मा आत्मसमर्पी उपासकों के पाप रोग दोष एवं उनके पूर्वरूपों को अपने तेज से सर्वथा अकिंचित्कर—निर्बल कर देता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (कण्व—मेधावी का पुत्र—अत्यन्त मेधावी†)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
१ २ ३ २ उ ३ १ ३ ३ १ २
यजास्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥६॥

(अग्ने) हे प्रकाशक तेजस्वी अग्रणेता परमात्मन् (त्वम्) तू (स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं प्रति) शोभन अध्यात्म यज्ञकर्ता

† "प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः" [निरु० ३।१७]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेतः—वीर्य से पूरण हुए—ब्रह्मचर्यसम्पन्न—संयमी "रेतो वै वृतम्" [श० ९।२।३।४४] "प्रुष स्नेहनसेवनपूरणेषु" [चुरादि०] देव—दिव्यगुण युक्त विद्वान् "ये देवा मनुजाताः" [पै० १।२।३] एवं उपासकजन के प्रति (वसून् रुद्रान्-आदित्यान्-उत) वसुनामक वसाने वाले—जीवन देने वाले प्राणों को "प्राणा वै वसवः प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते" [जै० उ० ४।२।१।३] रुद्रनामक रुलाते हुए प्राणों को "प्राणा वै रुद्राः प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति" [जै० उ० ४।२।१।६] आदित्य नामक रस के आदान करने वाले प्राणों को "प्राणा वा आदित्याः प्राणा हीदं सर्वमाददते" [जै० उ० ४।२।१।९] (यज) सङ्गमनीय—श्रेष्ठ—उपयुक्त बना—बनाता है।

सद्गुणयुक्त ब्रह्मचर्यसम्पन्न संयमी अध्यात्म यज्ञ के कर्ता उपासक के जीवन धारण कराने वाले प्राणों को, दोषशोधक प्राणों को और आहार ग्रहण कराने वाले प्राणों को परमात्मा उपयुक्त बना देता है ॥ ६ ॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—दीर्घतमाः (आयु को चाहने वाला—मुक्ति के जीवन को चाहने वाला उपासक†)

छन्दः—उष्णिक् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
पुरु त्वा दाशिवाꣳवोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१॥

† "आयुर्वैदीर्घम्" [तां० १३।११।१२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने) हे जीवन प्रगतिदाता परमात्मन् ! (पुरुदाशिवान्) मैं बहुत प्रकार से अपने आत्मा का दानी—स्वात्मसमर्पी (त्वा-आ वोचे) तुझ से ही समन्तरूप से प्रार्थना करता हूं, क्योंकि (अरिः) तू ही स्वामी है "ईश्वरोऽप्यरिः" [निरु० ५।८] (तोदस्य-इव तव महस्य शरणे स्वित्-आ) तुझ महान् प्रेरक—आज्ञादाता गृहस्वामी के शरण में—आश्रय में भृत्य की भांति आ पहुँचूं ऐसा सङ्कल्प है।

हे परमात्मन् ! मैं तेरे प्रति आत्मसमर्पण कर निरन्तर प्रार्थना करता हूँ कि तुझ महान् गृहस्वामी की शरण में भृत्य की भांति मैं आजाऊं तेरा कृपापात्र बन जाऊं ॥ १ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)

१र २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२॥

(न) अब† (विपाम्) मेधावी विद्वानों की (ज्योतींषि) ज्योतियों—ज्ञानरश्मियों के (बिभ्रते) धारक पोषक—(वेधसे)

---

† वक्तव्य—"न वेधसे" में 'न' 'वेधसे' के साथ 'वेधसे' की उपमा नहीं हैं क्योंकि उपमावाचक शब्द अपने से पूर्व की उपमा देता है जैसे 'इव' शब्द 'गौरिव गवयः' गौ की भाँति नील गौ। 'सूर्य इव ज्योतिषा-पस्ततान' (ऋ० १०।१७८।३) "गा इव तस्थिमे०" (ऋ० ६।११२।६) ऐसे ही 'न' शब्द उपमार्थ अपने से पूर्व की उपमा देता है यास्क निरुक्त-कार ने कहा भी है "उपरिष्टादुपचारस्तस्य येनोपमिमीते" (नि० १।४) अर्थात् 'न' उपमार्थ आगे प्रयुक्त होता है जिससे उपमा दी जाती है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधाता—(होत्रे) दाता-मोक्षदाता—(अग्नये) ज्ञानप्रकाशक परमात्मा के लिये (पूर्व्यं वचः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ—पूर्णश्रेष्ठ मन्त्रवचनों में नामों से भी श्रेष्ठ स्तुतिवचन—ओ३म् को (बृहत् प्रभरत) हे उपासकों ! बहुत-बहुत भेंट करो।

विधाता ज्ञानप्रकाशक परमात्मा विद्वानों–आरम्भकालीन या सृष्टि के प्रारम्भ में होने वाले ऋषियों के लिये ज्ञानरश्मियाँ धारण करता है और प्रदान करता है वह ही बड़े बड़े ज्ञानियों का ज्ञान-दाता गुरु है, जैसे कहा है "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" [योग० १।२६] उस ऐसे महान् परम गुरु की श्रेष्ठसद्भाव से स्तुति स्तवन और श्रेष्ठ नाम ओ३म् का जप करना चाहिये ॥ २ ॥

जैसे—"मृगो न भीमः (ऋ० १।१५४।२, १०।१८०।२) इस पर 'मृग इव भीमः" (निरु० १।२०) मृग के समान भयङ्कर "ससं न पक्वम-विदच्छुचन्तम्" (ऋ० १०।७९।३) इस पर "स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनं तदिवाविदज्जाज्वल्यमानम्" (निरु० ५।३) "मृगमिव व्रा मृगयन्ते" (ऋ० ८।२।६) इस पर "मृगमिव व्रात्याः प्रैषाः" (निरु० ५।४) तथा "समुद्रं न संवरणान्यगमन्" (ऋ० ९।१०७।९) "शूरो न मित्रावरुणा" (ऋ० ५।६३।५) "मनो न येषु हवनेषु" (ऋ० १०।६१।३) "अग्निं मित्रं न दर्शितम्" (ऋ० १।३८।१३) इस प्रकार उपमार्थ 'न' शब्द जिसकी उपमा देता है उसके आगे प्रयुक्त होता है। अतः "न वेधसे" (सा० १।११।२) में 'वेधसे' की उपमा में नहीं है। तब यहाँ सामवेद के उपासनापरक होने से "वेधसे" की उपमा न होकर आध्यात्मिक विधान के सम्प्रति प्रदर्शनार्थ है जैसे वेद में अन्यत्र भी अध्यात्म विधान के सम्प्रति प्रदर्शनार्थ प्रयुक्त है—"भागं न दीधिम" (ऋ० ८।९९।३) इस पर "वयं भागमनुध्यायाम" (निरु० ६।८) यहाँ यास्क ने 'न' को अनु—अब फिर अर्थ में देखा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—गोतमः (वेदवाणी को चाहने वाला उपासक)
देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
२ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३॥

(सहसः यहो) हे ओम् के जपरूप स्वध्याय—वैराग्य और तदर्थ भावनरूप यागाभ्यास के सम्पातरूप संघर्षण बल अर्थात् आध्यात्मिक ओज से गत प्राप्त—प्रकाशित साक्षात् होने वाले परमात्मन्! "स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्। स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते" [योग ०१।२८ व्यास] 'यहुः' "ओहाङ् गतौ" [जुहो०] "औणादिकः कुः प्रत्ययः श्लुश्च बहुलादेव, अभ्यासहकारस्य जकारः" (जातवेदः-अग्ने) उत्पन्न हुए वेद जिससे हैं ऐसे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू (गोमतः-वाजस्य ईशानः) वेदवाणी वाले धन का स्वामी है (अस्मे महि श्रवः-देहि) हमारे लिये उस महान् धन ज्ञानरूप को प्रदान कर—हमारे जीवन में आचरित करा धारण करा।

परमात्मा वेदरूपवाणी वाले ज्ञान धन का धनी स्वामी है वह ओ३म् नाम जप—स्वाध्याय और अर्थभावनरूप योग से या वैराग्य और अभ्यास से साक्षात् होने वाला है उसकी उपासना से वेद के समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं "यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" [बृहदा० १।२।११]

ऋषिः—विश्वामित्रः (सब जिसके मित्र हैं और सबका जो मित्र है ऐसा उपासकजन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ २ ३ ३ १ २ ३ २र १
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवाँ देवयते यज।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४॥

(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन् ! तू (मन्द्रः) हर्षित करने वाला—सुख देने वाला (होता) अपनी शरण में लेने वाला (यजिष्ठः) अत्यन्त याजक (अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (देवयते) तुझ देव को चाहते हुए के लिये (देवान्) दिव्य गुणों को (यज) 'संगमय' सङ्गत कर (स्रिधः) क्षयकर्ता हिंसक—दुःख दायक काम वासना आदि दोषों को "स्रिध वैदिक धातुक्षयार्थे" "न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति" [ऋ० ५।५४।७] क्षीयते [दयानन्दः] "उषा उच्छेदय स्रिधः" [ऋ० १।४८।८] हिंसकान् [दयानन्दः] (अति विराजसि) दबा कर अकिञ्चित्कर विराजमान रह 'लिङर्थे लेट्'।

अग्रणेता प्रेरक परमात्मन् ! तू मुझे स्वीकार करने वाला अपनी शरण में लेने वाला प्रशस्त याजक बनकर मेरे अध्यात्म बल में तुझ इष्टदेव को चाहने वाले मुझ अध्यात्मिक यजमान उपासक के लिये दिव्य गुणों को धारण करा काम वासना आदि शोषक जीवनरसहीन करने वाले दोषों को अबल अकिञ्चित्कर बना दे ॥ ४ ॥

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (मेधा से तीर्णतम सब प्राप्ति में अधिकारी)

देवता—पवमानः सोमः-अग्निगर्भितः (अग्निरूप प्रकाशमान धाराओं में आता हुआ शान्त परमात्मा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ २ ३ १र २ ३ १र २र १ ३ २
जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥५॥

(सप्त) "सप्तभिः" सात-(मातृभिः) ज्ञान का मान—कलेवर दर्शाने वाली गायत्री आदि छन्दोमयी ज्योतियों द्वारा "मातरो भासां निर्मात्र्यः" [निरु० १२।८] (जज्ञानः) परमात्मा को जानता हुआ उपासक (श्रिये मेधाम्-आशासत) श्री—भद्रा कल्याणमयी स्थिति "श्री वैं भद्रा" [जै० ३।१७२] मेधा—उत्तम बुद्धि को चाहता है (अयं ध्रुवः) यह अविनाशी एकरस परमात्मा (रयीणाम्-आ-चिकेतत्) समस्त कल्याणकारी धनसम्पदाओं को भलीभांति सुझा दें ।

परमात्मा का ज्ञान उसकी सात छन्दों वाली वेदरूप ज्ञान ज्योतियाँ भलीभांति ज्ञान कराती हैं, उपासक अपनी कल्याण-कामना के लिये मेधा को प्राप्त कर निश्चय कर लेता है कि वह एक रस अविनाशी परमात्मा ही समस्त धनसम्पदाओं को सुझाता है उसका आश्रय लेना, वेदस्तवनों द्वारा उसकी उपसना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में या शब्द में गति जिसकी है ऐसा विद्वान् "बिठमन्तरिक्षम्" [निरु० ६।३०] "विट् शब्दे" [भ्वा०] "पृषोदरादिष्टसिद्धिः"

देवता—अदितिः (अदितिरूप से अग्नि परमात्मा)

३२उ ३ १ १ ३ ३१र २र ३ २
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
१र २र ३ १ २ ३२३ १ २
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्या मतिः) वह मेधा (अदितिः) 'अदितेः' विभक्तिव्यत्ययः' अखण्ड मातृरूप—हमारे लिये सुख साधनों के निर्माण करने वाले परमात्मा के पास से (नः-ऊत्या दिवा-आगमत्) हमारे रक्षा के निमित्तभूत दिनक्रम से—प्रतिदिन—निरन्तर बढ़ बढ़कर हमें समन्तरूप से प्राप्त हुआ करे—आती रहें (सा शन्ताता) वह शान्ति करे "शिवशमदिष्टस्य करे" [अष्टा० ४।४।१४३] (मयस्करत्) सुख करें—सुख पहुँचाती रहे "मयः सुखनाम" [नि० ३।६] (स्रिधः-अप) कामवासना आदि जीवन रसशोषक दोषों को दूर करती रहे।

अखण्ड परमात्मशक्ति की आराधना से वह मेधा—बुद्धि निरन्तर आती है दिनोदिन बढ़ बढ़कर रहती है जो हमारी रक्षा सदा करती रहती है साथ में शान्ति और सुखों का विस्तार करती है समस्त पोषक जीवनरस बढ़ाती है कामवासना आदि दोषों को दूर किया करती है अतः परमात्मा की सदा आराधना करनी चाहिये ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (इन्द्रियघोड़ों-इन्द्रियवृत्तियों से विगत होने में कुशल सबमें समान मनोभाव रखने वाला विरक्त समदर्शी जन)

देवता—अग्निः (अन्तर्यामी सर्वसाक्षी परमात्मा)

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ईडिष्वा हि प्रतीव्याँ३ यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णु धूममगृभीतशोचिषम् ॥७॥

(प्रतीव्यम्) 'प्रति-व्यम्' पदपाठ के अनुसार वस्तु-वस्तु के प्रति व्यापन योग्य "वी गति व्याप्ति०" [अदादि०] ततः 'यत्-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डित्' (चरिष्णुधूमम्) चरणशील फैलने वाले† गुण या धूम-समान व्याप्ति वाले—(अगृभीतशोचिषम्) असीमित तेज वाले—(ज़ातवेदसम्) सब उत्पन्न प्रादुर्भूत को जानने वाले सर्वज्ञ परमात्मा को (ईडिष्व हि) स्तुति में ला—उसकी स्तुति निरन्तर कर (यजस्व) जीवन में सङ्गत कर तदनुसार गुण धारण आचरण कर।

मानव ! असीमित तेज वाले परमात्मा की व्याप्ति बड़ी भारी है दूर-दूर तक पहुंचती है वह वस्तु वस्तु में व्यापने योग्य सर्वज्ञ है उसकी स्तुति सदा करनी चाहिये और जीवन में उसके गुण आदेश धारण करने चाहिये ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—पूर्ववत्।

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः।
२ ३ १ २ ३ १ ‹ ३ १ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥८॥

(यः) जो जन (हव्यदातये-अग्नये) हव्य स्तुतिरूप भेंट का दान जिसके लिये है ऐसे (अग्नये) अग्रणायक परमात्मा के लिये (ददाश) जो देता है अन्य के लिये नहीं अर्थात् जो केवल

---

† "विषंस्ते धूमः" "शुक्रः" [साम० १।८।३] शुभ्र तेज वाले धूम केवल धूएं को ही नहीं कहते किन्तु कम्पते हुए लहराते हुए तेज या प्रकाश की तरंगों को भी कहते हैं। जैसे पुच्छलतारे को धूमकेतु कहते हैं उसका केतु तेज की फरकती हुई तरंगें है जो धूम नाम से कहीं हैं "धूमकेतवो वातजूता उपदिवि यतन्ते" [यजु० ३३।२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा की स्तुति में जीवन बिताता है अन्य की स्तुति में नहीं (रिपुः-मर्त्यः-च न) शत्रुजन भी (मायया) प्रज्ञाछल बुद्धि से (न तस्य ईशीत) उस पर स्वामित्व नहीं कर सकता है—दबा नहीं सकता है।

स्तुतियोग्य एकमात्र परमात्मा है जो उसको ही स्तुतियों द्वारा अपना समस्त जीवन अर्पित कर देता है। शत्रु उस पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता कुछ हानि नहीं पहुचा सकता है क्योंकि वह अकेला न रहा उसके साथ उसका परमात्मा सदा रक्षक है ॥ ८ ॥

ऋषिः—ऋजिश्वा भारद्वाजः (परमात्मा के अर्चन बल को धारण में समर्थ ऋजुगामी उपासक)

देवता—वैश्वदेवो ऽग्निः (सर्वश्रेष्ठ गुणवान् अग्रणेता परमात्मा)

२ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३क २र

अपत्यं वृजिनँ रिपुँ स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।

१ २ ३ २ ३ २

दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥

(सत्पते-अग्ने) हे सन्मार्गगामीजनों के पालक सर्वश्रेष्ठ अग्रणेता परमात्मन्! तू (त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनं दुराध्यम्) उस सन्मार्ग के विरोधी कुटिल पापी, शत्रु, चोर, अनिष्टचिन्तक को (दविष्ठम्-अपास्य) अत्यन्त दूर पृथक् कर (सुगम्-कृधि) अच्छा चलने वाला कर दें। या वर्जनीय पाप, शत्रुभाव, चोरप्रवृत्ति, अनिष्ट चिन्तन को हमारे से बहुत दूर रखे—रख, अपितु हमारे में सुगति वाले सद्भाव कर।

परमात्मा सन्मार्गी जनों का सदा रक्षक है उसकी शरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना से पापी—पापभाव, शत्रु-शत्रुभाव, चोर—चोर प्रवृत्ति चौर्य कर्म अनिष्ट चिन्तक-अनिष्ट चिन्तन से मनुष्य बचा रहता है अपितु सुप्रवृत्ति वाला बना देता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—वैयश्वो विश्वमनाः (इन्द्रियघोड़ों की प्रवृत्ति से विगत सबके कल्याण में मनवाला उदार उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

३क २र ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥

(वीर विश्पते-अग्ने) हे शक्तिमन् प्रजामात्र-प्राणिमात्र के स्वामिन् ! (मे) मेरे (नवस्य स्तोमस्य श्रुष्टी) स्तुतिपूर्ण छन्दः-हार्दिक गान को द्वितीया स्थाने षष्ठी व्यत्ययेन सुनकर "स्नात्वथा-दयश्च" [अष्टा० ७।१।४५] (मायिनः-रक्षसः) छली विपरीत आचरण वाले मन में और कुछ आचरण और कुछ ऐसे जन जिनसे अपने को बचाना चाहिये उनको (तपसा निदह) अपने तेज से दण्ड सामर्थ्य से भस्म कर या मेरे अन्दर से छलयुक्त विचारों को भस्म कर ।

सर्वरक्षक परमात्मा हृदय से स्तुतिपूर्ण गुण गान से छल पूर्ण दुष्ट विचारक और विचारों को नष्ट कर देता है अपने उपासक की उनसे रक्षा करता है ॥ १० ॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः (अध्यात्म अग्नि का प्रज्वलनवेत्ता विद्वानों की परम्परा में कुशल प्रयोगकर्ता)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—ककुप ।

प्र मंꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उप स्तुतासो अग्नये ॥१॥

(मंहिष्ठाय) "मंहते दानकर्मा" [निघं० ३।२०] अतिशय से दाता—(ऋताव्ने) अमृत वाले—अमृतरूप मोक्षानन्दधारी—"ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (बृहते) महान्—(शुक्रशोचिषे) शुक्र प्रकाशस्वरूप—(अग्नये) परमात्मा के लिये (उप-स्तोतारः) 'उपगत्य' समीप होकर निमग्न होकर हे स्तुति करने वालो (प्रगायत) गुणगान स्तुतिबखान करो ।

हे आत्मसमर्पण भाव से स्तुति करने वाले उपासकों ! अमृतरूप मोक्षानन्द धारण करने वाले बड़े भारी दानी शुभ्रज्योतिःस्वरूप महान् इष्टदेव परमात्मा की प्रगाढ़ स्तुति गुणगान उपासना करनी चाहिये ॥ १ ॥

ऋषिः—सौभरिः (सुभर परमात्मा से गुण प्राप्त करने में कुशल जन)

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वꣳसख्यमाविथ ॥२॥

(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन् ! (त्वं यस्य सख्यं-आविथ) तू जिसकी मित्रता प्राप्त करता है—जो तुझे मित्र बना लेता है (सः) वह जन (तव) तेरी (सुवीराभिः) शोभन प्राणों वाली—"प्राणा वै दश वीराः" [श० १२।८।१।२२] (वाजकर्मभिः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ग्य विशेष सुख देने वाले कर्म जिनसे हो सकें ऐसे कर्म कराने वाली "वाजो वै स्वर्गो लोकः" [तां० १८।७।१२] (ऊतिभिः) रक्षाओं—बहुविध रक्षाओं से (प्रतरति) प्रवृद्ध हो जाता है।

परमात्मन् ! जो मनुष्य उपासनाद्वारा तुझसे मित्रता कर लेता है—तुझे मित्र बना लेता है—तेरा स्नेहपात्र बन जाता है तो वह प्राण देने वाली और स्वर्ग्य विशेष सुखदायक कर्म कराने वाली बहुत प्रकार की रक्षाओं से बढ़ जाता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १
तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
३ १ ३ १ २
देवत्राहव्यमूहिषे ॥३॥

(देवासः) अमृत—मृत-मरण-जन्ममरण से रहित मुक्त आत्माएं "अमृताः देवाः" [श० २।१।३।४] (स्वर्णरम्) जिस स्वः-मोक्ष प्रापक "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [१०।९०।३] (अरतिं-देवम्) अन्तर्यामी देव को (दधन्विरे) प्राप्त किये हुए हैं (तं गूर्द्धय) उसे अर्चित कर—स्तुति में ला "गूर्द्धयति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (देवत्रा) उन देवों—अमृत-अमर मुक्तात्माओं में (हव्यम्) समर्पणीय स्वात्मा को (ऊहिषे) पहुचाने के हेतु—उनकी गणना में आने—उनकी श्रेणि में होने के हेतु "वह प्रापणे" [भ्वा०] ततः "तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्से......" [अष्टा० ३।४।९] क्से प्रत्ययः क्त्वात् सम्प्रसारणं वाह ऊठ्"।

मुक्ति में जिस मुक्तिप्रद अन्तर्यामीदेव को मुक्त आत्माएं प्राप्त किए हुए हैं उनमें अपने को भी पहुंचाने के लिये उस परमात्मा की अर्चना स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—भार्गवः प्रयोगः, सौभरिः कण्वो वा (अग्नि-विद्या में कुशल प्रयोक्ता या परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावीजन)

१ ३ ३ १ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २
मानो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एष।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥४॥

(यः) जो (एषः) यह (पुरुप्रशस्तः) बहुत प्रकार से प्रशंसनीय (सुहोता) हमें अच्छा अपनाने वाला (स्वध्वरः) हमारे अध्यात्म यज्ञ का परम इष्टदेव (वसुः) हृदय घर में बसाने वाला स्वयं भी बसने वाला (अग्निः) ज्योतिःस्वरूप परमात्मा है (अतिथिम्) उस ऐसे अतिथि—सत्कारयोग्य एवं सदा अतनशील रक्षकरूप प्राप्तस्वभाव वाले परमात्मा के प्रति (नः) हमारे में से कोई भी हे मनुष्य। (मा हृणीथाः) रोष-अनादर या लज्जा न प्रदर्शित करे। "हृणीयते क्रुध्यतिकर्मा" [निघं० २।१२] "हृणीङ् रोषणे लज्जायां च" [कण्ड्वादि०]

जो परमात्मा अनेक प्रकार से प्रशंसनीय, हमें अच्छा अपनाने वाला अध्यात्म यज्ञ का इष्टदेव हृदय में वसने वसाने वाला है उस ऐसे सत्करणीय रक्षणार्थ सदा साथ रहने वाले के प्रति हम लोगों में कोई भी जन पारिवारिक या सामाजिक या राष्ट्रिय सदस्य अनादरभाव नास्तिकपन या अपनी लज्जा को न प्रदर्शित करें दुःख या मनोवैपरीत्य—मनोविकार के दूरी करणार्थ प्रार्थना करें, उस पर क्रोध करें उसका अनादर करें या उससे कुछ दुःख वेदना को कहने में लज्जा करें तो कौन हमारा भला करेगा ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—सौभरिः कण्वः (परमात्माग्नि को अपने अन्दर भरण धारण करने में कुशल मेधावी जन)

३ १ २ ३ १२ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३२
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
२ ३१र २र
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५॥

(सुभग) हे शोभन ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (अग्निः-आहुतः-नः-भद्रः) तू ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हमारे द्वारा समन्तरूप से गृहीत हुआ—ध्याया हुआ हमारे लिये कल्याणकारी हो (रातिः-भद्रा) तेरी दानधारा हमारे लिये कल्याणकारी हो उसकी प्राप्ति और उपयोग कल्याण करे "ते पूषन्निह रातिरस्तु-पूषन्निह दत्तिरस्तु" [निरु० १२।१७] (अध्वरः-भद्रः) यज्ञ कल्याणकारी हो (उत प्रशस्तयः-भद्राः) तेरे लिये की गई गुणगान स्तुतियाँ भी कल्याणकारी हों—फलदायक हों ।

महैश्वर्यवान् ज्योतिःस्वरूप परमात्मा सम्यक् ध्याया हुआ कल्याणकारी होता है उसका दान भी कल्याण साधने वाला, यज्ञ उसका आदिष्ट श्रेष्ठकर्म कल्याणकर हो और उसकी विविध गुणगान—स्तुतियाँ भी कल्याणकारी होते हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३१ २ ३१२
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६॥

(अस्य यज्ञस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (सुक्रतुम्-यजिष्ठम्) सुप्रज्ञानवान—"क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] अतिशय से

७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यष्टा ब्रह्मा (देवत्रा देवम्) देवों में देव—सर्वोत्तम देव—वर देने वालों में अधिक वर देने वाले (अमर्त्य-होतारम्) मनुष्य से भिन्न अमर अविनाशी होमने वाले—ऋत्विक् स्थानीय (त्वा) तुझ ज्योतिः-स्वरूप परमात्मा को (ववृमहे) वरते हैं—स्वीकार करते हैं अपनाते हैं।

हमारे अध्यात्म यज्ञ का उत्तम ऋत्विक् और ब्रह्मा भी देवों में देवइष्ट वरदान देने वाला परमात्मा ही है उसे हम सदा वरते रहें ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३ १र २र ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासाहा सदने कञ्चिदत्रिणम्।
३ १र २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥

(अग्ने) हे तेजस्वरूप परमात्मन्! (तत्-द्युम्नम्-आभर) उस तेजस्वी यश—यशोरूप बल को "द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वा" [निरु० ५।५] "द्युम्नवीर्यबल" "द्युम्निनीराप एता इति वीर्यवत्य इत्येवैतदाह" [श० ५।३।५।१९] समन्तरूप—पूर्णरूप से भर दें (यत्) जो (जनस्य-अत्रिणं कं चित्-मन्युं दूढ्यम्) अन्य मनुष्य के मेरे प्रति किये घातक पाप कर्म को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३।१] क्रोध को क्रुद्धवाणी को और दुश्चिन्तन दुर्विचार को "दूढ्यं दुर्धियम्" [निरु० ५।२] (सदने सासाहा) मेरे हृदय-सदन में पूर्णरूप में सह सके दबा सके तथा (जनस्य कं चित् मन्युं दुर्धियम्-अत्रिणम्) अन्य जन के प्रति क्रोध और दुर्विचार जो मुझे खा जाने वाला है उसको (सदने सासाह) मेरे हृदयसदन में पूर्णरूप से दबा सके—किञ्चत् भी कभी उठने का अवसर न दे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके जिसे मैं अन्य जन के प्रति सदा निरुद्वेग और निर्वैर रहकर अपने देह और अन्तःस्थल को पुष्ट करता रहूँ। "यहाँ श्लोषालङ्कार से वाक्य दो अर्थों वाला है।"

उपासकजन या मुमुक्षु को अपने जीवन में परमात्मा के उस यशोमय तेज को पूर्णरूप से धारण करना चाहिए या उसकी याचना करनी चाहिए जिससे उसके प्रति किसी अन्य जन के किए पाप कर्म क्रुद्धवाणी और दुश्चिन्तन को हृदय में सह सके उसका प्रतिरोध न उठ सके तथा अन्य जन के प्रति भी अपने से होने वाले क्रोध—वाग्दोष दुश्चिन्तन जो अपने को खा जाने वाला है उसे अपने हृदय में न उठने दें ऐसा उपासक या मुमुक्षु अपने को निरन्तर उन्नत करता चला जाता है॥ ७॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (इन्द्रिय घोड़ों की वृत्तियों से विगत होने में कुशल सबमें समान मन रखने वाला उपासक)

१र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे।

२उ ३ २उ ३ १ २
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥

(यत्-वै-उ) जब ही निश्चय (विश्पतिः) प्राणिप्रजा का स्वामी (मनुषः-विशे) मनुष्य के निवेश स्थान—हृदय में (शितः सुप्रीतः) उपासनारूप स्नेह से तीव्र और सुतृप्त कर लिया होता है तो (विश्वा रक्षांसि-इत्) सारे ही राक्षसों राक्षसी-विचारों का (प्रति-सेधति-'प्रतिषेधति') निवारण करता है—हटाता है।

तेजःस्वरूप परमात्मा जब मानव के—आत्मा के निवेश हृदय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश में उपासना स्नेह द्वारा प्रदीप्त सुतृप्त हो जाता है तो यह उसके राक्षसी—रक्षा करना वचना जिनसे चाहिये उन ऐसे उसके प्रति अन्यों के विचारों को तथा उसके भी अन्यों के प्रति उभरने वाले विचारों का प्रतिरोध करता है हटा देता है। फिर वह मानव निर्दोष मुक्ति का अधिकारी परमात्मा का प्रिय बन जाता है ॥ ८ ॥

❀ इति प्रथमाध्याय ❀

आग्नेय पर्व, काण्ड समाप्त !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐन्द्र पर्व या काण्ड

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (विद्यानिष्णात का शिष्य कल्याण का इच्छुक उपासकजन)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् सर्वशक्तिमान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री १-१२ खण्ड तक।

१ २ ३ १र २र ३ १ ३ १ २
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
श यद्गवे न शाकिने ॥१॥

(वः) तू आत्मशक्ति प्रार्थीजन ! "विभक्तिवचनव्यत्ययः" (सुते) ब्रह्मचर्यकाल में ज्ञान निष्पन्न हो जाने पर—स्नातक बनते ही (सचा) जब वधू का साथ हो तब (पुरुहूताय-सत्वने) बहु प्रकार से स्तुति करने योग्य—समस्त ऐश्वर्य के देने वाले—"सत्त सम्भक्तौ" [भ्वादि०] (गवे न शाकिने) वृषभसमान शक्त—शक्तिमान् इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये "शक्नोतीति शाकी" 'छान्दसो णिनिः' (तत्-शं गाय) उस-गार्हस्थ्यभार उठाने संयम से रहने ऐश्वर्य पाने के हेतु "तत् हेतौ कारणे सम्बन्धे च" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] शं-शान्त सुख पूर्वक गा—स्तुति में ला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे विद्यासम्पन्न होकर आचार्य के यहाँ स्नातक बनकर पत्नी का साथ हो तब से उस बहुत स्तुत्य ऐश्वर्यदाता वृषभसमान शक्त परमात्मा के लिये अपने गृहस्थ में संयम से रह सकने ऐश्वर्य प्राप्त करने गृहस्थभार उठाने चलाने के हेतु सुखपूर्वक मधुर गान स्तवन नित्य किया करें अन्यथा गृहस्थ में जीवन का पतन सम्भव है ॥ १ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (आचार्य के यहाँ कक्षा में क्रमशः अध्यात्म-ज्ञान श्रवण किया जिसने ऐसा विद्वान्)

१ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते नूनꣳशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १र २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥२॥

(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत कर्मरूप पराक्रम वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! (ते) तेरा (यः) जो (नूनम्) निश्चय (द्युम्नितमः-मदः) अत्यन्त यशस्वी हर्ष है—अन्य वस्तुओं में से प्राप्त होने वाला नहीं (तेन मदे) उस हर्ष में (नूनं मदेः) मुझे अवश्य हर्षित कर।

बहुत पराक्रम वाले प्रिय परमात्मन् ! किसी भी भोग वस्तु में हर्ष—सुख क्षणिक है और अधिक सेवन हानिकारक पतन की ओर ले जाने वाला अपयश करने वाला है परन्तु तेरे अन्दर जो हर्ष—आनन्द है वह तो अत्यन्त यशस्वी जीवन बनाने वाला है उस अपने यशस्वी आनन्द में अवश्य आनन्दित कर—मैं सदा गृहस्थ में ही या संसार में—संसार के भोगों में ही न पड़ा रहूं ॥ २ ॥

ऋषिः—हर्य्यतः प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—उत्तम स्तुतिवाक् में कुशल कान्तिमान् तेजस्वीजन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३२ ३२ ३१ २ ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १र २र ३ १ २
उभाकर्णा हिरण्यया ॥३॥

(गावः) वाक् स्तुतियों ! (अवटे उप 'उपगत्य') रक्षणधाम आश्रयरूप आनन्दरूप ऐश्वर्यवान् इन्द्र—परमात्मा के समीप जाकर (वद 'वदत' 'वचनव्यत्ययः') मुझ स्तुति करने वाले को बतलाओ सूचित करो कि (यज्ञस्य) मेरे अध्यात्म की (रप्सुदा) रूप देने वाली—(मही) भूमियाँ—अभ्यास और वैराग्य योग भूमियाँ "मही पृथिवीनाम" [निघं० १।१] (उभा कर्णा) दोनों सिरे—(हिरण्यया) तुझ परमात्म ज्योतिःस्वरूप हिरण्यमय तुझे प्राप्त करने वाले बन गए। "स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्याय-मामनेत् स्वाध्याययोग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।" [योग० १।२८ व्यास]।

स्तुतियाँ ज्योतिःस्वरूप परमात्मा में आश्रित हो जाती हैं उपासक की हृद्भावना को सूचित करती हुईं परमात्मा को झुकाती हैं अध्यात्मयज्ञ को रूप देने वाले अभ्यास और वैराग्य या जप और अर्थभावन रूप दोनों योग्य भूमियों को जो कि दो दिशाएं हैं वे परमात्मा के प्रकाश वाली बन जाती हैं ॥३॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (अध्यात्मज्ञान का कक्ष—पार्श्व जिसने सुन लिया ऐसा उपासक आत्मा)

२ ३१ २ ३ १२३२३१२
अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
२ ३१ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(श्रतकक्ष) हे अध्यात्मज्ञान कक्ष को सुन चुके आत्मन् ! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के दिए हुए (अश्वाय अरं-गायत) शरीर रथ को चलाने वाले प्राण को पुष्ट करने के लिये उस इन्द्र परमात्मा का पर्याप्त गानकर (गवे) विषयों में जाने वाले इन्द्रिय-गण की संयम में रहने के लिये (अरम्) बहुत गानकर (धाम्ने) अपने शरीरधाम के स्वस्थ रखने के लिये परमात्मा का, (अरम्) पर्याप्त गान करें।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने कृपा करके आत्मा या मनुष्य को भोग और अपवर्ग के लिये प्राण, इन्द्रियगण और शरीर दिये हैं, परमात्मा का कृतज्ञ होना चाहिये तथा परमात्मा की भरसक स्तुति करनी चाहिए। जिससे उभयसिद्धि के अर्थ प्राण ठीक चलें इन्द्रियगण संयम से विषय से अपना विषय ग्रहण करें और शरीर स्वस्थ दीर्घजीवी बनें ॥ ४ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (पूर्ववत्)

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
१र २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥५॥

(तम्-इन्द्रं वाजयामसि) हम उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अर्चित करते हैं—स्तुति में लाते हैं "वाजयति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (महे वृत्राय हन्तवे) महान् आवरक पाप भाव को नष्ट करने के लिये (सः-वृषा) वह परमात्मा सुखज्ञान का वर्षक (वृषभः-भुवत्) सुख ज्ञान वर्षाने में समर्थ हो।

हमें सुखवर्षक परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए जिससे वह अज्ञान पाप का नाश करके सुख का वर्षाने वाला हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि:—इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिका: (इन्द्र का पालन करने वाली विद्वानों की पत्नियाँ)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
त्वामिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस: ।
१ २ २ २ ३ १ २ २ २
त्व ँसन् वृषन् वृषेदसि ॥६॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवाले परमात्मन् ! (त्वम्) तू (बलात् सहस:-ओजस:-अधिजात:) बल से—शरीर बल से, सहने वाले क्षात्र बल से—मनोबल से, ओज-ऋजुबल—आत्मबल से ऊपर प्रसिद्ध हुआ है (त्वं वृषन् सन्) तू इन तीन बलों—शरीरबल मनोबल आत्मबल को अपने उपासकों में बर्षाता हुआ (वृषा-इत्-असि) नितान्त सुखवर्षक है।

संसार में या मानव में तीन बल होते हैं शरीरबल, मनोबल और आत्मबल, परमात्मन् ! तू इन तीनों से ऊपर प्रसिद्ध इनका धारक स्वामी है अपने उपासक में इनका सञ्चार और प्रसार करता है अत: समस्त सुखों की वृष्टि करने वाला है शरीरबल प्रदान कर स्वास्थ्य दीर्घ जीवन देता है, मनोबल प्रदान कर प्रसाद-हर्ष देता है, आत्मबल प्रदान कर शम्-शान्ति देता है ॥६॥

ऋषि:—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ (इन्द्रियों के विषय में अच्छी उक्ति समर्पण करने वाला और प्राण के सम्बन्ध में अच्छी उक्ति प्राणायाम करने वाला जन)

३ १२ २२ ३ २२ ३ १ २
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भाम व्यवर्तयत् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
चक्राण ओपशं दिवि ॥७॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञः-इन्द्रम्-अवर्धयत्) अध्यात्म यज्ञ ने उपासक के अन्दर परमात्मा को बढ़ा दिया—स्पष्ट साक्षात् करा दिया—करा देता है (यत्-भूमिं व्यवर्तयत्) पुनः वह परमात्मा उपासक की भूमि—स्थिति को विवर्तित कर देता है—बदल देता है बद्धावस्था से जीवन्मुक्तावस्था कर देता है (ओपशं-दिवि-चक्राणः) उस परमात्मा के समीप में शयन करने वाले उपासक आत्मा को दिव्यधाम-अमृतधाम में पहुंचाने के हेतु।

अध्यात्म यज्ञ से उपासक के अन्दर परमात्मा साक्षात् हो जाता है, पुनः वह साक्षात् हुआ परमात्मा उपासक आत्मा की भूमि को बदल देता है उसे बद्ध से जीवन्मुक्त कर देता है परमात्मा के समीप शयन करने वाले आत्मा को अमृतधाम—मोक्ष में पहुंचाने के लिये ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
३ २ ३ १ ३
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यत्-यथा त्वं वस्वः-एकः इत् 'ईशिषे') जबकि जैसे तू ऐश्वर्य का अकेला स्वामित्व करता है—स्वामी है (अहम्-ईशीय) तेरे साथ में रहता हुआ ऐश्वर्य का स्वामी हो जाऊं—हो जाता हूं तो (मे गोसखा) मेरा सहपाठी 'विद्या में समान रहने वाला' (स्तोता स्यात्) तेरा स्तुति करने वाला हो जावे—हो जाता है।

परमात्मा की स्तुति करने वाला जीवन्मुक्त उपासक परमात्मा के आनन्द आदि ऐश्वर्य से युक्त है उसे ऐसा देख—देखादेखी से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहपाठी साथी भी परमात्मा का स्तोता बन जाता है, यह आस्तिक भाव का प्रचार एक आदर्श उपासक से होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः-आङ्गिरसः (मेधा से अतन प्रवेश करने वाला संयमी जन)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पन्यं पन्यमित्सोतार आधावत मद्याय ।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय ॥९॥

(सोतारः) हे स्तवन सम्पादन करने वालो ! (मद्याय) हर्षयिता—(वीराय) वीर—शक्तिमान् (शूराय) पराक्रमी इन्द्र परमात्मा के लिये (पन्यं-पन्यं सोमम्) स्तुत्य स्तुत्य—आत्मभाव से हार्दिक स्तवन स्तुति प्रवाह को (आधावत) समर्पित करो।

हे उपासको ! शक्तिमान् पराक्रमी हर्षित करने वाले परमात्मा के लिये हल्का स्तवन नहीं किन्तु भारी हार्दिक स्तवन समर्पित करो जिससे वह अतिहर्षित करें ॥ ९ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः काण्वः (मेधावी का शिष्य मेधाप्रिय जिसको है ऐसा जन)

३ १ २ ३२३ ३ २३ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१०॥

(वसो) हे मेरे हृदय में एवं मेरे में बसने वाले परमात्मन् ! (इदं सुतम्) इस निष्पन्न (उत्-अरम्) ऊपर गमनशील उभरने वाले—उछलने वाले (अन्धः) सोम—"अन्धसः सोमस्य" [निरु० १३।८] "अन्धसस्पते सोमस्य पते" [श० ४।१।१।२४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम्य हावभाव भरे स्तुति प्रार्थना उपासनारसधाराप्रवाह को (सुपूर्णम्) जो भलीभांति पूर्ण है, समस्त आत्मभावना से भरा हुआ है उसे (पिब) पानकर स्वीकार कर (अनाभयिन्) 'आभयम्-ईषद्भयं नेषद्भयं यस्मिन्-यस्याश्रये तथाभूत' थोड़ा भी भय जिसके आश्रय में नहीं वह ऐसे सर्वथा निर्भयशरण वाले परमात्मन्! (ते ररिमा) तेरे लिये हम देते हैं—समर्पित करते हैं। जैसे अन्यत्र भी कहा है—"न घा त्वद्रिगपवेति मे मनः। त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय। राजेव दस्म निषदोऽधि बर्हिऽयस्मिन् सु सोमेऽवपानमस्तु।" [ऋ० १०।४३।२]

मेरे हृदय मेरे आत्मा में बसने वाले निर्भयशरण परमात्मन्! तू मेरे अन्दर उभरते उछलते हुए समस्त आत्मभावना से पूर्ण सोम्य हावभाव भरे स्तुति प्रार्थना उपासनारूप रसधारा प्रवाह को पानकर स्वीकार कर तेरी भेंट करता हूँ तू मुझे अपना मैं तेरी निर्भयशरण में रहूं क्योंकि तेरा स्वभाव है "देहि मे ददामि ते" [यजु० ३।५०] मुझे दे तुझे देता हूं ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा (सम्पन्न अध्यात्म कक्ष या श्रुत-सुना अध्यात्मज्ञान विषय जिसने ऐसा जन)

२उ ३ २ ३ १ २ ३१र २र
उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥१॥

सूर्य) हे सरणशील या सूर्यसमान इन्द्र परमात्मन्! तू

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(श्रुतामघम्) प्रसिद्ध धन वाले—(वृषभम्) सुखवर्षक—(नर्यापसम्) नरों के हितकर कर्म वाले--(अस्तारम्) अज्ञान अन्धकार को फेंकने हटाने वाले स्वरूप को (अभि) अभिलक्ष्य दर्शाने को (घ-इत्) निश्चय ही (उदेषि) उदय होता है—उपासकों के अन्दर साक्षात् होता है।

परमात्मन ! तू सरणशील या सूर्य समान होकर उपासकों के अन्दर साक्षात् होता है अपने प्रसिद्ध धन वाले, सुखवर्षक, नरहित कर्म वाले, अज्ञानान्धकार विनाशक स्वरूप को दर्शाता हुआ और उपासकों को भी अपने जैसे गुणों वाला बनने को प्रभावित करता हुआ ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
३ १ २ ३ १ ३
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥२॥

(वृत्रहन् सूर्य-इन्द्र) हे ज्ञान और सद्गुण के आवरक को नष्ट करने वाले, सरणशील या सूर्य समान प्रकाशमान परमात्मन् ! तू (अद्य) सम्प्रति (यत्-कत्-च-अभि) जिस किसी को अभिमुख करके या प्राप्त करने को (उदगाः) उपस्थित होता है—सुकर्मफल सुख देने को तथा दुष्कर्मफल दुःख देने को (तत् सर्वं ते वशे) वह सब तेरे वश में है।

अज्ञान पाप के नाशक प्रकाश प्रेरक परमात्मन् ! संसार में कोई भी पापी या पुण्यात्माजन दुःख फल लेने और सुख फल लेने को तेरे वश में है यथायोग्य उनका कर्मफल देना तेरे अधीन है ॥ २ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मज्ञान को धारण करने वाला)

१२ २१ ३२३ १३ ३२३ १२
य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।
३ २ ३ १ ३ १ २
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥३॥

(यः-इन्द्रः) जो ऐश्वर्यवान् परमात्मा (सुनीती) सुनीति-शोभन नेतृत्व से—पथप्रदर्शकता से (परावतः) दूर गये—पथ-भ्रष्ट कुमार्ग से (यदुम्) मनुष्य को "यदवः मनुष्याः" [निघं० २३] (तुर्वशम्-आनयत्) समीप—अपने समीप—सन्मार्ग में "तुर्वशः-अन्तिकनाम" [निघं० २।१६] ले आता है (सः-नः) वह हमारे (युवा सखा) सदा बलवान् बना रहने वाला मित्र है।

परमात्मा शोभन पथप्रदर्शकता से भटके हुए जन को सुपथ पर ले आता है वह मानव का सदा साथी मित्र है उस जैसा पथ-प्रदर्शक और मित्र कोई नहीं है ॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (श्रवण किया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन)

१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १२ २२
मा न इन्द्राभ्या ३ दिशः सूरो अक्तुष्वायमत्।
३ १ २ ३ २
त्वा युजा वनेम तत् ॥४॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (आदिशः) दिशा-दिशा से किसी भी दिशा से या दिशा-दिशा में वर्तमान—किसी भी दिशा में वर्तमान "आङ् अभिविध्यर्थे" (सूरः) सूर्य के समान तापक पीडक "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः" (अक्तुषु) रात्रियों के समान अवसरों—अज्ञानादि में या (अक्तुषु सूरः) रात्रियों में—रात्रियों का सूर्य—रात्रियों अन्धकारों में ताप देने वाला पाप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापिष्ठ हिंसक (नः) हमें (मा-आयमत्) मत आयत कर—दबावें (तत्) तिससे—अतः प्रथम ही (त्वा युजा वनेम) तुझसे युक्त होने वाले साथी परमात्मा के साथ—तेरी सहायता से हिंसित करें—नष्ट करें उसको दबाने का अवसर न दें।

परमात्मन् ! किसी दिशा से रात्रि—अज्ञान अवसर पाकर जो तापक पापभाव पापिष्ठ प्राणी हमें न दबा लें अतः प्रथम ही तुझ साथी से युक्त हुए हम उसे हिंसित कर दें ॥ ४ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मधु तन्त्र या मीठी इच्छा वाला)

१र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वान सदासहम् ।
१ २ ३ १ २
वर्षिष्ठमूतये भरा ॥५॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (सानसिम्) सम्भजनीय (सजित्वानम्) समान जय कराने वाले शत्रु के समकक्ष में जिताने वाले—(सदासहम्) सदा शत्रु के बल को अभिभूत करने वाले (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े चढ़े—(रयिम्) धन-आत्मबलरूप धन को "वीर्यं वै रयिः" [श० १३।४।२।११] (ऊतये) स्वरक्षा करने के लिये (आभर) समन्तरूप से हमारे अन्दर भर दें।

परमात्मन् ! तू निरन्तर सेवन करने योग्य है, शत्रु के समकक्ष में सदा विजय कराने वाले सदा शत्रु के दमन करने वाले परमात्मन् अध्यात्म धन को हमारे अन्दर भरपूर कर दें ॥५॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
इन्द्रं वयं महाधनं इन्द्रमर्भे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वयम्) हम (युजं वज्रिणम्-इन्द्रम्) हमारे साथ युक्त होने वाले साथी वज्री–वीर्यवान्-ओजस्वी परमात्मा को "वीर्यं वै वज्रः" [श० ७।३।१।१९] "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (वृत्रेषु) सद्गुण आवरक पापभावों में "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] हमारे साथ चलते हुए (महाधने) संग्राम में "महाधने संग्राम नाम" [निघं० २।१७] (हवामहे) आहूत करते हैं—करें (अर्भे) "अर्भ-अनिष्टे" थोड़े अनिष्ट प्रसंग में (इन्द्रम्) परमात्मा को आहूत करते हैं।

हमारे अन्दर उठते हुए पापभावों के प्रति हमारा संग्राम चलने पर या उनसे अल्प अनिष्ट हो जाने पर वीर्यवान् बलवान् ओजस्वी परमात्मा का हमें स्मरण चिन्तन करना चाहिये ॥६॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों—ज्ञानत्रयी उपासना से प्राप्त दीप्ति वाला जन†)

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
१ २ ३ १ २
तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥७॥

(इन्द्रः) परमात्मा (कद्रुवः) ईषत् गति वाले बाधाओं से निर्बल दीन बने जन के (सुतम्-अपिबत्) अन्दर से निष्पन्न हाव-भावपूर्ण उपासनारस को सेवन करता है—स्वीकार करता है। तो (सहस्रबाह्वे) बहुत प्रकार बाधा—पीड़ा पहुंचाने वाली प्रवृत्तियों वाले के लिये—उसके हननार्थ (तत्र) उस दीन जन के अन्दर (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (आददिष्ट) अति सर्जित करता है—देता है—प्रेरित करता है।

† "शोचति ज्वलतिकर्मा" [निघं० १।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दीन—बाधाओं से पीड़ितजन अपने अन्दर से हावभाव-पूर्ण स्तुतिप्रार्थना उपासनाप्रवाह परमात्मा के प्रति समर्पित करता है तो वह स्वीकार कर उस दीन जन में पौरुष को प्रेरित कर देता है उन बाधाओं को हटाने के लिये ॥ ७ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)

३ १ ३ २ ३ १२ २८
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्।
३ २ १ २
विद्धी त्वा ३ स्य नो वसो ॥८॥

(वृषन्-इन्द्र) हे सुखों की वर्षा करने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (वयम्-आयवः) हम प्रापणशील—प्राप्त करने वाले प्रार्थीजन "आयवः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (त्वा-अभि) तेरी शरण में (प्र-नोनुमः) प्रकृष्टरूप से पुनः पुनः स्तुति करते है "णु स्तुतौ" (अदादि०) "नौति-अर्चतिकर्मा"[1] [निघं० ३।१४] (वसो) हे बसने वाले—अन्तर्यामिन् देव! (नः-अस्य तु विद्धि) हमारे इस हृद्गत भाव को तो तू जान। 'पद पाठे' 'तु अस्य' इति सन्धिविच्छेदः।

परमात्मन् तू हमारे अन्दर वसने वाले अन्तर्यामी हमारे प्रत्येक हृद्गत भाव को जानता है तो फिर तेरी शरण में पहुंचने वाले हम मनुष्य तेरी पुनः पुनः स्तुति करते हैं तू इसे पूरा कर ॥८॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों ज्ञान कर्म उपासना से प्राप्त दीप्ति—वाला जन)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।
३ २ ३ २ ३ १ ३
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(येषाम्) जिनका (युवा-इन्द्रः) सदा बलवान् बना रहने वाला अजर-अमर इन्द्ररूप से ऐश्वर्यवान परमात्मा (सखा) समान ख्यान जान लिया गया—अन्य वस्तु या सम्बन्धियों से ममत्व हटा कर अपना लिया है (ये च) जो भी (अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को (आ-इन्धते) समन्तरूप से ध्यान-द्वारा प्रदीप्त करते हैं (ते) वे उपासकजन (आनुषक्) अनुपूर्वता से अनुक्रम से—क्रमशः (बर्हिः) अपने हृदयावकाश को "बर्हिः-अन्तरिक्षनाम" [निघं० १।३] (स्तृणन्ति) इन्द्ररूप परमात्मा के सखित्व स्नेह से अग्निरूप परमात्मा के ज्ञानप्रकाश से आच्छादित कर लेते—पूर्ण कर लेते—भर लेते हैं।

जो जन इन्द्ररूप परमात्मा को मित्र बना लेते हैं उस जैसे अपने अन्दर गुण धारण करके परमात्मा को ध्यान से अपने में प्रदीप्त कर लेते हैं वे अपने हृदयावकाश को परमात्मा के स्नेह और ज्ञानप्रकाश से भर लिया करते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १र २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदाभर ॥१०॥

(विश्वाः-द्विषः) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू समस्त द्वेष करने वाली प्रवृत्तियों को (अपभिन्धि) छिन्न-भिन्न कर दे (बाधः) समस्त बाधाभावनाओं को (मृधः) पापप्रवृत्तियों को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८] (परिजहि) सब प्रकार से हत कर दे—(स्पार्हं वसु तत्-आभर) स्पृहणीय—वाञ्छनीय गुणधन है उसे समन्तरूप से धारण करा या ले आ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब परमात्मन् ! मेरे अन्दर से दूसरों के प्रति होने वाली तथा मेरे प्रति दूसरों की भी सब द्वेषप्रवृत्तियों को छिन्न-भिन्न कर दे, मेरे अन्दर दूसरों के प्रति होने वाली बाधाप्रवृत्तियों और पाप-वृत्तियों को एवं मेरे प्रति दूसरों की बाधाभावनाओं पापवृत्तियों को मिटा दे। पुनः वाञ्छनीय वननीय गुणधन को मेरे अन्दर धारण करा दे—भर दे जिससे दूसरे का अहितचिन्तन न करूं न मेरे प्रति कोई अहितचिन्तन कर सके ॥ १० ॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—कण्वो घौरः (वक्ता का शिष्य मेधावी)

देवता—इन्द्रसखायो मरुतः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उसके सखा अग्नि आदि ऋषिजन)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।
१र २र ३ १ २
नि यामन् चित्रमृञ्जते ॥१॥

(एषां हस्तेषु कशाः) इन इन्द्र सखाजनों "इन्द्रस्य वै मरुतः" [कौ० ५।४।५] ऋत्विजों विद्वानों के "मरुतः ऋत्विजः" [निघं० ३।१८] सप्तप्राण, लोकों के सात प्राण स्थानों में—"सह ह स्तास इति येषु सप्तसु लोकेषु चरन्ति प्राणा गुहाशयाः" [काठक० २५।२-३] "सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः" [मुण्ड० २।८] वाणियों—वेदवाणियों को "कशा वाङ्नाम" [निघं० १।११] (इह-इव शृण्वे) यहाँ अपने अन्दर जैसा ही मैं सुनता हूं (यत्-वदान्) कि जैसे मैं बोलता हूं (यामन् चित्रम्-नि-ऋञ्जते) कि जो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा अध्यात्म मार्ग में या अध्यात्म कर्म में "यामे कर्मणि" [श० ६।३।२।३] अद्भुतरूप में अन्तर्दृष्टि से साथ प्रसिद्ध करता है, साक्षात् करता है "ऋञ्जति प्रसाधनकर्मा" [निरु० ६।२१]।

विद्वान् जन अपने प्राणसंस्थानों में जिन वेदवाणियों को धारण कर यज्ञ आदि प्रसङ्ग में बोलते हैं मैं अध्यात्म यज्ञ का याजक उन ईश्वरीय वाणियों को अपने अन्तःकरण में सुनता हूँ वह परमात्मा अध्यात्म मार्ग या अध्यात्म कर्म में उन वेदवाणियों को सुन्दर रूप में सार्थ प्रसिद्ध कर देता है साक्षात् समझा देता है ॥ १ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (ज्ञान कर्म उपासना में दीप्तजन)

३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम उ त्वा विचक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥२॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (इमे सखायः सोमिनः) ये समान ख्यान उपासक विद्वान् अपने सोम उपासनारस लिए हुए (उ) निश्चय (त्वा विचक्षते) तुझे निहार रहे हैं (यथा पुष्टावन्तः पशुम्) जैसे पोषण पदार्थ वाले घास दाना आदि लिए हुए "पुष्टेषु पोषेषु" [निरु० १३।५] अपने दूध देने वाले गौ आदि पशु को निहारते हैं।

परमात्मन् ! तेरे उपासक अपनी इष्टसिद्धि के लिये अपने उपासनारस को समर्पित करने के लिए तुझे ऐसे निहारते हैं जैसे दूध के इच्छुकजन घास दाना आदि पुष्टि कर वस्तु लिये दूध देने वाले गौ आदि पशु को निहारते हैं ॥ २ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—वत्सः काण्वः (मेधावी का शिष्य वक्ता)

१ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
३ १ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥३॥

(अस्य) इस इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (मन्यवे) दीप्त प्रकाशस्वरूप प्राप्ति के लिये "मन्युर्मन्यते र्दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०।३०] (विश्वा-विशः कृष्टयः) सब प्रवेश करने वाली मनुष्य प्रजाएं (सम्-नमन्त) द्रवीभूत होती है झुकी जाती हैं (समुद्राय सिन्धवः-इव) समुद्र के लिये—समुद्र को पाने के लिये जैसे नदियाँ झुकी चली जाती हैं।

परमात्मा के प्रकाशस्वरूप पाने के लिये उसमें प्रवेश करने के लिये सब जन उसकी ओर झुकते चले जाया करते हैं जैसे नदियाँ समुद्र को पाने के लिए झुकती चली जाती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—कुसीदी काण्वः (मेधावी का शिष्य संश्लेषण धर्म वाला)

३ १ ३ १२ २र ३ १र २र ३ २
देवानामिद्वो महत्तदा वृणीमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४॥

(वृष्णां देवानां-इत् तत्-महत्-अवः) ज्ञानवर्षक इन्द्र परमात्मा एवं ऋषि विद्वानों के अवश्य उस भारी बोध ज्ञान को "अव रक्षण-बोध....." [तुदादि०] (वयम्-आवृणीमहे) हम समन्तरूप से वरते हैं (अस्मभ्यम्-ऊतये) जो हमारी रक्षा के लिए है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा और ऋषि विद्वानों के वेदज्ञान को अवश्य स्वीकार करें अपने अन्दर धारण करें जो हमारी रक्षा इस संसार में करता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन-गमन प्रवेश करने वाला)

३ १ ३ १ २ ३ १ २
सोमानाꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
३ १२ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥५॥

(ब्रह्मणस्पते) हे वेदज्ञान के स्वामिन् इन्द्र ज्ञानैश्वर्यवन् परमात्मन ! तू (कक्षीवन्तम्) मुझ कक्षगत समीपवर्ती उपासक आत्मा को (सोमानां स्वरणम्) "सोमवताम्, अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः" उपासनारसवालों में—उनकी श्रेणि में प्रकाशवान् स्तुति प्रार्थना उपासनारस का सुप्रेरक सुप्रापक सुसम्पादक (कृणुहि) कर दे (यः-औशिजः) जो कि मैं उशिक्—तुझ परमात्मा का पुत्र हूँ "उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्तेष्वग्निरमृतोनिधायि" [ऋ० १०।४५।७]

हे वेदस्वामिन् ज्ञानैश्वर्य वाले परमात्मन् ! मुझ अपने समीपवर्ती जीवात्मा जो तुझ प्रकाशस्वरूप का पुत्र है उसे उपासनारस सम्पादकों के मध्य में प्रकाश वाला कर दे या स्तुति प्रार्थना उपासनारसों का सम्पादक कर दे ॥ ५ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (अध्यात्मकक्ष सुना है जिसने ऐसा कुशल उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
बाधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्य्यासुतिः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बोधन्मनाः) "बोधन्मनाः-बोधते जानाति मनोभावं यः स छान्दसः समासः" मन के भाव को जानने वाला (वृत्रहा) पाप-नाशक (भूर्य्यासुतिः) बहुत प्रकार की आनन्द धारा जिससे प्राप्त होती है ऐसा परमात्मा (इत्) अवश्य (नः-अस्तु) हमारा ही—है (शक्रः) वह शक्तिमान् परमात्मा (आशिषं शृणोतु) स्तुति प्रार्थना को सुने—सुनाता है।

परमात्मा हम उपासकों की पापवृत्तियों को नष्ट करता मनोभाव को जानता बहुत प्रकार के आनन्द धाराओं को प्राप्त कराता और हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है—स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—श्यावाश्वः (बड़े बलवान् प्राण घोड़ों वाला प्राणायामाभ्यासी योगी)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
१ २ ३ १ २
परा दुःष्वप्न्य ँसुव ॥७॥

(देव सवितः) हे सुखोत्पादक इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मदेव ! तू (नः) हमारे लिये (अद्य प्रजावत्-सौभगम्) आज इस जीवन में प्रजा वाला मुझे प्रजा के लिए देने योग्य कल्याणरूप ऐश्वर्य (सावीः) अपनी ओर से प्रेरित कर (दुष्वप्न्यं परासुव) अनिष्ट विचार के निमित्तभूत अकल्याण वासना व्यसन को दूर कर।

सुखदाता परमात्मन् ! तू हम उपासक के इसी जीवन में अपनी प्रजा समझ वैसा कल्याण प्रेरित करता—प्रदान करता है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अनिष्ट विचारों के कारणरूप वासना व्यसन को भी हटा देता है। तू ऐसा कृपालु है ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः (प्रकृष्ट गाथा—स्तुति वाला मेधावी का शिष्य)

क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
ब्रह्मा कस्त ँ सपर्यति ॥८॥

(स्यः) वह (वृषभः) सुखवर्षक (युवा) सदा अजर एक-रस (तुविग्रीवः) बहुत ज्ञानोपदेष्टा "तुवि बहुनाम" [निघं० ३।१] "ग्रीवा गृणातेः" [निरु० २।२८] "गॄ शब्दे" (क्र्यादि०) या बहुत ज्ञानशक्ति वाला "सहस्रशीर्षा पुरुषः" [यजु० ३१।१] की भांति (अनानतः) किसी से नत न किया जाने वाला—सर्वाधिपति सर्वमहान् परमात्मा "अनानतस्य महतः" [निरु० १२।२३] (क्व) कहां है—किसी देश विशेष में नहीं अपितु, सर्वत्र ही है (कः-तं-सपर्यति) कौन उसको परिचरण में ला सकता है यथार्थ जानकर उपासना में ला सकता है "सपर्यति परिचरण-कर्मा" [निघं० ३।५] (ब्रह्मा) ब्रह्मज्ञानी महान् विद्वान्, साधारण विद्वान् नहीं।

वह सुखवर्षक अजर एकरस बड़ा उपदेष्टा अनन्त ज्ञान शक्ति-वाला सर्वाधिपति महान् परमात्मा अरे लोगों ! किसी एक देश में सीमित नहीं सर्वत्र है और उसको यथार्थ जानकर उपासना में लाने वाका कौन हो सकता है ब्रह्मा ब्रह्मज्ञानी पूर्ण विद्वान् ही है। अतः उसको किसी विशेष देश में स्थान में समझना वहाँ भटक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूल है और उसकी यथार्थ उपासना के लिए पूर्ण ज्ञानी बनना भी आवश्यक है ॥ ८ ।

ऋषिः—वत्सः (अध्यात्म वक्ता)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उपह्वरे गिरीणाꣳसङ्गमे च नदीनाम् ।
३ १ २र
धिया विप्रो अजायत ॥९॥

(गिरीणाम्-उपह्वरे) पर्वतों के प्रान्त में (च) और (नदीनां सङ्गमे) नदियों के सङ्गम में (धिया) ध्यान प्रज्ञा से (विप्रः-अजायत) मेधावी बन जाता है उनकी स्थिति गति सङ्गति का विवेचन एवं परमात्मा का ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान में कुशल हो जाता है ।

पर्वतों के प्रान्त भागों और नदियों के सङ्गमों का विवेचन एवं वहां परमात्मा का ध्यान करने से ब्रह्मज्ञान में समर्थ ब्रह्मा बन जाया करता है, सदा नहीं तो कभी-कभी अवश्य उन स्थानों पर जाकर रहना ध्यान करना चाहिए ॥ ९ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः काण्वः (मेधावी का शिष्य अन्तरिक्ष—हृदयाकाश में परमात्मज्ञान में प्रवृत्ति वाला)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ ३ २
प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रꣳस्तोता नव्यं गीर्भिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम् ॥१०॥

(चर्षणीनां) मनुष्यों के—(नव्यम्) स्तुत्य—(सम्राजम्) विश्व भर में सम्यक् राजमान—(नरम्) नायक (नृषाहम्)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरों मनुष्यों को सम्भालने वाले पाप पुण्य का कर्मफल देने वाले (मंहिष्ठम्) अति दानी (इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतियों से (प्रस्तोत) हे मनुष्यो ! तुम स्तुति में लाओ—उसकी स्तुति करो ।

मनुष्यों के स्तुत्य विश्वभर में भलीभांति विराजमान 'परमात्मा कहां है का उत्तर विश्व में है' सबके नायक मनुष्यों के कर्मफल को आप करने वाले अति दानी परमात्मा का वैदिक स्तुतिवचनों से स्तुति में लाओ—उसकी स्तुति किया करो ॥ १० ॥

—

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा परमात्म ज्ञानी)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
२ ३ २ ३ १ १
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१॥

(सुदक्षस्य) सुचतुर—उच्च ज्ञान बल वाले (प्रहोषिणः) प्रकृष्ट यथावत् आत्मसमर्पी उपासक के (यवाशिरः) समागम—भावना से युक्त—(अन्धसः) आध्यानीय—(इन्दोः) स्निग्ध उपसनारस का (शिप्री-इन्द्रः-अपात्-उ) आत्मा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अवश्य पान करता है—स्वीकार करता है ।

ऊंचे ज्ञानी आत्मसमर्पी उपासक के समागम भावना से युक्त समन्त ध्यान सहित स्निग्ध उपासना रस को आत्मा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अवश्य पान करता है—स्वीकार करता है ॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन गमनशील)

३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्रनोनवुर्गिरः ।
१ २ ३ ३ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥२॥

(पुरूवसो) हे बहुत धन वाले—विविध धन प्रदाता परमात्मन् ! (इमाः-गिरः) ये मेरी वाणियाँ या वेदवाणियाँ (त्वा-अभि उ) तुझे ही—तेरे प्रति ही (प्रनोनवुः) स्तवन करती जा रही है (धेनवः-गावः-वत्सं न) जैसे दूधारी—दूध पिलाने वाली गौवें बछड़े की ओर जा रही होती हैं ।

हे बहुत धन वाले परमात्मन् ! मेरी स्नेहमयी वाणियाँ या वेदवाणियाँ तेरे प्रति ही स्तुति करती हुई झुकी जा रही हैं—मेरी कोई भी वाणी या वेदवाणी ऐसी नहीं जो स्तुति न करती हो ऐसी सारी वाणियाँ तेरी स्तुतिपरायण तेरी ओर झुकी जा रही हैं, जैसे दूध पिलाने वाली गौवें बछड़े को दूध पिलाने दौड़ी जा रही हों । स्नेह प्रदर्शनमात्र में उपमा है । गौवें दूध पिलाने दौड़ रही हैं पर वाणियाँ स्नेहपूर्ण गुणगान करती हुई स्नेह से अपनाने जा रही हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—गोतमः (अत्यन्त प्रगतिशील ज्ञानी)

२३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २२
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥

(अत्र त्वष्टुः) "अत्र त्वष्टरि" दिन के समय इस प्रकाशमान आदित्य में "त्वष्टा-आदित्यः" [निरु० १२।११] (ह) अवश्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गोः) सर्वत्र गतिशील व्यापक परमात्मा के (अपीच्यं नाम) अपिहित—अन्तर्हित नमस्कार योग्य स्वरूप को (अमन्वत) उपासक मानते हैं—जानते हैं—अनुभव करते हैं, जैसे अन्यत्र वेद में कहा है—"हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म" [यजु० ४०.१७] (इत्था) 'इत्थं' इसी प्रकार (चन्द्रमसः-गृहे) रात्रि के समय चन्द्रमा के मण्डल—नक्षत्रों सहित चन्द्रमण्डल में भी उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप में अपिहित—अन्तर्हित जन मानते हैं।

चाहे दिन में प्रकाशात्मक पिण्ड सूर्य हो या रात्रि में प्रकाशात्मक चन्द्रमादि नक्षत्रगण हो सबमें उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप को उपासक मानते हैं—जानते हैं—"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" [कठो० ५।१५] संसार के किसी भी तापक या शीतल प्रकाश वाले पदार्थ को देखकर उपासकजन उस-उस पदार्थ को उपास्य इष्टदेव नहीं मानते किन्तु उस उसके अन्दर चेतन इष्टदेव परमात्मा को मानते हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्म ज्ञान को अपने अन्दर भरण धारण करने वाला)

१उ ३ १२३ १२ ३२३१र २र
यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः।
१२ ३१ २३ १ २
तत्र पूषा भुवत् सचा ॥४॥

(यत्) जब (वृषन्तमः-इन्द्रः) अत्यन्त सुखवृष्टिकर्ता परमात्मा (महीः-रितः-अपः-अनयत्) महती गतिशील व्यापन शक्तियों को प्रेरित करता है (तत्र) तब (सचा) साथ (पूषा भुवत्) सूर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना रश्मिप्रसाद करने में और पृथिवी वनस्पति उगाने में समर्थ होती है।

परमात्मा की व्यापन शक्तियों को पाकर ही सूर्य किरणों का सञ्चार करता है और पृथिवी भी ओषधि वनस्पतियों प्राणियों को उत्पन्न करती है ॥ ४ ॥

ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा (सूक्ष्म विवेचनशील या पवित्र ज्ञान बल वाला जन)

१ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
गौर्धयति मरुताᳬंश्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
३ २उ ३ १ २
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५॥

(मघोनां मरुताम्) ज्ञान धन वाले अध्यात्म याजकों की "मरुत ऋत्विङ् नाम" [निघं० ३।१८] (श्रवस्युः) रक्षणेच्छुक (गौः-माता) इन्द्र परमात्मा गौरूप ज्ञानप्रद माता बनकर (धयति) निजामृतरस पिलाता है (रथानां वह्निः) रथों के वहन करने वाले घोड़े की भांति रमण साधन योगाङ्गों में युक्त हुई वह गौ माता इस लोक परलोक की सुख यात्रा कराती है।

भाग्यवान् ज्ञानधनवान् आत्मसमर्पी विद्वानों का रक्षण चाहता हुआ इन्द्र परमात्मा गौ माता बनकर उन्हें निज अमृत रस पिलाता है तथा योगाङ्ग रमणसाधनों में युक्त होकर रथों में जुड़े घोड़े की भांति इस लोक और परलोक की सुख यात्रा भी कराता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (अध्यात्मकक्ष जिसने सुन लिया या शोभन अध्यात्मकक्ष जिसका चल रहा है ऐसा जन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ ३ १२ ३२ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१२ ३ १२ ३२
उप नो हरिभिः सुतम् ॥६॥

(मदानां पते) हे समस्त हर्षों और आनन्दों के स्वामिन्! तू (नः सुतम्) हमारे निष्पादित हावभावपूर्ण उपासनारस एवं भक्तिभाव को (हरिभिः-उप-याहि) दुःखापहरण करने वाले एवं सुखाहरण करने वाले गुणों से प्राप्त हो (नः सुतं हरिभिः-उप) हमारे निष्पादित भक्तिभाव को दुःखापहरण करने वाले सुखाहरण करने वाले गुणों से प्राप्त हो।

हर्ष सुखों के स्वामिन् परमात्मन्! तू हमारे द्वारा निष्पादित उपासनारस को दुःखापहरण करने वाले सुखाहरण करने वाले गुणों से हमें प्राप्त होता है अतः हम प्रार्थना करते हैं आप हमारे उपासना रस को हमारे कल्याणार्थ सेवन कर ॥ ६ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुना है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
१ ३ १र २र
अच्छावभृथमोजसा ॥७॥

(अध्वरे) अध्यात्म यज्ञ में (इन्द्रं वृधन्तः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को सम्यक् साक्षात् करने के हेतु (इष्टाः-होत्राः- असृक्षत) अनुकूल या जहाँ तक हो सके आत्मभावनाएं—स्तुति-प्रार्थनोपासनाएं हैं उपासको छोड़ो समर्पित करो पुनः (ओजसा) मानस रस से (अवभृथम्-अच्छ) अवभृथ—स्नान को भली प्रकार प्राप्त होओ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म यज्ञ—योगानुष्ठान में परमात्मा के साक्षात् करने के हेतु अनुकूल स्तुतिप्रार्थनोपासनाओं को भेंट करो पुनः परमात्मा के सत्संग मानस रस में गोता लगाना चाहिए ॥ ७ ॥

ऋषिः—वत्सः काण्वः (मेधावी का शिष्य या पुत्र अत्यन्त मेधावी अध्यात्म वक्ता जन)

३ २उ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुः परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३ १र २र
अहँसूर्य इवाजनि ॥८॥

(अहम्-इत्-हि) मैं स्वयं अवश्य ही (पितुः) परमपिता परमात्मा से (ऋतस्य मेधां परि जग्रह) सत्यज्ञान की मेधा को—ऋतम्भरा बुद्धि को पूर्णरूप में पा लेता हूँ उक्त उपासनाद्वारा (अहं सूर्यः-इव-अजनि) मैं उपासक सूर्य की भांति परमात्मा से ज्योति पाकर प्रसिद्ध हो जाता हूँ जैसे परमात्मा से ज्योति पाकर सूर्य प्रसिद्ध होता है ।

उपासक परमात्मा से ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त कर ऐसे प्रसिद्ध हो जाता है जैसे सूर्य परमात्मा से ज्योति पाकर प्रसिद्ध होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—शुनः शेप आजीगतः (विषय लोलुप हो इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में आया हुआ आत्मकल्याण का इच्छुक जन)

३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
३ १ ३ २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नः) हमारी (रेवतीः) प्रशस्त भोगैश्वर्य वाली इन्द्रियां—इन्द्रियवासनाएं (सधमादे-इन्द्रे) माद—आनन्द साथ जिसके है उस स्वभावतः आनन्दस्वरूप परमात्मा में (तुविवाजाः सन्तु) बहुत सुखमय लोक वाली हो जावें "वाजो वै स्वर्गो लोकः" [ता० १८।७] (-याभिः) जिनके द्वारा (क्षुमन्तः-मदेम) उत्तम अन्न भोग वाले हम हो सकें।

हमारी इन्द्रियां अपने अपने विषयों का सेवन करती हुईं यदि परमात्मा में लग जायें तो इनका भोग प्रशस्त हो जावे, इस प्रकार परमात्मा के साथ उत्कृष्ट भोग वाली हो जाती हैं ॥९॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासाꣳसुक्षितीनाम्।
३ २ ३क २र ३ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥

(विश्वासां-सुक्षितीनाम्) सारी सुन्दर भूमिवाली नसनाड़ियों के—में वर्तमान (सोमः पूषा च हिता) जीवनरस और पोषणकर्ता प्राण वायु को "रसः सोमः" [श० ७।३।१।३] "अयंवै पूषा योऽयं पवते, एष हि सर्वं पुष्यति" [श० १४।२।१।९] शरीर में रहने वाले (देवत्रा) देवों की ओर जाने वाले (रथ्योः-चेततुः) ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग सुप्रसिद्ध करते हैं।

पूर्वोक्त इन्द्रिय वासनाओं को परमात्मा की ओर झुका दें तो जब इन्द्रियों की प्रवृत्तियां भोग के साथ परमात्मा की ओर झुकी हुई होती है तो शरीर की समस्त नाड़ियों में जीवनरस और प्राण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु ये दोनों शरीर में रहते हुए मानव को देवों—उत्कृष्ट मानवों मुमुक्षु और जीवन्मुक्त की ओर जाने वाले ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग का सुप्रसिद्ध करते हैं ॥ १० ॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने)

२ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३१र २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३१२३१ २ ३ २
विश्वासाहँ शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥

(वः-चर्षणीनाम्) तुम दर्शनेच्छुकों के (अन्धसः-आ पान्तम्) आध्यानीय उपासनारस को समन्तरूप से पान करने वाले (विश्वासाहं) सबको अभिभूत करने वाले समर्थ—(शतक्रतुम्) बहुत कर्म और प्रज्ञान वाले—सर्वशक्तिमान्-सर्वज्ञानवान्—(मंहिष्ठम्) महान् आनन्द देने वाले—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान परमात्मा को (अभि प्रगायत) निरन्तर गाओ—स्तुत करो ।

मनुष्यो ! जो तुम दर्शनेच्छुकों के उपासना ध्यान को सच्चा स्वीकार करने वाला सबका स्वामी सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ अत्यानन्दप्रद परमात्मा है उसकी निरन्तर स्तुति प्रार्थना उपासना किया करो ॥१॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनँ हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥२॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वः सखायः) तुम सखा जनो ! (हर्यश्वाय) दुःखापहरणशील सुखाहरणशील व्यापक गुण शक्ति वाले परमात्मा (सोमपाव्ने) उपासना रस को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) परमात्मा के लिये (मादनं प्रगायत) आनन्द गान गाओ जिससे तुम्हें आनन्द प्राप्त हों।

उपासक जनो ! परमात्मा के सखा—मित्र बन दुःखापहरण सुखाहरण गुण शक्ति वाले उपासना ध्यान स्वीकार करने वाले परमात्मा के लिये आनन्दादि गुणगान करो—स्तुति ध्यान करो ॥ २ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः काण्व प्रियमेधा वा (मेधावी का शिष्य मेधा से अतन परमात्मा में प्रवेश करने वाला प्रिया मेधा जिसकी है ऐसा विद्वान्)

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३   १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
१   २   ३   १   २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (कण्वाः) मेधावी (सखायः) तेरे मित्रजन (त्वायन्तः) तुझे चाहते हुए (उक्थेभिः) प्रशंसनीय वचनों—वैदिक स्तुत्य नामों से (जरन्ते) स्तुति में लाते हैं (वयम्-उ) हम भी (तदिदर्थाः) उस ही अर्थ—लक्ष्य को लेकर वैसे बनकर (त्वा) तुझे स्तुति में लाते हैं।

परमात्मन् ! हम भी अन्य पूर्ववर्ती या अपने से ऊंचे विद्वानों की भांति तुझे चाहते हुए वैदिक नामों द्वारा तेरी स्तुति करते हैं। अपने से ऊंचे विद्वानों को आदर्श बनाकर परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा अध्यात्म ज्ञानी)

१ २ ३ १ २ ३१२ २र ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४॥

(नः-गिरः) हमारी वाणियां (मद्वने-इन्द्राय) हर्ष—आनन्द देने वाले परमात्मा के लिए (सुतम्) उपासनारस को (परिष्टोभन्तु) प्रेरित करें (कारवः-अर्कम्-अर्चन्तु) स्तुति करने वाले "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] जैसे अपनी वाणियों से उस पूजनीय को पूजा करते हैं।

पूजनीय परमात्मा की पूजा अर्चना जैसे स्तुति करने वाले किया करते हैं उसी प्रकार हमारी वाणियां उस आनन्दप्रद के लिये स्तुति-स्तवन को प्रेरित करती हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (अन्तरिक्ष में—हृदयाकाश में गतिवाला उपासक)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
१ २ ३ २ ३ ३ १ २
एहीमस्य द्रवा पिब ॥५॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरे लिये (बर्हिषि-अधि) निज हृदयावकाश में (अयं सोमः-निपूतः) यह उपासनारस निष्पन्न किया है (ईम्-एहि) इसके पास आ (अस्य द्रव पिब) इसके प्रति शीघ्र गति कर और इसे पान कर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! मैंने अपने हृदयावकाश में तेरे लिये उपासनारस को श्रद्धा से निष्पादित किया है तू मेरे हृदय में आ शीघ्र आकर इसका पान कर—स्वीकार कर ॥ ५ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधुपरायण जन)

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।

३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥६॥

(गोदुहे सुदुघाम्-इव) गौ का दूध दूहने के लिये सुगमता से दूहने योग्य गौ को दूहता है ऐसे (ऊतये) जीवनरक्षा—आत्मस्वरूप प्राप्ति के लिये (सुरूपकृत्नुम्) शोभन रूप करने वाले—आत्मा को संस्कृत करने वाले परमात्मा को "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८।३।४] (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) हम अपने अन्दर आदान करें—धारण करें।

सुगमता से दूहने योग्य को दूध प्राप्ति के लिये जैसे गौ को दूहा करते हैं ऐसे ही आत्मस्वरूप को शोभन बनाने वाले परमात्मा को अपनी आत्मरूपता प्राप्ति के लिये प्रतिदिन अपने अन्दर धारण करना चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीन प्रकार की ज्ञानदीप्ति वाला—विद्यात्रयी ज्ञान वाला)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृषभ) हे सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मन् ! (सुते) उपासनारस निष्पन्न होने पर (पीतये) पान करने—स्वीकार करने के लिये (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस को (त्वा) तेरे प्रति (अभिसृजामि) भेंट करता हूं (तृम्प) मुझे तृप्त कर (मद व्यश्नुहि) हर्ष—आनन्द को मुझे प्राप्त करा।

सुखों की वृष्टि करने वाले परमात्मन् ! उपासनानिष्पन्न रस को स्वीकार करने के लिये तेरे प्रति भेंट करता हूं निःसन्देह तू भी मुझे तृप्त करता है अपना आनन्द प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—कुसीदः (योगभूमि पर विराजमान महानुभाव),

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।
१र २र ३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यः सुतः सोमः) जो निष्पन्न उपासनारस (ते) तेरे निमित्त (चमसेषु) अपने अन्दर के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार चमसों में जिनसे मैं तेरे लिए मनन, विवेचन, स्मरण, ममभाव द्वारा उपासनारस भरता हूं तथा (चमूषु) बहार के इन्द्रियपात्रों में वाणी, नेत्र, श्रोत्र में स्तुति, दर्शन, श्रवण करके भरता हूं (पिब-इत्) अवश्य पान कर स्वीकार कर (त्वम्-अस्य-ईशिषे) तू इसका स्वामी है "अधीगर्थदयेशां कर्मणि षष्ठी" [अष्टा० २।३।५२]।

परमात्मन् ! तेरे लिये अपने मनबुद्धि चित्त अहङ्कार रूप अन्दर के पात्रों में उपासनारस सूक्ष्मरूप से तैयार करता हूँ पुनः बाहर के वाणी, नेत्र कानरूप पात्रों में भी स्तवन दर्शन श्रवण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पात्रों में दृढ़ करता हूं तू उसे स्वीकार कर तू उसका स्वामी है अधिकारी है ॥ ८ ॥

ऋषिः—शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीर गर्त में गिरा आत्मकल्याण का इच्छुक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥९॥

(योगे योगे) योग योग—प्रत्येक सुख सम्पत्ति के संयोग पर (वाजे वाजे) वाज वाज—प्रत्येक सुख सम्पत्ति के संग्राम संघर्ष पर "वाजे संग्राम नाम" [निघं० २।१७] (तवस्तरम्-इन्द्रम्) अत्यन्त बलवान् परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (सखायः-हवामहे) सखाभूत हम उपासकजन बुलाते हैं—स्मरण करते हैं।

प्रत्येक सम्पत्ति के अवसर पर तथा प्रत्येक विपत्ति के अवसर पर अति बलवान् परमात्मा का अपनी रक्षार्थ सखाभाव से स्मरण करना चाहिए, सम्पत्ति में हम अभिमत्त होकर आत्महानि न कर सकें और विपत्ति पर निराश होकर आत्मग्लानि न कर सकें ॥९॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधुपरायण जन)

२ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः स्तोमवाहसः ॥१०॥

(स्तोमवाहसः सखायः) हे स्तवन गान को बहाने वाले गायक स्तुतिकर्ता उपासक मित्रो ! (आ-इत्-तु-आ) आओ तो आओ—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य आओ शीघ्र आओ आ—आकर (निषीदत) नियतरूप से बैठो—श्रद्धा स्नेह से बैठो (इन्द्रम्-अभिप्रगायत) सर्वैश्वर्य—सम्पन्न परमात्मा को लक्षित कर उसके गुणगान करो।

परमात्मा की स्तुति को प्रवाहित करने वाले उपासक सखा जन सामूहिक स्तवन का तान्ता बिठाने वाले एकत्र श्रद्धा स्नेह से बैठकर परमात्मा के गुणगान करें तो आनन्द का प्रवाह प्रवाहित हो जावे ॥ १० ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबको मित्र मानने वाला जन)

२ १र   २उ   ३ १   २
इद ँ ह्यन्वोजसा सुत ँ राधानां पते।
२ ३   २   १   २
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१॥

(गिर्वणः-राधानां पते) हे स्तुति वचनों से वननीय सेवनीय तथा हमारी समस्त आराधनाओं के पालक—किसी भी आराधना को व्यर्थ न जाने देने वाले परमात्मन्! (अनु-ओजसा हि सुतम्-इदम्) अनुक्रमपूर्वक—श्रवण मनन कर पुनः निदिध्यासन बल से उपासनारस को निष्पन्न किया है (अस्य तु पिब) इसका अवश्य पान कर—इसे स्वीकार कर।

परमात्मन्! तू उपासक की समस्त आराधनाओं का पालन स्वागत करता है किसी की भी उपेक्षा नहीं करता है व्यर्थ नहीं जाने देता है और स्तुति द्वारा हमारा वननीय सेवनीय है हम तुझे स्तुति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही सेवन कर सकते हैं अन्य भौतिक वस्तुएं तो तेरी दी हुई हैं उनकी तुझे क्या भेंट देनी तुझे उनकी आवश्यकता भी नहीं अतः जो हमने श्रवण, मनन, पुनः निदिध्यासनरूप पूर्ण प्रयत्न बल से उपासनारस सम्पन्न किया उसे अवश्य पान कर—स्वीकार कर ऐसी प्रार्थना है ॥ १ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला, मधु परायण)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।

१र २र ३ १र २र

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (महान्) सर्वमहान् है (पुरः-च) अतएव वह प्रत्येक के सम्मुख भी है जब सबसे महान् सर्वत्र है तो मेरे सामने भी होना ही है (द्यौः-न प्रथिना शवः) द्यौ—द्युलोक की भांति विस्तृत या फैला हुआ उसका बल—व्यापन बल है, उस ऐसे (वज्रिणे नः-महित्वम्-अस्तु) सर्वविध वज्रशक्ति वाले के लिए हमारा महिमा गुणगान हो ।

परमात्मा सर्वमहान है अतएव प्रत्येक के सम्मुख भी वह द्युलोक के समान विस्तृत व्याप्ति वाला है उस वज्र शासन वाले परमात्मा के लिए महिमा—गुणगान हमारा होता रहे ॥ २ ॥

ऋषिः—कुसीदी काण्वः (मेधावी का पुत्र योगभूमि पर बैठने वाला)

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।

३ १र २र

महाहस्ती दक्षिणेन ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (महाहस्ती) बड़े हाथों वाला—प्रशस्त दानी होता हुआ (दक्षिणेन) दक्षिण पार्श्व से—निज सखा सङ्गी बन (नः) हमारे लिये (क्षुमन्तं चित्रं ग्राभम्) प्रशस्त भोग वाले अद्भुत मुट्ठी को (तु) अवश्य (आसंगृभाय) भलीभांति प्रदान कर।

परमात्मन् ! हमारे लिए भोग और आनन्द दान करने को तू महादानी है विशाल हाथों वाला है "तू छप्पर फाड़ कर देने वाला है" उक्ति भी है तू सदा हमारे साथ दक्षिण पार्श्ववर्ती सखा के समान है तू उस अद्भुत आनन्द भोग वाली विचित्र मुट्ठी को हमें प्रदान कर देता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको ऐसा जन)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४॥

(यथाविदे) हे उपासक तू यथावत् वेत्ता होने के लिये (गोपतिम्) वेदवाणी के स्वामी—(सत्पतिम्) सत्पुरुषों—उपासकों के पालक (सत्यस्य-सूनुम्) सत्य के प्रेरक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (अभि) पुनः पुनः उसे (गिरा प्राचे) स्तुति से अर्चित कर।

यथार्थवेत्ता होने के लिये मानव तू वेदवाणी के स्वामी उपासकों के पालक सत्य के प्रेरक परमात्मा की स्तुति से पुनः पुनः या निरन्तर अर्चना किया कर ॥ ४ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय वन्दनीय देव—इष्टदेव जिसका है ऐसा उपासक जन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १२ ३१ ३२ ३ १ २ ३ १ २
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥५॥

(कया-ऊती) किसी भी स्तुति प्रवृति से (कया शचिष्ठया वृता) किसी भी अत्युत्तम प्रज्ञा— आत्मभावनामय वृत्ति से (नः) हमारा (सदावृधः सखा) सदावर्धक उत्कर्ष करने वाला मित्र वह परमात्मा (आभुवत्) हो जाता है ।

परमात्मा की कृपा अपार है वह हमारी किसी भी ऊंची स्तुति से या किसी ऊंची श्रद्धामय आत्मभावना वैराग्य प्रवृत्ति से सदा उत्कर्ष करने वाला मित्र बन जाता है। अतः हमें उसकी स्तुति और अनुरागभरी श्रद्धा आत्मभावना को अर्पित करना चाहिए ।।५।।

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा जन)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १ २
आ च्यावयस्यूतये ॥६॥

(विश्वासु गीर्षु) समस्त स्तुतियों में (आयतम्) व्याप्त— (सत्रासाहम्) सत्य—अविनाशी एवं सत्यरूप से सब पर अभिभूत "सत्रा सत्यनाम" [निघं० ३।१०] (त्यम्-उ) उसी इष्टदेव ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (वः) "त्वम्-विभक्ति वचनव्यत्ययः" तू (ऊतये) रक्षा के लिये (आच्यावयसि) स्तुतियों से अपनी ओर झुका लेता है ।

सत्य से सब पर अधिकारकर्ता परमात्मा को अपनी रक्षार्थ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक स्तुतियों से अपनी ओर झुका लेता है क्योंकि समस्त स्तुतियों में वह परमात्मा व्याप्त है प्रत्येक स्तुति का सत्पात्र है प्रत्येक स्तुति को स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन गमन प्रवेश करने वाला)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २ ३ १ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥७॥

(सदसः पतिम्) सब जिसमें देव सूर्य आदि रहते हैं ऐसे जगत् के स्वामी—"यदस्मिन् विश्वे देवा आसीदन् तस्मात् सदो नाम" [श० ३।५।३।९] (अद्भुतम्) आश्चर्य गुण वाले—(प्रियम्) प्रिय-इष्ट (काम्यम्) कमनीय–स्तुत्य (सनिम्) दाता (इन्द्रस्य) "इन्द्रम्-विभक्ति व्यत्ययः" ऐश्वर्यवान् परमात्मा को—से (मेधाम्) मेधा को (अयासिषम्) प्राप्त करता माँगता हूं।

जगत् के स्वामी अद्भुत प्रिय–इष्टदेव—कमनीय दाता परमात्मा से आर्ष मेधा को माँगता हूँ जिससे मैं सदा उसकी स्तुति करता हुआ मेधावान् उपासक बन जाऊं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय इष्टदेव वाला उपासक जन)

२ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३क २र ३ १ २
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
१ ३ ३ १ २
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८॥

(ते) हे इन्द्र परमात्मन् ! तेरे—तेरे सृजे हुए (ये पन्थाः) जो मार्ग (दिवः-अधः) द्यु लोक के—अमृतधाम के "त्रिपादस्यामृतं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवि" [ऋ० १०।९०।३] नीचे हैं (येभिः-अश्व वि-ऐरयः) जिन मार्गों वातसूत्रों के द्वारा आदित्य को विशेषरूप से प्रेरित करता है "असौ वा आदित्योऽश्वः" [तै० ३।९।२३।२] "चकार सूर्याय पन्थामन्वेतव उ" [ऋ० १।२४।८] (नः-भुवः-उत श्रोषन्तु) हमारी भूमियों—देहों को भी "आशृणवन्तु" स्वीकार करें—स्वीकार करते हैं संचालित करते हैं।

परमात्मन् ! तेरे वातसूत्र मार्ग द्यु मण्डल के नीचे जैसे सूर्यादि प्रकाश पिण्डों को चलाते हैं वैसे वे हमारी भूमियों एवं देहों को भी स्वाधीन करते हैं एवं तेरा नियन्त्रण समस्त विश्व पर है ॥८॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)

३ १ २   २   १ ३ २ ३ १ २
भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जꣳ शतक्रतो ।
३ २   ३ १ २
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥९॥

(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत प्रज्ञा और कर्म वाले परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिये (भद्रं भद्रम्) कल्याण कल्याण—सर्वथा कल्याण (इषम्) अदनीय अन्न "इषम्-अन्नम्" [निघं० २।७] (ऊर्जम्) रस को "ऊर्ग वै रसः" [मै० ३।१०।४] (आभर) प्राप्त करा (यत्) यतः क्योंकि (नः-मृडयासि) तू हमें सुखी किया करता है।

बहुत प्रज्ञा और कर्म शक्ति धारने वाले परमात्मन् ! तू हमारे लिये कल्याणकारी अन्न भोजन और रस पान प्राप्त करा, यह प्रार्थना करते हैं, यह प्रार्थना अन्यथा नहीं किन्तु योग्य है क्योंकि तू हमें सुखी करता है ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—बिन्दुः (स्व वासनाओं को छिन्न-भिन्न करने वाला†)

२ ३ १ २ ३२ ३ १२ २२ ३ १ २
अस्ति सोमो अयꣳ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
३२ ३२ ३ ३ १ २
उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥

(अयं सोमः सुतः-अस्ति) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! यह उपासनारस निष्पन्न किया है तू इसे पान कर यह निकृष्ट रस नहीं (उत) अपितु (अस्य) "इमम्-विभक्तिव्यत्ययः" इसको (स्वराजः-अश्विना 'अश्विनः' मरुतः पिबन्ति) अपनी शक्ति से राजमान मेरे शरीर में व्यापनशील "व्यश्नुवते-अश्विनः" [निरु० १२।१] प्राण भी पीते हैं—इसका पान करते हैं जो अपने प्राणों के लिये प्रिय है वह निकृष्ट नहीं वह तो प्राणों के भी तुम्हे प्राण को भेंट है। "प्राणो वै मरुतः स्वापयः" [ऐ० ३।१६] "अश्विनः स्थाने 'अश्विना' इत्याकारादेशः"।

परमात्मन् ! उपासनारस तेरी भेंट है तू इसे पान कर यह निकृष्ट भेंट नहीं अपितु उत्कृष्ट है मेरे प्राण इस पान को प्रथम पीते है जो कि मेरे साथ शरीर में राजमान और व्यापने वाले हैं, प्राणों से प्यारा कोई नहीं लौकिक उक्ति है परन्तु तू प्राणों से भी प्यारा है तेरी भेंट है ॥ १० ॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः (परमात्मा का मान—स्वीकार करने वाली मानव को देव का जन्म देने वाली दैवी वृत्तियाँ)

---

† "विदि अवयवे" [भ्वादि०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।
३ १ २ ३ १ २
वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१॥

(ईङ्खयन्तीः) परमात्मा के प्रति गमन करने की हेतुभूत "ईङ्खते गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (अपस्युवः) स्वकर्म को चाहने वाली (सुवीर्यम्-वन्वानासः) उत्तम प्राणभाव—शोभन जीवन को चाहती हुई मानव देवत्व को उत्पन्न करने वाली परमात्मा का मान करने वाली स्वीकार ध्यान करने वाली वृत्तियाँ—दैवी वृत्तियाँ (जातम् इन्द्रम्-उपासते) साक्षात् प्रसिद्ध परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त हो जाती हैं।

मानव के अन्दर उसको देव बनाने वाली दैवी वृत्तियाँ परमात्मा की ओर जाने की हेतुभूत होकर शोभन कर्म में प्रवृत्त हुई सुन्दर प्राणों वाले जीवन को चाहती हुई प्रसिद्ध परमात्मा की उपासना में लग जाया करती है॥ १ ॥

ऋषिः—गोधा (स्तुति वाणी को धारण करने वाला)

१ २ ३ १र २र
न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।
३ १ २
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥२॥

(देवाः) हे देवों—विद्वानों ! (न कि-इनीमसि) न किसी को या न कभी हिंसित करती है "इनीमसि-मीङ् हिंसायाम्" [क्र्यादि०] "मकारलोपश्छान्दसः" पूर्वोक्त दैववृत्तियाँ या दैववृत्ति वाली प्रजाएं हम (न कि-आयोपयामसि) न किसी को या न कभी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगूढ़ करती हैं जड़त्व की ओर ले जाती हैं। अपितु (मन्त्र-श्रुत्यं चरामसि) मन्त्रश्रुति के अनुरूप—परमात्मपरक मन्त्रों में जो श्रवण किया है तदनुसार वर्तती हैं।

दैवीवृत्तियाँ या देवश्रेणिजन कभी किसी को हिंसित नहीं करते हैं और न कभी किसी को व्यामोह में डालते हैं जड़ बनाते हैं अपितु परमात्म-विषयक मन्त्रों में कथनानुसार वर्तते हैं। ऐसी दैवीवृत्तियाँ या देवजन सेवनीय हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—दध्यङ्ङाथर्वणः ('दधि-ध्यानमञ्चति प्राप्नोति दध्यङ्'-ध्यानशील अथर्वा 'स्थिरमनाःसोऽति-शयित':-मन की स्थिरता करने में कुशल)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुहि देवꣳ सवितारम् ॥३॥

(द्युमद्गामन्) हे द्युतिमान् परमात्मा को प्राप्त करने वाले ज्ञानी उपासक! "द्युमन्तं गच्छतीति 'द्युमत्' उपपदपूर्वकाद् गा धातोर्मनिन् प्रत्ययः" "आतो मनिन्०" [अष्टा० ३।२।७४] (आथर्वण) अत्यन्त स्थिर मन वाले (बृहद्गाय) बहुत गुण-गायक मुमुक्षु जन। (दोषा-उ-आगात्) अरे रात्रि आ रही है—आने वाली है, अतः उससे पूर्व-पूर्व (सवितारं देवं स्तुहि) उत्पादक प्रेरक सुखैश्वर्यप्रद परमात्मा की स्तुति कर।

प्रकाशमान परमात्मा को प्राप्त करने वाले स्थिरमना गुण-गायक मुमुक्षु जन! रात्रि से सायं समय तथा जीवन की निशा से पूर्व ही युवावस्था में उत्पादक प्रेरक विविध भोग और आनन्द के दाता परमात्मा की स्तुति निरन्तर किया कर ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)

३ २ ३ १२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

३ १ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४॥

(उ-एषा-उषाः) अरे यह उषा—प्रातर्वेला (अपूर्व्या) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ जिससे श्रेष्ठ कोई वेला नहीं (प्रिया) प्यारी (दिवः-व्युच्छति) उस प्रकाशक सविता परमात्मा की ओर से प्रकाशित हो रही है (बृहत् स्तुषे) मैं उसकी बहुत स्तुति करता हूँ—करता रहूं (अश्विना-वाम्) हे दोनों दिन रातों ! तुम दिन और रात में भी उस सविता परमात्मा की स्तुति करता हूँ "अहोरात्रौ-अश्विनौ" [निरु० १२।१] "अहोरात्रे वा अश्विनौ" [मै० ३।४।४] यहाँ "अत्यन्त संयोगे" द्वितीया विभक्ति है।

मैं उस प्रकाशक परमात्मा की ओर से प्रकाशित उषावेला—प्रातर्वेला में तथा जीवन की कुमार वेला में उत्पादक प्रेरक भोग और आनन्द के दाता परमात्मा की स्तुति करता रहूं अपितु इन उषा और सायं वेला के मध्य दिन और रात में जागता सोता हुआ व्यवहारकाल और शायनकाल में परमात्मा को न भूलूं उसके विपरीत आचरण न करूं और स्वप्न न लूं ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (उपासना में अत्यन्त गतिशील ध्यानी)

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।

३ १ २ ३ १र २र
जघान नवतीर्नव ॥५॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप्रतिष्कुतः) 'कुतोऽपि गुणकर्मस्वभावात्-अप्रतिः-न प्रतिनिधिर्यस्य सः-अप्रतिष्कुतः' गुणकर्म स्वभाव से प्रतिनिधिरहित तथा न प्रति-आप्रवणशील—अपने गुणकर्म स्वभाव से न विचलित होने वाला—एकरस "स्कुञ् आप्रवणे" [क्र्यादि०] एवं न प्रतिकृत—प्रतिकार से रहित "मध्ये सकारा गमश्छान्दसः" और किसी से न प्रतिहिंसित "अप्रतिष्कुतः-अप्रतिष्कृतः" [निरु० ६।१६] (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (दधीचः) दधि-ध्यान—परमात्मध्यान को प्राप्त ध्यानी के "दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानम्" [निरु० १२। ३६] (वृत्राणि) पापों—पापविचारों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (अस्थभिः) अस्थियों उपतापित करने वाली "असु उपतापे" [कण्ड्वादि०] समिधाओं—समिद्ध ज्ञानप्रकाश से प्रदीप्त स्वशक्तियों से "अस्थीनि समिधः" [श० ९।२।३।४६] (जघान) नष्ट कर देता है तथा (नव नवतीः) नौ—पाँच ज्ञानेन्द्रियों मन बुद्धि चित्त अहङ्कार वाली गतिप्रवृत्तियों वासनाओं को भी "नवते गतिकर्मा" [निघं० २।१४] नष्ट कर देता है।

किसी भी ज्ञान दया न्याय शक्ति आदि गुण, सृष्टिरचना, जीवों के कर्मफलादि कर्म सर्वगत, विभु आदि स्वभाव से प्रतिनिधि—समकक्ष से रहित तथा स्वगुणादि से अविचलित एकरस एवं प्रतिकार न कर सकने योग्य न प्रतिकार का इच्छुक और अन्य से अहिंसित होता हुआ अपने ध्यान में अपनी उपासना में रत हुए ध्यानी उपासक के पापों स्वविषयक पापों अन्य के प्रति पापों को नष्ट किया करता है अपितु वह ध्यानी के नौ प्रकार की वासनाओं को भी नष्ट कर देता है जो कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ग्रहण वासनाएं हैं एवं मन बुद्धि चित्त अहंकार के अर्थात् मन के संकल्प बुद्धि की तर्कनाएं चित्त के स्मरण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहङ्कार के ममताएं संसार को लक्ष्य करके होती हैं उन्हें भी नष्ट करता है निरुद्ध कर देता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला, मधुतन्त्र उपासक)

२उ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
३ १ २ ३ १र २र
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥६॥

(इन्द्र-एहि) हे मेरे परमात्मन् ! मेरे हृदय में आ (अन्धसः) आध्यानीय—ध्यानोपासन के (विश्वेभिः) सारे—(सोमपर्वभिः) मेरे द्वारा अनुष्ठित सोम्ययोग के अंगों से (मत्सि) तू मुझ पर हर्षित हो—मुझे उपकृत कर (ओजसा) अपने आत्मबल से (महान्-अभिष्टिः) महान् सर्वमहान् सबको बाहर भीतर से प्राप्त है प्राप्त करता है ।

परमात्मन् ! तू महान से महान् आत्मबल से सबके अन्दर बाहर प्राप्त है अतः तू मेरे अन्दर आ और मेरे ध्यानोपासन योगाङ्गों के द्वारा मुझ पर प्रसन्न हो मुझे उपकृत कर यह प्रार्थना है परमात्मन् निश्चय तेरी ओर आते हुए के मार्गों पर चलते हुए को देखकर तू प्रसन्न होता है और उसे उपकृत करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय धारणीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा उपासक)

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान् महीभिरूतिभिः ॥७॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापविनाशक ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (महान्) महान् है—स्वरूपतः और उपकारक गुणों से महान् है, अतः (अस्माकम्-अर्द्धम्) हमारे पास या हमारे घर (तु-आ) शीघ्र आ, परन्तु साधारणरूप से नहीं किन्तु (महीभिः-ऊतिभिः-आगहि) महती—रक्षाकरणशक्तियों के साथ आ जा।

पापनाशक परमात्मन् ! हमारे पास या हमारे स्थान हृदयगृह में आ, हम जानते हैं तू आमन्त्रित करने पर आता है परन्तु हमारे प्रेम आग्रह मात्र से या साधारणरूप में ही नहीं किन्तु अपनी रक्षा शक्तियों से आया करता है—तब हम निर्भय रहते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वत्सः (परमात्मगुणों का वक्ता)

२ ३ १ २ ३ २र ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥८॥

(अस्य) इन्द्र परमात्मा का (तत्-ओजः-तित्विषे) वह ओज स्वात्मीय बल प्रदीप्त हो रहा है (यत्-इन्द्रः-उभे रोदसी) यतः-जिससे ऐश्वर्यवान् परमात्मा दोनों द्यावापृथिवी—द्यु लोक पृथिवी लोक को द्यावापृथिवीमयी सृष्टि को "रोदसी पृथिवीनाम" [निघं० ३।३०] (चर्म-इव समवर्तयत्) जैसे कोई शिल्पी ऊपर चमड़ा चढ़ा कर वस्तु को उसकी रक्षार्थ ढक देता है। संवृत कर लेता है ढक लेता है।

परमात्मा का स्वात्मीय बल प्रकाशित होकर सारी द्युलोक पृथिवीलोकमयी सृष्टि को ढक रहा है चमड़े की भांति अर्थात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा का स्वात्मबल प्रत्येक वस्तु में प्रकाशित है जो वस्तु वस्तु को उसके अपने स्वरूप में बनाए रखता है वह वस्तु वस्तु की रक्षा भी करता है उस उस वस्तु के स्वरूप को भी निरूपित करता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रिय भोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषय सङ्गी जन उत्थान का इच्छुक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
२ ३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९॥

(ते) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तेरा पुत्र या सखा (अयम्-उ) यह ही मैं जीवात्मा (समतसि) 'समतति' पुरुषव्यत्यये न मध्यमः, शरीर में भोगार्थ निरन्तर पुनः पुनः गमन कर रहा है—भटक रहा है (कपोतः-इव गर्भधिम्) जैसे कबूतर पोधे के गर्भरूप अन्न धरे हुए हैं जहाँ ऐसे जाल को प्राप्त हो रहा है उसमें अन्नभोगार्थ फँस रहा है "अन्नं वै गर्भाः" [तै सं० ५।३।३।४] "कर्मण्यधिकरणे च" [अष्टा० ३।३।९३] 'इत्यधिकरणेऽर्थे धा धातोः किः प्रत्ययः" (तत्-चित्) उस हेतु भी—(नः-वचः-ओहसे) हमारे—मेरे आर्तवचन—प्रार्थना वचन—शरीर बन्धन या भोगबन्धन से या भोगसंकट से विमुक्तिनिमित्तप्रार्थनावचन को समन्त रूप से प्राप्त होता है "ऊहे……वहति" [निरु० ६।३५] सुनता है—स्वीकार करता है।

परमात्मन् ! दाने के लोभ में दाने वाले जाल में फँसे कबूतर की भांति भोगार्थ भोगस्थान शरीर में भटकते हुए फँसे हुए इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ जीवात्मा के पश्चात्तापरूप आर्त्तनाद को अवश्य सुनता है—सुन, मुझे मुक्ति प्रदान कर ॥ ९ ॥

ऋषिः—वातायन उल्लः (सुन्दर अध्यात्म वातावरण अयन आश्रय में विराजमान उल्लास को प्राप्त उपासक जन)

२ ३ १ २ ३१ ३ १ २ ३ १ २ ३१
वात आ वातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।
२ ३ १ २
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥१०॥

(वातः) 'वाति सर्वत्र विभुगत्या प्राप्तो भवतीति वातः-स एव-इन्द्रः परमात्मा' सर्वत्र विभुगति से प्राप्त परमात्मा 'वातः प्राणस्त-दयमात्मा' [काठ० ७।१४] (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिये (शम्भु मयोभु भेषजम्) अध्यात्म कल्याण भावित करने वाले लौकिक सुख भावित करने वाले अमृत-स्वरूप को "यद् भेषजं तदमृतम्" [गो० १।३।४] (आ वातु) सञ्चारित करें (नः-आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओं को—प्राणों को "आयुः प्राणः" [तै० ३।३।४।२] बढ़ावें ।

वातस्वरूप इन्द्र परमात्मा हमारे हृदय के लिये अन्तःकरण के लिए शान्ति भावित करने वाले तथा सुख भावित करने वाले अपने अमृतस्वरूप को सञ्चारित करें—करता है, जब कोई उसका बन जाता है उसमें रत हो जाता है तथा उसके भौतिक प्राणों को भी बढ़ाता है—मुक्ति में रहने वाले अमृत प्राणों को भी प्रदान करता है ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम खण्ड

ऋषिः—घौरः कण्वः (अति वक्ता मेधावी विद्वान्)

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २
यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
२ ३ १ १
न किः स दभ्यते जनः ॥१॥

(यम्) हे इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! जिस उपासक को तेरी उपासना से उसके अन्दर (वरुणः) वरणीय–शरणप्रद (मित्रः) सहायक स्नेही (अर्यमा) आनन्दप्रद स्वामी नाम से ये तेरे स्वरूप (प्रचेतसः) प्रत्यक्ष—साक्षात् हुए (रक्षन्ति) रक्षित रखते हैं, सम्भालते हैं (सः-जनः) वह उपासक जन (न किः-दभ्यते) न कभी दबाया—सताया जा सकता है।

जिस उपासक के अन्तरात्मा में हे परमात्मन् ! तेरे वरुण-शरणप्रद, मित्र सहायक स्नेही, अर्यमा आनन्ददाता स्वामी स्वरूप साक्षात् हो जाते हैं वे उसकी नितान्त रक्षा करते हैं वह विपरीत विघ्न या विघ्नकर्ता से दबाया सताया नहीं जा सकता है ॥ १ ॥

ऋषिः—वत्सः (वक्ता—निवेदयिता प्रार्थी)

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २र ३ २
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥२॥

(उ सु) अरे मानव ! अपने कल्याणार्थ (गव्या) 'गव्यया' प्रशस्तवाणी की इच्छा से—वाणी परमात्मा की स्तुति करने वाली वाणी प्राप्त हो (अश्वया) सब विषय व्यापक प्रशस्त मन की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा से—मन परमात्मा का चिन्तन करने वाला हो (उत) और (रथया) प्रशस्त शरीर रथ की इच्छा से—सदाचरण करने वाला संयमी स्वस्थ रहें (महोनाम्) महान्—श्रेष्ठों में श्रेष्ठ इन्द्र ऐश्वर्यवन् इष्टदेव परमात्मन् ! 'निर्धारणे षष्ठी' तू (नः) हमें (यथा-पुरा) पूर्व की भांति—पूर्वजन्म की भांति—पूर्वजन्म में ये दिये थे ऐसे देकर (वरिवस्य) अपनी परिचर्या में बना पुनः पूर्व की भांति मोक्ष का आनन्द भुगा ।

सर्वमहान् परमात्मन् ! हमें पूर्वजन्म की भांति जिस पूर्वजन्म में उत्तम वाणी स्तुति करने वाली उत्तम मन तेरा चिन्तन करने वाला उत्तम शरीर तेरी प्राप्ति के सदाचरण करने वाला पाकर पूर्व मोक्षानन्द को कभी प्राप्त किया था उसे पुनः प्राप्त कर सकूं ऐसे इन वाणी आदियों को देकर अपनी परिचर्या उपासना हमसे करवा पुनः मोक्षानन्द को भुगा ॥ २ ॥

ऋषिः—वत्सः (वक्ता—प्रार्थना वचन-कर्ता)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते-इमाः-पृश्नयः) तेरे लिये अर्पित—तेरे लिये की हुई—मुझे स्पर्श करती हुई वाणियाँ स्तुतियाँ "वाग्वै पृश्निः" [काठ० ३४।१] (आशिरं घृतं दुहते) मेरे लिये तुझसे आश्रयणीय "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६।८] ज्ञानमय तेज—ज्ञानामृत को "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८] "घृतं......अमृतम्" [मै० ४।१२।४] "घृ दीप्तौ" [जुहो०] दुहती है—मेरे अन्दर भर देती हैं (एनाम्-ऋतस्य पिप्युषीः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एनाम्-एनाः' विभक्तिवचनव्यत्ययः' ये स्तुतियाँ अध्यात्म यज्ञ की बढ़ाने वाली हैं 'पिप्युषीः' प्रथमार्थे द्वितीया-विभक्तिव्यत्ययः' ।

परमात्मन् ! तेरे लिये समर्पित ये स्तुतियाँ मेरे लिये तुझसे आश्रयणीय ज्ञानमय तेज या तेजोमय अमृत को दूहती हैं जो मेरा अमर सहारा है, वस्तुतः ये स्तुतियाँ अध्यात्म यज्ञ को आगे-आगे बढ़ाती रहती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा अध्यात्म ज्ञानी जन)

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।

१र २र ३ १ २
यत्सोमे सोम आभुवः ॥४॥

(पुरुणामन्) हे बहुत नामों वाले—बहुत नामों से पुकारे जाने वाले जैसे अन्यत्र वेद में कहा है "अग्निं मित्रं वरुणमाहुः" [ऋ० १।१६४।४६] (पुरुष्टुत) बहुत गुण प्रकारों से स्तुत्य उपासनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तू (अनया गव्यया धिया च) इस स्तुति की इच्छारूप बुद्धि—धारणा से (सोमे-सोमे) निरन्तर निष्पादित उपासनारस में "वीप्सायां द्विरुक्तिः" (यत् आभुवः) जब कभी भी तू मेरे अन्दर आभूत हो जाता—साक्षात् हो जाता है—हो जावेगा यह तो विश्वास है ।

हे बहुत नामों वाले तथा बहुत गुणयोग से स्तुति करने योग्य परमात्मन् ! इस जिस किसी भी नाम विधि या जिस किसी भी गुण स्तुति की इच्छा वाली धारणा भावना से निरन्तर उपासना-रस निष्पादित करने पर तू जब कभी—कभी न कभी—कभी तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे अन्दर साक्षात् होता है—होगा ही यह निश्चय है तेरा सत्य-स्वभाव है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला मधु अध्यात्म परायण जन)

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥

(सरस्वती) वाक्-स्तुति वाणी (वाजेभिः) विविध बलों से—शरीर मन आत्मबलों से "वाजः-बलम्" [निघं० २।९] (वाजिनीवती) बलवती प्रवृत्ति वाली होती हुई (नः पावकाः) हमें पवित्र करने वाली (धियावसुः-यज्ञं वष्टु) कर्म से वसी हुई कर्मपरायण क्रियाशील—प्रगति वाली होती हुई "धियावसुः कर्मवसुः" [निरु० ११।२६] "तृतीयायाः अलुक्" अध्यात्म यज्ञ को चाहे—सम्पन्न करे—बढ़ावे—चमकावें ।

शरीर मन आत्मा के बलों की अपेक्षा स्तुति में होती है "नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः" [मुण्ड० ३।२।४] इन तीनों बलों से स्तुति वाक् बलतवी होकर हमें पवित्रकारिणी होती है वह ऐसी स्तुति वाणी प्रगतिशील कर्म प्रगति में वसी हुई अध्यात्म यज्ञ को चाहा या चमकाया करती है ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य देव है जिसका है ऐसा उपासनापरायण जन)

२ ३ १ २ २ २ ३ २ ३ ३ १ २
क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳ सोमस्य तर्पयात् ।
२ ३ २ ३ १ २
स नो वसुन्या भरात् ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओं में—मनुष्यों में "नहुषः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (कः-आ) कोई विरला जन मुमुक्षु "आः स्मरणे" (अव्ययार्थनिबन्धनम्) (इमम्-इन्द्रम्) इस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (सोमस्य) उपासनारस के समर्पण से (तर्पयात्) अपने ऊपर प्रसन्न कर सकता है—उसका कृपापात्र बन सकता है (सः) वह जो इन्द्र—परमात्मा (नः) हम सब मनुष्यों के लिये (वसूनि-आभरात्) नाना प्रकार के भोगधनों को प्रदान करता है।

परमात्मा सामान्यतः हम सब मनुष्यों को सांसारिक भोगधनों को प्रदान करता है, परन्तु हम मनुष्यों में से कोई ही विरला मुमुक्षुजन होता है जो उपासनारस के समर्पण से परमात्मा को अपने ऊपर प्रसन्न करता है—प्रसन्न कर उसके आश्रय में रह अमृत सुख ब्रह्मानन्द एवं मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (बिठ—अन्तरिक्ष—हृदयकाश में मन की प्रवृत्ति करने वाला)

१ २ ३ २उ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
१उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥७॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (आ याहि) आजा (ते) तेरे लिए (सोमं सुषुम हि) उपासनारस को हम सम्पादन करते हैं (इमं-पिब) इसको पान कर—स्वीकार कर (मम-इदं बर्हिः) मेरे इस हृदयाकाश में "बर्हिः-अन्तरिक्षम्" [निघं० १।३] (इदम्-आसदः) इस पर बैठ।

परमात्मा के लिये उपासनारस तैयार करना उसे स्वीकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने को आग्रह करना अपने हृदयाकाश में समन्तरूप से बिठना चाहिए ॥ ७ ॥

ऋषिः—वारुणिः सत्यधृतिः (वरुण-वरणीय परमात्मा के सम्बन्ध में सत्यधारणावाला उपासक)

१ २ ३ १र २र ३ २ ३१ २ ३ २
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
३ २ ३ १ २
दुराधर्षं वरुणस्य ॥८॥

(त्रीणाम्) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तेरे तीनों नाम उपासनीय (मित्रस्य) मित्र सहायक स्नेही—(आर्यम्णः) अर्यमा-आनन्दप्रद स्वामी—(वरुणस्य) वरुण-वरणीय—शरणप्रद स्वरूप का (महि) महत्—महत्त्वपूर्ण (द्युक्षम्) द्यु-प्रकाश में निवास करने वाला (दुराधर्षम्) न धर्षणीयन न मिटने योग्य—न हटाने योग्य (अवः) रक्षण (अस्तु) हमारे लिये सदा रहे।

परमात्मन् ! तेरे मित्र—सहायक स्नेही, अर्यमा-आनन्दप्रद स्वामी, वरुण-वरणीय शरणप्रद तीनों नामों या साक्षात् स्वरूपों का महत्—भारी तेजस्वी, न दबाने योग्य रक्षण उपासक को मिलता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वत्स (परमात्मगुणों का वक्ता प्रार्थी)

१ २ ३ १ २
त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
१ २
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥

(हरीणां स्थातः) हे मनुष्यों के स्थितिस्थापक ! "हरयो मनुष्याः" [निघं० २।३] (पुरूवसो) बहुत बहुविध भोगापवर्ग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनप्रद ! (प्रणेतः) प्रेरक—(इन्द्र) परमात्मन् ! (वयं त्वावतः स्मसि) हम तेरे जैसे इन्द्र की उपासना वाले अनन्य हैं—रहें।

परमात्मन् ! तू हम मनुष्यों का स्थितिस्थापक मानवता के स्तर पर रखने वाला बहुत प्रकार के भोग अपवर्ग ऐश्वर्य का स्वामी, प्रेरक है, हम भी तेरे जैसे परमात्मा की उपासना करने वाले हैं—बने रहें तुझ से भिन्न की कभी उपासना न करें। तेरे अनन्य उपासक बने रहें तेरी शरण के पात्र बने रहें ॥ ९ ॥

नवम खण्ड

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—वाणी—स्तुति जिसकी है ऐसा उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

१ २ ३ १ ३

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१॥

(अद्रिवः) हे अद्रिवन्–आनन्दघनवन्–आनन्द बरसानेवाले परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (सोमाः) हमारे द्वारा निष्पादित—विविध उपासनारस (उत्-मदन्तु) हमारी ओर उद्धर्षित करें—उल्लसित करें, इस प्रकार कि तू (राधः कृणुष्व) समृद्ध करने वाले धन को प्रदान कर (ब्रह्मद्विषः-अवजहि) तुझ ब्रह्म से द्वेष करने वाले तुझसे विमुख करने वाले नास्तिक विचार या मुझे ब्रह्म–ब्राह्मणत्व पद पाने के विरोधी नास्तिकपने को दबा दें।

हे आनन्द घन वाले परमात्मन् ! मेरे विविध उपासनारस तुझे मेरी ओर उल्लसित करें उल्लास पूर्ण करें, जिससे तू समृद्ध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले ऐश्वर्य मोक्षैश्वर्य को प्रदान करे तथा तेरी ओर आने में बाधक को मुझे ब्राह्मण बनने में विरोधी नास्तिक विचार को हटा दें ॥ १ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र—सबके लिये उदार जन)

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
२ ३ १ ३ १२ २र
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥२॥

(गिर्वणः-इन्द्र) हे स्तुतियों से वननीय परमात्मन् ! "गिर्वणाः-गीर्भिरेनं वनयन्ति" [निरु० ६।१४] (नः सुतं पाहि) हमारे निष्पादित उपासनारस को सम्भाल (मधोः-धाराभिः-अज्यसे) मीठे उपासना रस की धाराओं से सराबोर किया जाता है (त्वादातम्-इत्-यशः) बस तेरे द्वारा संस्कृत पवित्र यश—यशोमय जीवन हो ।

हे स्तुतियों से वननीय—भजनीय परमात्मन् ! तू हमारे निष्पादित उपासनारस को रख—सम्भाल—अपना, तू इस मीठे उपासनारस की धाराओं से स्निग्ध किया जा रहा है, इस प्रकार करने से तेरे द्वारा शोधा हुआ—पवित्र किया हुआ यह मेरा यशोमय जीवन हो ॥ २ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—सेवनीय—उपास्य देव जिसका है वह परमात्मा का अनन्य उपासक)

१ २ ३ २ ३ १२ ३२उ ३ १२ २२ ३ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
२ २ ३२उ ३ १ २
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा! (वः) तुम मनुष्यों को (सदा) सभी कालों में (आचर्कृषत्) आकर्षित करता है (सः) वह (नु) हाँ शीघ्र (उप-उ-सपर्यन् न) समीप में ही परिचर्या कराता हुआ सा (शूरः-देवः-इन्द्रः-वृतः) शूर—पापसंहारक शुभ गुणदाता इन्द्र परमात्मा वरण किया जाना चाहिए।

हे सज्जनो! परमात्मा पापों का संहारक गुणों का दाता वरण किया हुआ—स्वीकार किया हुआ सदा तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता है अपने समीप लेकर परिचर्या कराने जैसा व्यवहार करता हुआ वर्तमान रहता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥४॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (इन्दवः) मेरे ये आर्द्र उपासनारस (त्वा आविशन्तु) तेरे में आविष्ट हो जावें (सिन्धवः समुद्रम्-इव) नदियाँ जैसे समुद्र में आविष्ट हो जाती हैं, परन्तु भेद यह है कि नदियाँ तो जाकर खारी हो जाती हैं परन्तु आर्द्र स्निग्ध उपासनारस तेरे अन्दर मेरे लिये तुझे आर्द्र स्नेहपूर्ण कर देती हैं (त्वां-न अतिरिच्यते) तुझे कोई अतिरिक्त नहीं कर सकता तेरे से बढ़कर गुणवान् दयालु स्नेहवान् कोई नहीं है।

परमात्मन्! उपासक के द्वारा तेरे प्रति समर्पित आर्द्र स्निग्ध उपासनारस तुझ में ऐसे आविष्ट होते हैं जैसे नदियाँ समुद्र में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्ट हो जाती हैं, परन्तु समुद्र तो उन्हें खारी बनाकर अपने अन्दर ही रख लेता है किन्तु परमात्मन्! तू तो उपासनारसों को अपने आनन्द रस से संयुक्त कर उपासक के अन्दर प्रतिवर्तित करता है क्योंकि तू महान् दयालु है तुझ जैसा मधुर दयासागर कोई नहीं ॥ ४ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधु परायण उपासक जन)

२ ३ २ ३ १ २ ३१ २२ ३ २ २ ३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥५॥

(गाथिनः) गाथा वाले वैराग्यवान् जन वैराग्यपूर्ण गीति-गान स्तुतियों से (बृहत्) महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (अर्किणः) अर्चना करने वाले समस्त बाह्य पदार्थ तथा कर्म को अर्चित-समर्पित करने वाले अर्कों—अर्चनाओं से सर्वस्व समर्पण करने वाले अपने समर्पण भाव से (इन्द्रम्) परमात्मा को (वाणीः) 'वाणीभिः' गान और अर्चना करने वालों से भिन्न साधारण नम्र वाणियों द्वारा वक्ता जन अपनी वाणियों से (इन्द्रम्) परमात्मा की (अनूषत) स्तुत करें—स्तुति में लावें ।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा को गाने वाले, स्तुतियों द्वारा अर्चना करने वाले, समय पर वरने वाले अपनी अर्चनाओं से—समर्पण भावनाओं से, साधारण वाणियों से स्तुति करने वाले अपनी साधारण वाणियों से स्तवन करते हैं—किया करें ॥ ५ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
३ १ २ ३ १ २
वाजी ददातु वाजिनम् ॥६॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! (नः-इषे) हमारी कामनाओं के लिये पूर्ण काम होने के लिए (ऋभुक्षणम्) महान् "ऋभुक्षा महन्नाम" [निघं० ३।३] या उरुक्षयण—महान् निवास रूप (ऋभुम्) अपने धाम-मोक्ष निःश्रेयस को 'ऋभुः-इन्द्रस्य प्रिय धाम" [ता० १४।२।५] (रयिम्) ऐश्वर्य सांसारिक अभ्युदय को (ददातु) दे (वाजी वाजिनं ददातु) वह समस्त बलों वाला परमात्मा वाजिन—मोक्षसाधक ब्रह्मचर्यपूर्ण संयम को दे "रेतो वाजिनम्" [तै० १।६।३।१०] ।

मानव के दो लक्ष्य हैं रयि—ऐश्वर्य—अभ्युदय और मोक्ष-धाम-निःश्रेयस है इन दोनों को परमात्मा प्रदान करता है इन दोनों का साधन ब्रह्मचर्य संयम सदाचार बल है उसे भी सब बलों का स्वामी या बलों से सम्पन्न हमें प्रदान करे—करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु या स्तोता और हर्षालु)

१ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १र २र
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत् ।
२उ ३ १र २र
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७॥

(इन्द्रः) परमात्मा (महत्-भयम्) भारीभय को (अङ्ग) शीघ्र "आङ्गेति क्षिप्रनाम" [निरु० ५।१७] (अभीषत्) अभिगत करता है तथा दबा देता है (अपचुच्यवत्) च्यवित कर देता है—नष्ट कर देता है, (सः-हि) वह ही (स्थिरः-विचर्षणिः) नितान्त विशेष द्रष्टा है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा अपने उपासक के भारी भय को भी शीघ्र दबाता है और सर्वथा नष्ट कर देता है, वह ही अपने उपासकों के दुर्गुणों और अन्य विघ्नकर्ताओं को नितान्त देखता, उपासक अपने ऊपर आए भय न जान सकें पर वह तो जानता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (आत्मबल को भरण धारण करने वाला उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमा उ त्वा सुते सुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥

(गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय सेवनीय परमात्मन् ! (इमाः-गिरः) ये स्तुतियाँ (सुते सुते) प्रत्येक निष्पादित उपासनारस पर प्रत्येक उपासना प्रसङ्ग पर (त्वा-उ) तुझे ही (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं "नक्षति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] 'गतेरत्र प्राप्त्यर्थः' (वत्सं न धेनवः-गावः) बछड़े के प्रति जैसे दुधारी गौवें प्राप्त होती हैं ।

हे स्तुतियों से सम्भजनीय परमात्मन् ! प्रत्येक निष्पन्न उपासनारस पर मेरी स्तुति वाणियाँ तेरे प्रति इस प्रकार प्राप्त हो रही हैं जैसे बछड़े के प्रति दूधारी गौवें प्राप्त होती हैं, उपमा यहाँ केवल प्राप्ति में उत्सुकता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ २ ३१२ ३२ २ १ २ ३ १ २
इन्द्रा नु पूषणा वयꣳ सख्याय स्वस्तये ।
३ २ ३ १ २
हुवेम वाजसातये ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्रा) इन्द्र–ऐश्वर्यवान् "सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेया०" [अष्टा० ७।१।३९] 'आकारः' (नु) न केवल ऐश्वर्यवान् अपितु 'नु वितर्के' [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (पूषणा) पोषणकर्ता परमात्मा को (वयम्) हम उपासक (सख्याय) सखापन—साथी मित्र बनाने के लिये (स्वस्तये) संसार में सु-अस्तित्व—उच्च जीवन लाभ के लिये—अभ्युदय के लिये (वाजसातये) आत्मबल सम्भागी होने के लिये निःश्रेयस अमृतसुख के लिए "अमृतो अन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (हुवेम) अपने हृदय में आमन्त्रित करते—अर्चित करते हैं स्तुति में लाते हैं "ह्वयति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] "हुवेम ह्वयमे" [निरु० १०।२८]

सकल ऐश्वर्य वाले एवं पोषणकर्ता परमात्मा को अपना सखा बनाने के लिए—सखा बन जाने पर हमारी स्वस्ति संसार में अच्छा अस्तित्व-अभ्युदय और वाजसाति अमृत भोग प्राप्ति—निःश्रेयस प्राप्ति के लिये उसे आहूत—आमन्त्रित तथा अर्चित करते हैं स्तुति में लाते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य इष्टदेव परमात्मा जिसका है ऐसा अनन्य उपासक)

१ २ ३ १र २र ३ १ २र
न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
२ ३ २उ ३ २
न कयेवं यथा त्वम् ॥१०॥

(वृत्रहन्-इन्द्र) हे पापनाशक एवं आवरक अन्धकार के नाशक परमात्मन् ! (त्वत्) तुझ से (उत्तरं न किः) सूक्ष्म नहीं—तू सूक्ष्म से सूक्ष्म है "अणोरणीयन्" [कठो० २।२०] "य आत्मनि तिष्ठन्" [श० १४।६।७।३२] (ज्यायः-न-अस्ति)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् नहीं—तू ही महान् से महान् "महतो महान्" [कठ० २।-२०] "त्वमस्य पारे रजसो व्योम्नः" [ऋ० १।५२।१२] (यथा त्वं न किः-एवम्) जैसा—जितना तू इतना भी नहीं हैं—तेरे समान नहीं।

परमात्मन् ! तू सूक्ष्म से सूक्ष्म है तभी तो आत्मा में रहता हुआ वहाँ के पाप का नाश करता है, तू महान् आकाश के भी पार है तभी अन्धकार का नाशक है फिर तेरे समान किसी को क्या होना है ॥ १० ॥

दशम खण्ड

ऋषिः—त्रिशोकः (तृतीय ज्योति का ज्ञान जिसको है ऐसा उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ १ २
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
३ २ ३ १ २
समानमु प्रशꣳसिषम् ॥१॥

(वः-जनानाम्) तुम हम मनुष्यों के (समानम्-उ) समान ही (तरणिम्) तारक-उत्तारक ऊपर अध्यात्म क्षेत्र में उन्नायक (गोमतः-वाजस्य त्रदम्) इन्द्रियों सम्बन्धी भोग के चेष्टाकारक प्रेरक परमात्मा को "त्रदि चेष्टायाम्" [भ्वादि०] "तुमभावश्छान्दसः" (प्रशंसिषम्) प्रशंसित करें—स्तुति में लावें। "वचनव्यत्ययः"।

हे सांसारिक जनो ! तुम सब और हम उपासकों का समान तारक उद्धारक कल्याण मार्ग मोक्ष की ओर ले जाने वाले और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में इन्द्रियभोग के प्रेरक नियामक परमात्मा की हम सब प्रशंसा स्तुति किया करें इतनी कृतज्ञता तो प्रगट करना हम सबका कर्तव्य होना चाहिए ॥ १ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १२ २२
अस्रृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।

३ १ २ ३ १२ २२
सजोषा वृषभं पतिम् ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (ते) तेरे लिए (सजोषाः-गिरः) समान सेवनीय इष्टदेव जिनका है तुझ एक ही देव को लक्षित कर स्तुतियाँ (अस्रृग्रम्) मैं सर्जित करता हूं—सर्जन कर रहा हूँ—प्रेरित कर रहा हूं, जो कि (त्वां-वृषभं पतिं प्रति) तुझ सुखपूर्वक पालक के प्रति (उदहासत) उछल-उछल कर जा रही है।

परमात्मन् ! तेरे लिए मेरी स्तुतियाँ हैं तुझे ही एक लक्ष्य बनाकर निरन्तर मैं कर रहा हूं जो तुझ सुखवर्षक पालक की ओर उछल उछल कर जा रही हैं अतः मुझे ऐसे अनन्य स्तुतिकर्ता की स्तुतियों को स्वीकार कर मुझे अपना बना अपनी शरण दे ॥ २ ॥

ऋषिः—वत्सः (स्तुति वचन का वक्ता जन)

३ २ ३ २उ २ २ ३२३ १२३२
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।

३ २उ ३ १ २
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः-मर्त्यः-घ सुनीथः) वह मनुष्य अवश्य प्रशस्य-सुमार्ग वाला—शोभन संसार पथिक है "सुनीथ प्रशस्य नाम" [निघं० २।२०] (यं मरुतः) जिसको मरुतों पापभावनाओं को मार देने वाले गुणों से युक्त इन्द्र-ऐश्वर्यवान् परमात्मा "मतुब्लोपश्छान्दसः" "इन्द्रो वै मरुतः" [गो० २।१।२३] (यम्-अर्यमा) जिसको आनन्दप्रद परमात्मा और (मित्रः) स्नेही साथी परमात्मा (अद्रुहः पान्ति) द्रोहभावरहित हितचिन्तक रूपों में वर्तमान परमात्मा रक्षा करते हैं।

वह मनुष्य प्रशंसनीय सुपथगामी भाग्यशील है जिसके द्वारा उपासना से पापभावनानाशक ऐश्वर्यवान् आनन्दप्रद परमात्मा स्नेही परमात्मा अपना लिया गया है ॥ ३ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों ज्ञान ज्योति से सम्पन्न)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।
१ २ ३ १र २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥४॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (स्पार्हं वसु) स्पृहणीय वसु—वसा हुआ—व्यापा हुआ स्वरूप (यत्-वीडौ) जो बल वाले सूर्य जैसे पदार्थ में या सत्त्वगुण में (यत् स्थिरे) जो ठोस पृथिवी जैसे पिण्ड में अग्नि में या तमोगुण में (यत् पर्शाने) जो तरल मेघ जैसे पदार्थ में "पर्शानः-मेघनाम" [निघं० १।१०] "स्पृश धातोः आनच् प्रत्यय औणादिकः सकारलोपश्च छान्दसः" [उणा० २।९०] विद्युत् में या रजोगुण में (पराभृतम्) तूने अपना स्वरूप भरा हुआ है (तत्-आभर) उसे मेरे अन्दर भरपूर कर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! तूने अपना अन्य में बसने वाला—व्यापने वाला जो स्वरूप सत्त्वगुण में रजोगुण में तमोगुण में तीनों गुणों में भरा है या सूर्य में विद्युत् में अग्नि में तीनों ज्योतियों में भरा है "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" [कठो० ५।१५] या प्रकाशपिण्ड सूर्य में दोलायमान तरल पदार्थ मेघ में ठोस पदार्थ पृथिवी में भरा हुआ है इन सबको अपने व्यापन स्वरूप को मुझ उपासक के अन्दर भर दे ॥ ४ ॥

ऋषिः—सुकक्षः (शोभन कक्ष अध्यात्म कक्षा में रहने वाला)

३ १ २   ३ १ २ ३ १र २र   ३ २
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

३ २ ३ १ २   ३ २
आशिषे राधसे महे ॥५॥

(वः-चर्षणीनाम्) तुम मनुष्यों के "चर्षणयः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (आशिषे) इच्छा कामनापूर्ति के लिए तथा (महे राधसे) मोक्षरूप महान् ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये केवल इन्द्र परमात्मा है अतः उस (श्रुतम्) प्रसिद्ध विख्यात—(वृत्रहन्तमम्) पाप भावना नाशक—आवरक हन्ता—(शर्धम्) बलवान् इन्द्र परमात्मा को "मत्वर्थीयोऽकारश्छान्दसः" (प्र) प्रार्थित करो "उपसर्गाद् योग्यक्रियाध्याहारः"।

मनुष्यो ! तुम अपनी इच्छा कामनाओं की पूर्ति एवं महान् ऐश्वर्य सिद्धि अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिये पापभावनाविनाशक विध्वंसक बलवान् प्रसिद्ध इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना किया करो ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
१ २ ३ १ २
अरं॑ शक्र परेमणि ॥६॥

(शूर-इन्द्र) हे विक्रमशील या विविध प्रगतिशील परमात्मन् ! (ते) तेरे (श्रवसे) श्रवणीय यश के लिये "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९] (त्वावतः) हम तेरे वाले——तेरे आश्रय वाले—तुझे अपना बना चुके हुए (अरं गमेम) समर्थ हो जावें, तथा (शक्र परेमणि-अरम्) हे परमात्मन् ! तेरे परत्वे-पर-अभीष्ट मोक्षस्वरूप के निमित्त भी पूर्ण समर्थ हो सके। "परेमणि-पर शब्दात्, भावे-इमनिच् प्रत्ययः" पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा" [अष्टा० ५।१।१२१]।

विक्रमशील परमात्मन् ! संसार में फैले हुए तेरे सुनने योग्य विक्रम यश को अपने जीवन में धारणार्थ तुझे अपनाकर हम समर्थ होवें तथा तेरे पर——अभीष्ट मोक्षस्वरूप के निमित्त भी हम तेरे बने हुए पूर्ण समर्थ होवें यह हमारी आकांक्षा है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र सबको मित्ररूप से देखने वाला)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
१ २ ३ १ २
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७॥

(इन्द्र) परमात्मन् ! तू (नः) हम मनुष्यों में से (धानावन्तम्) धारणाओं वाले "डुधाञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] एकाग्रमन वाले योगी को (करम्भिणम्) प्राण का आरम्भ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियन्त्रण करने वाले प्राणाभ्यासी को "प्राणो वाव कः" [जै० उ० ४।११।२।४] (अपूपवन्तम्) प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी जन को "इन्द्रियमपूपः" [ऐ० २।२४] (उक्थिनम्) स्तुति वचन वाले को (प्रातः-जुषस्व) प्रातःकाल या सर्वप्रथम अवसर पर प्रेमपात्र बना—बनाता है।

हे परमात्मन्! यह हम जानते हैं कि जो हम मनुष्यों में धारणा वाला एकाग्र मन वाला ध्यानी प्राणायामाभ्यासी इन्द्रिय-संयमी स्तुति करने वाला होता है उसको प्रातःकाल या प्रथम अवसर पर तू प्रेमपात्र बनाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (इन्द्रियों की प्रशस्त उक्तियों वाला तथा मन की प्रशस्त उक्ति वाला)

३ १र २र३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
२ ३ १र २र ३ १ २
विश्वा यदजयः स्पृधः ॥८॥

(इन्द्र) हे परमात्मन्! तू (अपाम्) मेरे अन्दर अपनी व्यापन शक्तियों के "तद्यदब्रवीद् ब्रह्मआभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं किञ्चेति तस्मादापोऽभवन्" [गो० पू० १।२] (फेनेन) हिण्डोर—निरन्तर प्रवृद्ध वतन से (नमुचेः) न छोड़ने वाले—संसार में बाँधने वाले पाप को "पाप्मा वै नमुचिः" [शत० १२।७।३।४] (शिरः) राग को, बन्धन का प्रधान कारण राग है कहा भी है "राग एव बन्धनं नान्यद् बन्धनमस्ति" (उदवर्तयः) उद्वर्तित कर देता है—उखाड़ देता है—पृथक् कर देता है तथा (विश्वाः स्पृधः) सारी बाधक वृत्तियों को भी (यत् यतः अजयः) जिससे जीत लेता—विनष्ट कर देता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे परमात्मन् ! तू अपने उपासक के अन्दर अपनी व्यापन शक्तियों का ऐसा चक्र चलाता है जिससे संसार में बन्धन के कारण राग को उखाड़ फेंकता है और अन्य समस्त बाधक वृत्तियों को भी छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय देव वाला)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९॥

(प्रभूवसो-इन्द्र) संसार में प्रभू—अपनी स्वामिनी शक्तियों के बसाने वाले परमात्मन् ! (ते.) तेरे लिये (इमे सोमाः सुतासः) ये उपासनारस हमारे द्वारा निष्पादित हैं (च) और (ये सोत्वाः) जो उपासनारस निष्पादन किये जाने वाले हैं "कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः" [अष्टा० ३।४।१४] 'त्वन् प्रत्ययः' (तेषां मत्स्व) उनके प्रतीकार में—उनसे हम पर प्रसन्न हो ।

संसार में अपनी स्वामिनी शक्तियों को बसाने वाले परमात्मन् ! हमारे द्वारा जो उपासनारस निष्पन्न किए हैं या किये जाने वाले हैं उनके द्वारा तू हम पर प्रसन्न हो जिससे हम आगे-आगे बढ़ते हुए तेरे साथ समागम लाभ लेते रहें ॥ ९ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तुभ्यँ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥१०॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विभावसो-इन्द्र) विशेष दीप्ति को बसाने वाले परमात्मन् ! (तुभ्यम्) तेरे लिये (सोमाः सुतासः) उपासनारस निष्पन्न किए हैं (बर्हिः-स्तीर्णम्) तेरे विराजने के लिये हृदयसदन भी विस्तृत है (स्तोतृभ्यः-मृडय) स्तोताओं के लिये सुख पहुंचा दे।

विशेष दीप्तियों को बसाने फैलाने वाले परमात्मन् ! तेरे लिये उपासनारस निष्पन्न किये हैं और तेरे विराजने को हृदयसदन भी विशाल बनाया हुआ है तू आ विराजमान हो हम-स्तोताओं को अपने समागम से आनन्दित कर ॥ १० ॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप छुटकारा चाहने वाला)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
१ २ ३ १ २
मंँहिष्ठंँ सिञ्च इन्दुभिः ॥१॥

(आ) आ 'आगच्छत' उपसर्गाद् योग्यक्रियाऽध्याहारः' (वः) 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम-हम मिलकर सब (वाजयन्तः) अपने अमृत अन्न-भोग को चाहते हुए "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (शतक्रतुम्) बहुकर्मशक्तिवाले बहुप्रज्ञान वाले (मंहिष्ठम्) महान् से महान् (इन्द्रम्) परमात्मा को (इन्दुभिः) आर्द्र उपासनारसों से (सिञ्चे) "सिञ्चामहे"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सींचें—भर दें "वचनत्यव्ययः" (कूविं यथा) जैसे खुदे हुए खत्ती नामक शुष्क कूप को अन्न से भर देते हैं पुनः उसमें से अन्न प्राप्त करने के लिये "क्रिविर्दन्ती विकर्तनदन्ती" [नि० ६।३०] "कूविः कूपनाम" [निघं० २।२३] ऐसे अमृत अन्न पाने के लिये परमात्मा को उपासनारसों से भरते हैं। भरने में उपमा है।

आओ उपासकजनों तुम और हम अपने योग्य अमृत अन्न भोग को प्राप्त करना चाहते हुए असंख्य ज्ञान कर्म वाले उपकार करने वाले महान् से महान् परमात्मा को अपने स्नेहपूर्ण उपासनारसों से भर दें जैसे खत्ती को अन्नों से भरते हैं पुनः अवसर पर अपने अन्नों को पाने के लिये ॥ १ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने)

१ २ ३ १र २र ३ १ २
अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया।
३ २ ३ १ २
इषा सहस्रवाजया ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (अतः-चित्) इन्हीं हमारे आर्द्र उपासनारसों से हम पर कृपालु होकर (शतवाजया सहस्रवाजया) शतगुणित अमृतान्न भोग वाली सहस्रगुणित अमृतान्न भोग वाली—(इषा) अपनी गति-प्रवृत्ति क्रिया से (नः-उपायाहि) हमारे पास आ—प्राप्त हो।

परमात्मन् ! तू इन्हीं आर्द्र उपासनारसों से शतगुणित अमृत भोग वाली अपितु सहस्रगुणित भोग वाली अपनी प्रशस्त गति से हमारे पास आ—आता है तेरे प्रति हमारा उपासनारस निष्फल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जाता है किन्तु शतगुणित अपितु सहस्रगुणित फल देने वाला हो जाता है ॥ २ ॥

ऋषिः—त्रिशोकः (तीनों आध्यात्मिक ज्योतियों से सम्पन्न विद्वान् †)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम्
२ ३ १ २ २ २
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥३॥

(वृत्रहा) पाप अज्ञान का नाशक परमात्मा "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (जातः) अन्तरात्मा साक्षात् हुआ (बुन्दम्) "येन बुन्दन्ति निशामयन्ति शृण्वन्ति जनाः स हिरण्ययः सारङ्गवाद्यो वेदः" जिससे ज्ञान सुनते हैं वह हिरण्यय सारङ्गवाद्य वेद को "बुन्दिर् निशामने श्रवणे" [भ्वादि०] "साधु बुन्दो हिरण्ययः" [ऋ० ८।७७।११—निरु० ६।३३] (आ-ददे) समन्तरूप से देता है (मातरं 'मातरः' विमृच्छत्) मान करने वाले सत्कार करने वाले उपासकों को विशेष रूप में उस वेदज्ञान से अर्चित करता है सुभूषित "पृच्छति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।-१४] जिस वेदज्ञान में (के-उग्राः) 'के च' कुछ ज्ञानविषय उग्र-सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं (के ह शृण्विरे) कुछेक संसारप्रसिद्ध सुने जाने वाले हैं।

पाप अज्ञानान्धकार नाशक परमात्मा जब उपासकों—ऋषियों के अन्दर साक्षात् होता है वेदज्ञानरूप सारङ्गवाद्य को समन्तरूप से प्रदान कर प्रकाशित कर उन मान करने वाले उपासकों ऋषियों

† मन, आत्मा, परमात्मा "शुक्रं-शोचते ज्वलतिकर्मणः" [निघं० ८।१५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अर्चित करता सुपूज्य बनाता है जिस वेद में कुछ ज्ञान सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और कुछेक लोक में सुने जाने वाले साधारण हैं संसार में जीवन चलाने वाले हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतनशील गमनशील विद्या-विषय में गति रखने वाला)

३ १ ३ १ २ ३ १ २
बृबदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥४॥

(बृबदुक्थम्) बृहत्—महान् उक्थ—उपदेश वचन वेद जिसका है हमारे लिये अथवा बृवत्—वक्तव्य-स्तुतिवचन जिसके लिए हमारा है ऐसे "बृबदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्मा उक्थमिति वा" [निरु० ६।४] तथा (सृप्रकरस्नम्) सर्पणशील सर्वत्र व्याप्त बाहुएं निर्माण पालनरूप गुण हैं जिसके ऐसे "सृप्लृ गतौ" [भ्वादि० ततो रक् उणा० २।१३] "करस्नौ बाहूनाम" [निघं० २।४] (एवं साधः कृण्वन्तम्) कर्मानुरूप फलसिद्धि करने वाले इन्द्र—परमात्मा को (ऊतये) संसार में रक्षा के लिये, तथा (अवसे) अपवर्गप्राप्ति के लिये (हवामहे) अपने आत्मा में बुलाते हैं—उपासित करते हैं।

जो परमात्मा हमें महान् उपदेश वेदरूप देता है या जिसके लिए हमारा स्तुतिवचन है तथा कर्मफल सिद्ध करने वाला है उसको संसार में अपनी रक्षार्थ और अपवर्गप्राप्ति के लिए अपनी आत्मा में बुलाते हैं—उपासित करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (वाणी—स्तुति को चाहने वाला परमात्मा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३२ ३१ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५॥

(वरुणः) वरणीय शरणप्रद (मित्रः) स्नेही सदा साथ रहने वाला (अर्यमा) आनन्ददाता स्वामी (विद्वान्) हमारे सब कर्मों को जानता हुआ (देवैः सजोषाः) अपने दिव्यगुणों के साथ समानरूप से सेवित होने वाला (नः) हमें (ऋजुनीती) सरल नयन क्रिया से (नयति) ले जाता है।

परमात्मा हमारा सच्चा नेता है जो हमारा वरणीय शरणदाता स्नेही साथ आनन्ददाता स्वामी है यह अपने समस्त दिव्य गुणों के साथ युक्त हुआ हमारे अन्तर्भावों को जानता हुआ सरल नयन क्रिया से ले जाता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—ब्रह्मातिथिः (ब्रह्म—परमात्मा में निरन्तर गति रखने वाला उपासक)

३२ ३२३ २ ३ २ ३ २ ३१ २
दूरादिहेव यत् सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
२ ३ २ ३ १२
विभानुं विश्वथातनत् ॥६॥

(अरुणप्सुः) आरोचमानरूप जिसका है ऐसा इन्द्र—परमात्मा "प्सुः-रूपनाम" [निघं० ३।७] "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णम्" [यजु० ३१।१८] (दूरात्) दृष्टिपथ से दूर होते हुए (इह-एव) यहीं समीप सा होकर हृदय में या अन्तरात्मा में होकर (यत्) यदा—जब (सतः) सत्पुरुषों—उपासकों को (अशिश्वितत्) रञ्जित कर देता है "श्विता वर्णे" [भ्वादि०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब (विश्वथा) सब प्रकार से (भानुम्) ज्ञानप्रकाश को (वि-अतनत्) विशेष रूप से फैलाता—बढ़ाता है।

सूर्यसमान आरोचमानरूप वाला परमात्मा दृष्टि से दूर होकर भी समीप सा हृदय में अन्तरात्मा में जब सत्पुरुषों उपासकों को रञ्जित कर देता है तब सब प्रकार ज्ञानप्रकाश को विशेषरूप से फैला देता है—बढ़ा देता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा (सबका मित्र या प्रज्वलित ध्यानाग्नि वाला)

१ २ ३ १र २र
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजाᳪंसि सुक्रतू ॥७॥

(सुक्रतू-मित्रावरुणा) शोभन प्रज्ञा कर्म वाले मित्र—स्नेही सखारूप और वरुण—वरणीय शरणदआदि रूप परमात्मा (नः) हमारी इन्द्रियों की गतिविधि को (घृतैः) ज्ञान प्रदीपन प्रवाहों से (आ-उक्षतम्) सींच दो, तथा (मध्वा रजांसि) मधुर प्रवाहों से रञ्जनात्मक मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार स्थानों को सींच दो।

परमात्मा शोभन ज्ञान कर्मवान् स्नेहीसखा रूप से इन्द्रियों को दीपन प्रवाहों से और वरुण—वरणीय शरणदानरूप मधुर प्रवाहों से मन बुद्धि चित्त अहङ्कार स्थानों को सींच देता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (प्रकृष्ट मेधावी)

१ ३ २ ३२३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।
३ १ २ ३ १र २र
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञेषु) अध्यात्मयज्ञों में (ये-उ) वे निश्चय (गिरः) वाणी--स्तुति के (सूनवः) प्रकट करने वाले—उच्चारण करने वाले उपासक स्तोता जन (काष्ठाः-उद्-अत्नत) दिशाओं में "काष्ठादिक्" [निघं० १।६] अपनी-अपनी दिशाओं का विस्तार करते हैं (वाश्राः-अभिज्ञु यातवे) वे स्तोता स्तवन करते हुए अल्प-वयस्क बालक जैसे घुटने के बल चलते हैं ऐसे परमात्मा की ओर जाने को समर्पण करते हैं।

अध्यात्मयज्ञों में वाणी स्तुति को प्रकट करने वाले स्तोता अपनी दिशा—पद्धति या भूमि का विस्तार करते हैं पुनः स्तवन करते हुए अल्पायु वाले बालक जैसे चलने को घुटने के बल चलते हैं ऐसे परमात्मा के प्रति जाने के लिये अपना समर्पण करते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में गमन प्रवेश—करने वाला)

३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
१ २ २
समूढमस्य पांसुले ॥९॥

(विष्णुः) व्यापक एवं तीनों लोकों में और तीनों से बाहर भी इन्द्र—परमात्मा "विष्णुर्विषितो भवति" "विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा" [नि० १२।१९] (इदं विचक्रमे) इस समस्त जगत् को स्वाधीन किए हुए हैं (त्रेधा-पदं-निदधे) तीन—तीनों स्थानों—द्युलोक में, अन्तरिक्ष में और पृथिवी लोक में अपना शक्तिस्वरूप रखता है (अस्य-पांसुले 'रे' समूढम्) इसका स्वरूप इसके एक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी न होने से धूल राशि में पड़े पद की भांति पद दृष्टिपथ नहीं होता, उसे तो योगी उपासक जन ही उस अन्तर्निहित स्वरूप को अपने आत्मा में देखता है।

व्यापक ऐश्वर्यवान् परमात्मा इस सारे जगत् को अपनी व्याप्ति से स्वाधीन किए हुए है और द्युलोक अन्तरिक्ष पृथिवी लोक—तीनों लोकों में इसका स्वरूप निहित है वह धूलि में रखे पद की भांति दृष्टि पथ नहीं होता, परन्तु उपासक जन अपनी अन्तरात्मा में निहित उसके पद-स्वरूप का साक्षात् करता है॥९॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से गमनशील प्रवेशशील)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।
३ २ ३ २ ३ १ २
अस्य रातौ सुतं पिब॥१॥

(मन्युषाविणम्-अतीहि) 'मन्युं क्रोधं सुनोति यः स मन्युषावी तम्' मन्यु-क्रोध स्रवित करने वाले को तिरस्कृत कर (सुषुवांसम्-उपेरय) उपासनारसप्रस्रावी को ऊपर प्रेरित—उन्नत कर अपने समीप ले (अस्य रातौ) इस मुक्त सोमस्रावी के दान में—आत्मसमर्पण में (सुतं पिब) निष्पादित उपासनारस को स्वीकार कर।

परमात्मन्! तू क्रोधस्रावी क्रोध करने वाले जन को तिरस्कृत करता है किन्तु उपासनारस स्रावी को तू ऊपर उठाता अपने पास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेता है यह तेरा स्वभाव है अतः मुझ इस उपासनारससम्रावी के आत्मसमर्पण प्रसङ्ग में निष्पन्न उपासनारस को तू स्वीकार करता है ॥ १ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है उपासना-परायण जन)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
१र २र ३ १ २
तदिध्यस्य वर्धनम् ॥२॥

(प्रचेतसे महे देवाय) प्रकृष्ट चेताः उपकार प्रज्ञान वाले "चेतः प्रज्ञाननाम" [निघं० ३।९] महान् इन्द्र—परमात्मदेव के लिये (कत्-उ वचः-शस्यते) कोई भी वचन स्तुतिरूप में कहता—देता है "शंसु स्तुतौ" [भ्वादि०] 'कर्तरि कर्मप्रत्ययो यक् छान्दसः' (अस्य) इस स्तुतिवचन प्रदाता का (तत्-हि-वर्धनम्) वह निश्चय वृद्धिनिमित्त हो जाता है ।

उपकारक ज्ञान वाले महान् परमात्मा के लिये जो भी वचन स्तुति निमित्त अर्पित करता है उसका वह निश्चय समृद्धिकारक बनता है ॥ २ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः प्रियमेधा च (मेधा से गमन करने वाला तथा प्रिय है मेधा सङ्गमनीय परमात्मा जिसको ऐसा उपासक)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
१ २ ३ २ ३ १ २
न गायत्रं गीयमानम् ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अगोः) "गौः स्तोता" [निघं० ३।१६] 'अगोः-अस्तोता तद्विरुद्धो नास्तिकः' नास्तिक जन के (न-उक्थम्) न प्रार्थनावचन को (च) और (न शस्यमानम्) न स्तुतिवचन को (न गीयमानं गायत्रम्) न गाने योग्य उपासना को (रयिः) 'रयिमान्' ऐश्वर्यवान् इन्द्र—परमात्मा "मतुब्लोपश्छान्दसः" (आचिकेत) मानता है—स्वीकार करता है।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा अपने विरोधी नास्तिक की दम्भ या प्रदर्शन या भय या लोभ से—की प्रार्थना, स्तुति, उपासना को कभी स्वीकार नहीं करता, वह परमात्मा के ऐश्वर्यस्वरूप का लाभ नहीं उठा सकता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र तथा सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)

१ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
१ २ ३२ ३ १ २
हरिवांत्सुतानाꣳसखा ॥४॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (उक्थेभिः) प्रार्थना वचनों से (मन्दिष्ठः) हमें अतिशय से आनन्द देने वाला है या अत्यन्त अर्चनीय है "कर्मणि कर्तृ प्रत्ययश्छान्दसः" (च) और (वाजानाम्) समस्त वाजों—अन्न बल ज्ञानों का (वाजपतिः) अन्न बल ज्ञान स्वामी है (सुतानां सखा) "सुतवताम्-अकारो मत्वर्धीयः" उपासनारस वाले उपासकों का मित्र (हरिवान्) दुःखों के हरण—अपहरण बल सुखों के हरण—आहरण धर्म से युक्त है।

परमात्मा प्रार्थनावचनों से अत्यन्त आनन्दप्रद या अत्यन्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्चनीय, अन्न बल ज्ञानों का स्वामी, उपासनारस वाले उपासकों का मित्र दुःखापहरण सुखाहरण धर्म वाला है ॥ ४ ॥

ऋषिः— मेधातिथि प्रियमेधावृषी (मेधा से अतन गमनशील और प्रिय है मेधा जिसको ऐसे उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।
३ १ २ ३ १ २
महाँ इव युवजानिः ॥५॥

(नः) हमारे (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस के प्रति— उसे स्वीकार करने के लिये (वाजेभिः) अपने अमृत सुख भोगों के साथ (उपायाहिः) समीप आ (मा हृणीयथाः) मत क्रोध करना 'हृणीयते क्रुध्यतिकर्मा' [निघं० २।१३] (महान् युवजानि-इव) महान् युवति पत्नी वाले के समान।

हे परमात्मन्! हमारे निष्पादित उपासनारस को प्राप्त हो, स्वीकार कर, अपने अमृत भोगों के साथ, तू हम पर कभी क्रोध नहीं करना जैसे युवति पत्नी वाला अपनी सुखभोग युवति पत्नी पर क्रोध नहीं करता हम तेरे प्रति सदा उपासनारस प्रदान में समर्थ हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—कौत्सो दुर्मित्रः (अतिशय से स्तोमों स्तुतियों को करने वाला—दुष्ट का भी मित्र— सर्व हितैषी)

३ १ २ ३ १२ २र ३ १र २र ३ १ ३ २
कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः ।
३ २ ३२ ३ १ ३
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वसो) हे सबमें बसने वाले परमात्मन् ! (स्तोत्रं हर्यते) मेरे स्तोत्र-स्तवन—स्तुतिवचन को चाहते हुए तुझ से प्रार्थना करता हूं (श्मशा) यह आनन्दरस बहाने वाली धारा "श्मशा शु अ अश्नुत इतिवाश्माश्नुन इतिवा" [निरु० ५।१२] (कदा-वाः-आ-अवरुधत्) कब तक आनन्दरस को बन्द रखेगी (दीर्घं सुतं वाताप्याय) कभी से—बहुत काल से निष्पादित उपासनारस मुझ स्तोता की ओर लाने के लिए चालू होगी।

सबमें बसने वाले परमात्मन् ! तू स्तुतिवचन को चाहने वाला है, तेरे आनन्दरस को रोकने वाली धारा कब तक रुकी रहेगी ? कभी तो चालू होगी ही क्योंकि दीर्घकाल से यह निष्पन्न उपासनारस तेरे प्रति समर्पण किया जा रहा है कभी तो मुझे अपना आनन्दरस प्रवाहित करने को प्रेरित करेगा ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतनशील अध्यात्म में प्रवेशशील विद्वान्)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँ रनु ।
२ ३ २ ३ १र २र
तवेदꣳ सख्यमस्तृतम् ॥७॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ब्राह्मणात्-राधसः) आराधना करने वाले ब्रह्मचिन्तक उपासक के पास से (ऋतून्-अनु) योगाङ्गों के अनुसार "ऋतवः अष्टावङ्गानि" [तै० ७।५।२५।१] या उद्गीथ—प्रणवों के साथ "ऋतवः-उद्गीथः" [ष० ३।१] (सोमं पिब) उपासनारस को पान कर—स्वीकार कर (तव-इदं सख्यम्-अस्तृतम्) तेरा यह मित्रभाव अविनश्वर—स्थिर है। "स्तृणाति वधकर्मा" [निघं० २।१९]।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! तू आराधना करने वाले ब्राह्मण के पास से अष्टांग योग के अनुसार ओ३म् उद्‌गीथों के साथ उपासनारस को पान करता है यह तेरा मित्रभाव सदा स्थिर है रहा करे ॥ ७ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन—गमन करने वाला जन)

३ १ २ ३ १ २ २ १ २
वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
१ २
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥८॥

(गिर्वणः-इन्द्र) हे स्तुतियों से वननीय—उपासनीय परमात्मन् ! (वयं घ) हम तो (ते-अपि) तेरे ही "अपि निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (स्तोतारः स्मसि) स्तोता—उपासक हैं (सोमपाः) हे हमारे उपासनारस के पान—स्वीकार करने वाले (त्वं नः-जिन्व) तू उपासनारस को स्वीकार करके हमें अपने अमृत भोग से तृप्त कर ।

हे स्तुतियों से वननीय सेवनीय परमात्मन् ! हम तो तेरे ही उपासक हैं—अनन्य उपासक हैं तू हमारे उपासनारस को स्वीकार करके हमें तृप्त कर ॥ ८ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रो गाथिनोभीपाद उदलो वा (सर्वमित्र वेदाचार्य या सब भीतियों—भयों को पाद के नीचे करके ऊपर गतिशील दृढ़ निश्चयी)

१ २ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २
एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
१ २ ३ १ २
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सत्राजित्-उग्र) हे सत्यस्वरूप से जीतने वाले "सत्रा सत्यनाम" [निघं० ३।१०] या सबको वश में करने वाले "सर्वं वै सत्रम्" [श० ४।६।१।२५] तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (कासु चित् पृक्षु) किन्हीं अभीष्ट संयमन क्रियाओं में उन्हें साधने के लिये "पृच् संयमने" [चुरादि०] (नः) हमारे (तनूषु) देहों में (पौंस्यम्-नृम्णम्-आ धेहि) आत्मीय बल—आत्मबल का आधान कर "नृम्णं बलनाम [निघं० २।९]।

सत्यस्वरूप सबको जीतने वाले या सब जड जङ्गम को स्ववश करने वाले तेजस्वी ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! किन्हीं संयम क्रियाओं के—निमित्त हमारी देहों में आत्मबल का आधान कर जिससे अपने जीवन को संसार सम्पर्क से ऊंचे उठा तेरी ओर चलें ॥ ९ ॥

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया है अध्यात्मकक्ष जिसने)

३ १र २र ३ २ १र २र ३ २ ३ २
एवाह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ॥१॥

(एवा हि-वीरयुः-असि) इन्द्र—ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू हाँ अवश्य हमारे वीरों—प्राणों को चाहने वाला है "प्राणा वै वीराः" [श० ९।४।१०।२०] 'छन्दसि परेच्छायामपि' (एव) हाँ तू (शूरः) सर्वत्र गतिशील "शूरः शवते-र्गतिकर्मणः" [निरु० ४।२३] (उत) तथा (स्थिरः) एक रस (एव) हाँ (ते मनः-राध्यम्) तेरा मन—मनन ज्ञान प्रशंसनीय है या तेरी आराधना करने वाला मेरा मन है "कृत्यल्युटो बहुलम्" 'कर्तरि कर्म प्रत्ययः' ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! तू निश्चय हमारे प्राणों को चाहने वाला दीर्घ जीवन देने वाला है तू निश्चय जड जङ्गम में गति देने वाला स्वयं सर्वत्र गतिशील एक रस है हाँ तेरा मन—मननीय ज्ञान प्रशंसनीय है या हमारा मन तेरी आराधना करने का साधन है ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐन्द्र पर्व या काण्ड (ख)

अथ तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती

३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥

(शूर) हे सर्वगत "शूरः शवतेर्गतिकर्मणः" [निरु० ४।१३] (इन्द्र) परमात्मन् ! (अस्य जगतः-ईशानम्) इस जङ्गम के स्वामी (तस्थुषः-ईशानम्) स्थावर के स्वामी—(स्वर्दृशं-त्वा-अभि) अमृत सुख के दिखाने वाले तुझे लक्ष्य कर "स्वरिति सामभ्योऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोकोऽभवत्" [ष० १।५]" यदा वै स्वर्गत्याथामृतो भवति" [जैमि० १।३३२] "स्वर्देवा आगामामृता अभूम" [मै० १।११।३] (नोनुमः) पुनः-पुनः नमते हैं अपने को समर्पित करते हैं (अदुग्धाः-धेनवः-इव) जैसे विना दुही हुई—दूध भरी गव्वें स्वामी के प्रति दूध देने को नमी जाती है ऐसे हम उपासक अपने उपासनारस को तुझ अपने स्वामी के प्रति अर्पित करने को नमे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं अथवा जैसे विना दुही हुई गव्वों के दूध दूहने के लिए दूध के इच्छुक जन नमन हो जाते हैं ऐसे तेरे अमृत सुख के इच्छुक हम आपकी ओर नमते जाते हैं।

हे सर्वगत परमात्मन् ! तुझ स्थावर जङ्गम के स्वामी तथा स्वः-मोक्ष के अमृतसुख दिखाने भुगाने वाले स्वामी की ओर दोहने योग्य गव्वें जैसे स्वामी की ओर नमी जाती हैं ऐसे हम उपासनारस के समर्पणार्थ पुनः पुनः नमते हैं या जैसे दूध भरी गव्वों के प्रति दूध प्राप्त करने को जन गव्वों के प्रति नमते जाते हैं ऐसे तुझ अमृत—सुखपूर्ण के प्रति अमृत सुख पाने के लिए हम उपासक झुके जाते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के अमृत भोग को धारण करने में समर्थ उपासक)

१ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (कारवः) हम तेरे स्तोता—वाणी से स्तुति करने वाले होते हुए "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] (वाजस्य सातौ) अमृत अन्न-मोक्ष के अमृत भोग की सम्भक्ति—प्राप्ति के निमित्त "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (त्वाम्-इत्-हि) केवल तुझे ही (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं—स्मरण करते हैं—उपासते हैं (नरः) हम नयनकर्ता—पथप्रदर्शक देवश्रेणि में होते हुए—मन से प्रार्थना ध्यान चिन्तन करते हुए भी "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (वृत्रेषु) पाप प्रसंङ्गों—पाप भावनाओं से बचे रहने के निमित्त "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वां सत्पतिम्) तुझ सत्पुरुषों के रक्षक को स्मरण करते हैं (अर्वंतः) तथा "अर्वन्तः प्रथमार्थे द्वितीया छान्दसी" हम आत्मा से उपासना—इसके सामीप्य को प्राप्त करने वाले परम पुरुषार्थ करने वाले उत्तमाधिकारी जीवन्मुक्त होते हुए भी "पुमांसोऽर्वन्तः" [श० ३।३।४।७] (काष्ठासु) संसार की या बन्धन की सीमाओं को पार करने में—प्रकृति के अन्तिम स्तरों को पार करने में "सुवर्गो वै लोकः काष्ठाः" [तै० १।३।६।५] (त्वाम्) तुझे स्मरण करते हैं।

परमात्मन्! तेरे अमृत भोग की प्राप्ति के निमित्त हम वाणी से तेरी स्तुति करते हुए या मन से प्रार्थना ध्यान करते हुए और ऊंचे उठे हुए देवश्रेणि में होते हुए या और ऊँचे उठे हुए आत्मभाव से उपासना करते हुए संसार की सुखमय बन्धन सीमाओं को पार करने के लिये तुझ श्रेष्ठ जनों के रक्षक का आमन्त्रण—स्मरण करते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—बालखिल्या ऋषयः (बालमात्र से पृथक् न होने वाले प्राणों के ज्ञानी अभ्यासी विद्वान् †)

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ ३ ॥

(वः) 'यूयम्' विभक्तिव्यत्ययः हे उपासको! तुम (यथाविदे) यथावत् ज्ञान के लिये "भावे क्विप् छान्दसः" (सुराधसम्-इन्द्रम्) अच्छे कल्याणकारी धन—मोक्षैश्वर्य वाले परमात्मा को (अभि-प्राचे) निरन्तर प्रकृष्ट रूप से अर्चित करो 'अर्चत' वचनव्यत्ययः

† "बालमात्राद् हेमे प्राणाः—असम्भिन्नाः" [श० ८।३।४।१]—तदधीते तद्वेद तद्धितप्रत्ययः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः पुरूवसुः-मघवा) जो बहुत प्रकार से सबका बसाने वाला या बहुत धन वाला—धनदाता है (जरितृभ्यः) अपने स्तोताओं के लिये (सहस्रेणः-इव) सहस्र प्रकार से 'इव पदपूरणः' (शिक्षति) देता है "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३।२०]।

परमात्मा को यथार्थ जानने के लिये उस उत्तम अमृत भोगरूप धन वाले की भली प्रकार अर्चना करो जो बहुत धन वाला है और स्तोताओं को सहस्र प्रकार से दान कर रहा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—नोधाः (नवन-स्तवन का धारक उपासक †)

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥

(वः) हे उपासको ! तुम्हारे और हमारे (ऋतीषहम्) निन्दनीय भावनाओं को अभिभूत करने वाले (वसोः—अन्धसः) हमारे अन्दर वसे उपासनारस से (मन्दानम्) हम पर हर्षित होने वाले (दस्मम्) दर्शनीय "दस दर्शने" [चुरा०] (तम्-इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (गीर्भिः) वाणियों—स्तुतियों से (अभि नवामहे) तुम हम सब प्रशंसित करते हैं—उसका रुचि से स्मरण-चिन्तन करते हैं (स्वसरेषु धेनवः-वत्सं न) गोसदनों में आ जाने पर दूध देने वाली गव्वें बछड़े का जैसे रुचि से स्मरण करती हैं "स्वसराणि गृहाणि" [निघं० ३।४]।

परमात्मा हम सब उपासकों से निन्दनीय भावनाओं को दूर करने वाला है और दर्शनीय है हमारे अन्दर बसे हुए उपासना

† "नोधा नवनं दधाति" [नि० ४।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस से जब हम उसे अर्पित करते हैं तो वह हम पर हर्षित होते हैं तथा हमें भी हर्ष प्रदान करते हैं उस ऐसे परमात्मा को अपनी स्तुति वाणियों से प्रशंसित करते हैं—स्मरण करते हैं—जैसे दूध देने वाली गऊवें अपने बछड़े को गोसदनों में रुचि से स्मरण करती हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—कलिः प्रगाथः (वक्ता प्रकृष्ट वाणी वाला)

१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्र सबाध ऊतये ।
३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ १ २ ३ १ २
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५॥

(वः) तुम और हम (सबाधः) 'बाधते या सा बाध क्विबन्तः प्रयोगः, तया सह-सबाधः-बहुवचने' जब बाधने वाली वासना से पीडित हुए हो तो (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (तरोभिः) समस्त बलों से युक्त "तरः-बलनाम" [निघं० २।९] (विदद्वसुम्) प्राप्तामृत धन वाले (भरं न कारिणम्) भरण पोषण करने वाले उपकारी—उपकारकर्ता—परोपकारी की भांति उस परमात्मा को (सुतसोमे-अध्वरे) निष्पादित उपासनारस वाले अध्यात्म यज्ञ के अवसर पर (बृहद्गायन्तः-हुवे) बहुत गान—हार्दिक भावना से गुणगान करते हुए अपने अन्दर आमन्त्रित करें 'हुवे-हुवेम' "वचनव्यत्ययः" ।

उपासक जब कभी वासना से बाधित हो तो अपनी रक्षा के लिये समस्त बलों से युक्त अमृत धन के स्वामी भरण पोषणकर्ता उपकारकारी जन की भांति परमात्मा को निष्पादित उपासनारस वाले अध्यात्म यज्ञ के अवसर पर अपने अन्दर आमन्त्रित करें ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३२
तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ ३
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥६॥

(युजा पुरन्ध्या) योगानुसार स्तुति के द्वारा "पुरन्ध्या-स्तुत्या" [निरु० १२।३०] (तरणिः-इत्) शीघ्र ही तीव्र संवेगी योगी "तरणि क्षिप्रनाम" [निघं० २।१५] (वाजं सिषासति) अमृतभोग को "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] सेवन करता है अतः (आ) 'आगच्छत' आओ (वः) तुम और हम (पुरुहूतम्-इन्द्रम्) बहुत प्रकार से या बहुत वार आमन्त्रणीय परमात्मा को (गिरा नमे) स्तुति से अपनी ओर नमावें 'नमामहे' वचनव्यत्ययः' (सुद्रुवम्-नेमि-तष्टा-इव) जैसे शोभन द्रु—काष्ठ वाले चक्र वलय—पहिये के घेरे को "द्रुपदे दारुपाद्वोः" [निघं० ४।१५] "वनस्पतयो वै द्रु" [तै० १।३।९।१] बढई अपनी ओर नमाता है।

योगवाली बुद्धि के द्वारा शीघ्र ही तीव्रसंवेगी योगी परमात्मा के अमृतभोग को सेवन करता है, अतः आओ तुम हम बहुत प्रकार से या बहुत वार आमन्त्रित करने योग्य परमात्मा को स्तुतिद्वारा अपनी ओर नमावें—आकर्षित करें जैसे बढई शोभन काष्ठ वाली चक्रनेमि—पहिये के घेरे को नमाता है—झुकाता है ॥६॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से गमन प्रवेश करने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥७॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (सुतस्य) निष्पादित—(गोमतः) स्तुति वाणी से युक्त—(रसिनः) मधुर उपासनाप्रवाह को द्वितीयार्थ षष्ठी "रसो वै मधु" [श० ६।४।३।२] (पिब) पान कर—स्वीकार कर (नः-मत्स्व) हमें तृप्त कर "मद तृप्तियोगे" [चुरादि०] (आपिः) हमें प्राप्त होने वाला होकर (बोधि) बोध दे (ते धियः) तेरी बोधधारायें "धीः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] (सधमाद्ये) साथ हर्ष सम्पादन योग्य अध्यात्म यज्ञ में (वृधे-अस्मान्-अवन्तु) वृद्धि—उन्नति के लिये हमें रक्षित करें।

परमात्मन् ! स्तुतियों से युक्त निष्पादित मधुर उपासनाप्रवाह का पान कर—स्वीकार कर, पुनः हमें तृप्त कर तू अध्यात्म यज्ञ में हमें प्राप्त हुआ बोध दे तेरी बोधधारायें उन्नति के लिए हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥

ऋषिः—भर्गः (आत्मप्रतापवान् †)

२उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
त्वꣳ ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८॥

(मघवन्-इन्द्र) हे प्रशस्त अध्यात्मैश्वर्यवान् परमात्मन् ! तू (चेरवे) तेरे अध्यात्मधन के चयन करने वाले मुझ उपासक के लिये "चिञ् चयने" [स्वा०] ततः "मीपीभ्यां रुः" [उणा० ४।१०१] "बाहुलकाद् रुः प्रत्ययः" (भगं विदा) अध्यात्म धन को प्राप्त करा, तथा (वसुत्तये) प्राणों की दान क्रिया प्राणायाम क्रिया के लिये "प्राणा वै वसवः" [तै० ३।२।३।३] (गविष्टये)

† "भृगुः-भृज्यमानो न देहे" [निरु० ३।१७]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों की दृष्टि संयमरूप समर्पण यजन क्रिया के लिये "इन्द्रियं वै वीर्यं गावः" [श० ५।४।३।१] (उद्वावृषस्व) मुझे अधिक उल्लसित कर (अश्वम्-'अश्वस्य' इष्टये-उद्-उद्वावृषस्व) सर्व विषयव्यापी मन की "षष्ठ्यर्थे द्वितीया" इष्टि—निरोध क्रिया के लिये अधिक उल्लसित कर।

हे प्रशस्त धन वाले परमात्मन् ! तू अध्यात्म धन के चयन करने वाले मुझ उपासक के लिये अध्यात्म धन को प्राप्त करा तथा प्राणों की दान क्रिया के लिये—प्राणायाम में तेरा स्मरण हो इसलिये, इन्द्रियों की संयमरूप यजन क्रिया के लिये तथा सर्वविषयव्यापी मन की निरोध क्रिया के लिये मुझे अधिकाधिक उल्लसित कर ॥ ८ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

देवता—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धा मरुतः' (इन्द्र के मरुत—पाप को मारने वाले गुण †)

१ २र ३२ ३ १ २र ३ १ २
न हि वश्चरमं च न वासिष्ठः परिमꣳसते।
३ १२३२ ३१२ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥९॥

(वसिष्ठः) परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक आत्मा (वः) तुम्हारे में से (चरमं च न) चरित—ज्ञात हुए गुण नाम को भी (न हि परिमंसते) नहीं त्याग कर मानता है "परिपूर्वक मनधातोर्लडर्थे लेट्" (अद्य) आज—अब (सुते) निष्पन्न उपासनारस को (सचा) मिलकर (विश्वे) सब (अस्माकं

† "इन्द्रस्य वै मरुतः" [कौ० ५।४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामिनः) हम उपासकों के कल्याण की कामना करने वाले (मरुतः) इन्द्र—ऐश्वर्यवान्—परमात्मा के, वासनामारक गुण नाम देव "इन्द्रो वै मरुतः" [गो० २।१।२३] "इन्द्रस्य वै मरुतः" [कौ० ५।४] (पिबन्तु) पान करें—स्वीकार करें।

परमात्मा में अत्यन्त बसा हुआ उपासक इन्द्र—परमात्मा के वासनामारक गुण नामों में से किसी ज्ञान गुण का भी परित्याग नहीं करता है अतः आज अवसर पर कल्याण चाहने वाले निष्पन्न उपासनारस को वे सब वासनामारक गुणनाम देव पान करें—स्वीकार करें ॥ ९॥

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः (मेधावी का शिष्य उत्तम स्तुति वाणी वाला)

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्विशꣳसत सखायो मा रिषण्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳसचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत ॥१०॥

(सखायः) हे समान वृत्ति वाले उपासको ! (अन्यत्) परमात्मा से भिन्न को (मा विशंसत) मत विशेष प्रशंसा करो (मा रिषण्यत) मत अपना हिंसन चाहो परमात्मा से भिन्न की प्रशंसा में आत्महिंसा है—"आत्मनो रिषणमिच्छत क्यजन्तः प्रयोगः" (वृषणम्-इन्द्रम्-इत् स्तोत) सुखवर्षक परमात्मा की स्तुति करो (सुते) निष्पन्न उपासनारस पर (सचा) साथ (च) और (मुहुः-उक्था) पुनः पुनः स्तुति वचनों का—से (शंसत) प्रशंसा करो।

हे उपासक मित्रो ! परमात्मा से भिन्न की उसके स्थान पर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति न करो, उससे भिन्न की उपासना से अपनी हिंसा है—आत्मवञ्चना है उससे बचो सुखवर्षक परमात्मा की ही स्तुति करो निष्पन्न उपासनारसप्रसङ्ग में पुनः पुनः स्तुति वचन उच्चारित करो ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—आङ्गिरसः पुरुहन्मा (अग्नि—परमात्माग्नि की विद्या में कुशल बहुत प्रकार से दोषों का हन्ता)

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
२ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

(तं कर्मणा न किः-नशत्) उसे कर्म से कोई व्याप्त—प्राप्त—दबा नहीं सकता "नशत् व्याप्तिकर्मा" [निघं० २।१८] (यज्ञैः) अध्यात्म यज्ञों से (विश्वगूर्तम्) सर्वस्तुत्य—(ऋभ्वसम्) व्यापक महान्—(अधृष्टम्) अधर्षणीय (ओजसा धृष्णुम्) बल से सबके धर्षण करने वाले (सदावृधम्) सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं न) परमात्मा को सम्प्रति "न सम्प्रत्यर्थे" (यः-चकार) जो अपना कर लेता है।

जो अपने जीवन में निरन्तर अध्यात्मयज्ञों के द्वारा विश्ववन्दनीय महान् अधर्षणीय बल वाले धर्षणशील सदा वर्धक परमात्मा को सम्प्रति अपना कर लेता है—अपना बना लेता है उसे कर्म से कोई व्याप्त नहीं कर सकता पा नहीं सकता दबा नहीं सकता ॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (मेधा से अतन—गमन प्रवेशशील या पवित्र परमात्मा में अतन—गमन प्रवेशशील)

२ ३१ २ ३ १ २ ३१ ३१ २ ३ १ २
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
१ २ ३ २ ३१ २ ३२३१ २ ३ १२३२
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विह्रुतं पुनः ॥२॥

(यः—पुरूवसुः-मघवा) जो सबमें बसने वाला—सर्वव्यापक या सबको अपने अन्दर वसाने वाला रक्षक "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १।५२।४] इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा (जत्रुभ्यः) ग्रीवा जोड़ों से प्रधान अङ्ग या ऊपर के अङ्ग को (आतृदः पुरा) आतर्दन—हिंसक—टूटने से—अलग होने से पूर्व "तृदिर् हिंसा-याम्" [रुधादि०] (अभिश्रिषः-ऋतेचित्) अभिश्लेष—चिपकाने या जोड़ने वाले साधन के विना भी—विना ही (सन्धिं सन्धाता) सन्धान योग्य—जोडने योग्य को जोड़ने की शक्ति रखने वाला है (पुनः) अपितु (विह्रुतं 'विद्रुतम्') प्रधान या ऊपर के अङ्ग से अन्य अलग अलग जो मांस आदि अङ्ग हैं उसे भी उसी भांति उनके हिंसित होने से पूर्व (निष्कर्ता) प्रत्येक का निष्करण नियोजन—यथास्थान पर निष्ठापन करने वाला है वह उपास्य है ।

मानवदेह को लक्ष्य बनाकर परमात्मा का मनन प्रकार दर्शाया है कि संसार में शल्यचिकित्सक तो ग्रीवा आदि अङ्ग जब अपने जोड़ों से कट जाते अलग हो जाते हैं तभी उसे जोड़ते हैं और जोड़ने के साधन से जोड़ते हैं परन्तु परमात्मा जो सबमें वसा हुआ सबको अपने में वसाने वाला है वह तो ग्रीवादि प्रधान या ऊपर के अङ्ग को अपने जोड़ वाले अङ्गों से अलग होने से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व ही जोड़ने वाला है और विना जोड़ने वाले साधन के एक सन्धि, जोड़ को दूसरे जोड़ से सन्धान—जोड़ने की शक्ति रखने वाला एवं एक हड्डी को दूसरी हड्डी से जोड़ता है फिर इसी प्रकार जो अवयव पृथक् होने वाले मांस आदि हैं उसे भी उसके कटने फटने से पूर्व विना जोड़ने वाले साधन के नियोजित करने यथा-स्थान निष्ठापित करने में समर्थ है उस ऐसी शरीरकृति को देख विचार—मनन कर उस परम शल्य चिकित्सक या परम शिल्पी की उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥३॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (हिरण्यये रथे) अमृतरूप रमणीय महान् मोक्षस्वरूप में "अमृतं वै हिरण्यम्" [तै० ६।२।७।२] "तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति रथस्य हैतद्रूपम्" [जै० २।१२] (युक्ताः) युक्त (ब्रह्मयुजः) तुझ परमात्मा से योग मेल कराने वाले (केशिनः) ज्ञान ज्योति वाले "केशः काशनाद्वा प्रकाशनद्वा" [निरु० १२।२६] (हरयः) तुझे लाने वाले हमें ले जाने वाले गुणस्वरूप (शतं सहस्रम्) सौ एवं सहस्र बहुत—बहुत असंख्य (त्वा) तुझे (सोमपीतये) हमारे उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये (आ-वहन्तु) लावें शीघ्र लावें ।

परमात्मा के अमृत मोक्षधाम में वर्तमान उसके ज्योतिर्मय गुण स्वरूप सैकड़ों सहस्रों हैं जो हमें ब्रह्म से योग कराने वाले हैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे परमात्मा को हम तक लाने वाले और हमें परमात्मा तक ले जाने वाले हैं वे हमारे उपासनारस को पान कराने स्वीकार कराने के लिये हमारे तक पहुँचावें ॥ ३ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबसे स्नेह करने वाला सबका मित्र)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २र ३ १ २ ३ १ २
मा त्वा केचिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (मयूररोमभिः-मन्द्रैः-हरिभिः) मोरपक्षी के रोमसदृश कमनीय अपनी रश्मियों—ज्ञान ज्योतियों के द्वारा जो तेरे स्वरूप को प्रदर्शित करती हुई तुझे हमारे तक लाने वाली और हमें तेरे तक पहुंचाने वाली हैं उनके द्वारा (आयाहि) समन्तरूप से हमें प्राप्त हो (केचित्) कोई अन्य (त्वा मा नियेमुः-इत्) तुझे न निरुद्ध करें—रोकें (पाशिनः-न) पाशवाले व्याध जनों की भांति (धन्व-इव तान्-अतीहि) अथवा वे बाधक आ भी खड़े हों तो उन्हें मरुदेशों की भांति अतिक्रमण करके प्राप्त हो।

हे परमात्मन् ! तू मोरपक्षी के चमक दमक सुन्दर रोम समान कमनीय ज्ञान रश्मियाँ—ज्ञान ज्योतियाँ जो कि तेरे स्वरूप को प्रदर्शित करती हुई हमारे तक तुझे लाने वाली और हमें तेरे तक पहुंचाने – आकर्शित करने वाली हैं उनके द्वारा समन्तरूप से प्राप्त हो। परमात्मन् ! इस तेरे आगमन को रोकने वाला कोई भी दोष हमारे अन्दर उत्पन्न न हो जो हमारी सद्वृत्तियों को व्याध के समान रोककर तुझे हमारे तक पहुँचने में बाधक हो जावे, तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे से अन्यों द्वारा प्रसिद्ध किए अन्यथा दोषों को तू मरुप्रदेश के समान शुष्कनीरस समझकर लाङ्घकर प्राप्त हो ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मज्ञान में अत्यधिक प्रगतिशील उपासक)

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वदन्यो मघवन्नास्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥५॥

(अङ्ग शविष्ठ-इन्द्र त्वम्) अच्छा तो फिर "अङ्ग पुनरर्थे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] निर्विघ्न तेरी उपासना में मैं लगा रहूँ अति बलवान् परमात्मन्! तू (मर्त्यं प्रशंसिषः) मुझ मरणधर्मी जन्म मरण में आने वाले अमृत होने के इच्छुक उपासक को प्रशंसित कर—प्रोत्साहन दे—आन्तरिक बल दे 'लिङर्थे लेट् प्रयोगः' (मघवन्) हे प्रशस्त धन वाले—प्रशस्त धन देने वाले! (त्वत्-अन्यः-मर्डिता देवः) तुझसे भिन्न सुखदाता देव (न-अस्ति) नहीं है (ते वचः-ब्रवीमि) तेरे लिये मैं स्तुति वचन बोलता हूँ निवेदन करता हूं।

अच्छा! तो मेरे प्रिय बलवन् परमात्मन्! मैं निर्विघ्न तेरी उपासना में लगा रहूँ अतः तू मुझ इस जन्ममरणधर्मी उपासक को जो मैं अमृत होने की आकांक्षा करता हूं मुझे प्रोत्साहन दे मुझ में आन्तरिक बल दे, हे प्रशस्त धन देने वाले तेरे से भिन्न कोई सुखदाता देव नहीं है मैं तेरी स्तुति करता हूं—तुझसे निवेदन करता हूं ॥ ५ ॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायक मेधा वाला पौरुषबुद्धि वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
२ ३ १ २ ३२३ ३ २ ३१ २ ३ १ २
त्वं वृत्राणि हँस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥६॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (त्वम्) (यशाः) 'महायशाः' महा यशस्वी "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२।३] (ऋजीषी) 'ऋज्यते-इति-ऋज् क्विपूकर्मणि-ऋजमीषते गुणार्जनं प्रेरयति' "ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु" [भ्वादि०] इति तच्छीलः— "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" [अष्टा० ३।२।७८] सद्गुण सञ्चय को प्रेरित करने वाला (शवसः-पतिः) समस्त बलों का भण्डार या स्वामी "शवो बलम्" [निघं० २।९] (असि) है (त्वम्) तू (एकः-इत्) अकेला ही (पुर्वनुत्तः) बहुतों से न तिरस्कार होने वाला या बहुत अप्रहित (चर्षणीधृतिः) मनुष्यों का धारक मनुष्यों का सहारा उनके (अप्रतीनि वृत्राणि) घोर पाप वृत्तों— पाप संकल्पों को "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।२।५।७] (हंसि) नष्ट करता है।

हे परमात्मन् ! तू महायशस्वी है वस्तु वस्तु में तेरा यशस्वी नाम प्रतिभासित हो रहा है, तू उपासक में गुणसमूह को प्रेरित करने वाला समस्त बलों का स्वामी है तू अकेला भी अनेक विरोधी तत्त्वों से पराभूत न होने वाला है मनुष्यों का धारक—सहारा उनके गहरे पाप संकल्पों को भी नष्ट करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः—(पवित्र गुणों में अतन गमन प्रवेश करने वाला उपासक) ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३२३१ २ ३१ २ ३क २२३२
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
इन्द्रꣳ समीके वनिनो हवामहे इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥

(वनिनः) हम परमात्मा का सम्भजन करने वाले उपासक (देवतातये) देव भाव को प्राप्त होने के लिये—ऊंचे ज्ञानवान् होने के लिये "सर्वदेवात् तातिल्" [अष्टा० ४।४।१४२] (इन्द्रम्-इत्) परमात्मा को अवश्य (हवामहे) स्मरण करें (प्रयति-अध्वरे) पुनः सम्प्रति चलते हुए या आरम्भ किये जाते हुए अध्यात्म यज्ञ के निमित्त—(इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें (समीके) पश्चात् संघर्ष दैववृत्तियों और आसुरवृत्तियों के संग्राम में "समीके संग्रामनाम" [निघं० २।२७] (इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें (धनस्य सातये) आनन्द भोगधन की सम्भक्ति—प्राप्ति के लिये (इन्द्रम्) परमात्मा को स्मरण करें।

हम परमात्मा के सम्यक् सेवन करने वाले उपासक प्रथम अपने को देव—ऊंचे ज्ञानी बनाने के लिये परमात्मा का स्मरण करें पुनः ऊँचे ज्ञानी बनकर अध्यात्म यज्ञ प्रारम्भ करने पर उसका स्मरण करें पश्चात् आरम्भ किए अध्यात्म यज्ञ में दैववृत्तियों और आसुर वृत्तियों के कदाचित् संग्राम होने पर परमात्मा का स्मरण करें, फिर अध्यात्म आनन्द भोग धन की प्राप्ति के लिये परमात्मा का स्मरण करें। इस प्रकार जीवन के उत्कर्षार्थ इन चार प्रसङ्गों पर परमात्मा का स्मरण हमारा भारी सहायक है ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
१२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरूवसो) हे बहुत गुण रूप से हमारे अन्दर बसने तथा अपने अन्दर बसाने वाले परमात्मन् ! (याः-इमाः-उ गिरः) जो ये प्रस्तुत स्तुतियाँ "स्तुतयो गिरः" [निरु० १।११] (त्वा) तेरे प्रति समर्पित हैं वे (मम वर्धन्तु) 'अस्मान्' "विभक्तिवचनव्यत्ययः" हमें बढ़ावें ऊँचे स्तर पर पहुँचावें—पहुँचाते है "वर्धन्तु वर्धयन्तु" [निरु० १।११] अतः सहयोगी (पावकवर्णाः) अग्निवर्णवाले तेजस्वी (शुचयः) पवित्र (विपश्चितः) मेधावी उपासको ! "विपश्चितः—मेधाविनः" [निघं० ३।१५] (स्तोमैः) स्तुतिसमूहों से (अभ्यनूषत) पुनः पुनः स्तुत करो—परमात्मा की स्तुति करो ।

परमात्मन् ! ये स्तुतियाँ जो तेरे प्रति समर्पित की जा रही है हमें बढ़ावें ऊँचे स्तर पर ले जावें—ले जाती हैं अतः मेरे साथी तेजस्वी पवित्र मेधावी उपासको ! तुम उसकी स्तुति करो । ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २र ३ २ ३ ३ २
उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥

(त्ये-उ) वे फिर (मधुमत्तमाः) अधिक मधुर (गिरः) स्तुतियाँ (स्तोमासः) प्रशंसावचन (उदीरते) (उच्चरित हो रही हैं (सत्राजितः) समस्त संघर्षों को जीतने वाले (धनसाः) अमृत धन वाले (अक्षितोतयः) अक्षीण रक्षा वाले परमात्मा के (वाजयन्तः) अमृत भोग को चाहते हुए (रथाः-इव) रथों की निरन्तर गति की भाँति गति करते हैं—आगे बढ़ा करते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! हमारी स्तुतियाँ और प्रशंसावचन बहुत मधुर निरन्तर उच्चरित हो रहे हैं ये संघर्षों को जीतने अमृत भोगों वाली क्षीण न होने वाली रक्षायुक्त हैं अपने अमृत भोग को चाहते हुए रथों की भाँति तेज गति करते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—देवातिथिः (उपास्य देव के लिये—उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर गति प्रवृत्तिशील मेधावी का शिष्य)

१ २ ३ २ ३ १ ३२उ ३ १ २र
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥

(यथा) जैसे (गौरः) मृग-जाङ्गल पशु—हरिण (तृष्यन्) प्यासा हुआ प्यास को प्राप्त हुआ (इरिणम्) तृणादि ओषधियों से अनाच्छदित निर्मल दृश्यमान "इरिणः—अपरता अस्मादोषधय इति वा" [निरु० ९।६] (अपाकृतम्) 'अद्भिः कृतम्' जल भरे स्थान—जलाशय को (अव-एति) अवतरित होता दौड़कर प्राप्त होता है ऐसे (आपित्वे प्रपित्वे) बन्धुत्व प्राप्त हो जाने पर (नः) हमें (तूयम्-आगहि) हे परमात्मन् ! शीघ्र "तूयं क्षिप्रनाम" [निघं० २।१५] प्राप्त हो (कण्वेषु सचा सुपिब) हम मेधावी उपासकों के अन्दर साक्षात् होकर हमारे साथ सम्बन्ध करके सुन्दर उपासनारस का पान कर स्वीकार कर।

हे परमात्मन् ! जैसे प्यासा हरिण तृणादि से न ढके जलाशय को शीघ्र प्राप्त होता है ऐसे ही तू हमारे बन्धुत्व प्राप्त होने पर हम मेधावी उपासकों में प्राप्त साक्षात् होकर हमारे साथ बन्धुत्व कर हमारे सुन्दर उपासना रस को पिया कर—स्वीकार किया कर ॥१०॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय खण्ड

ऋषिः—भर्गः (ज्ञान से जाज्वल्यमान तेजस्वी)

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू ३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥

(शचीपते-शूर-इन्द्र) हे प्रज्ञानों-प्रज्ञावालों चेतनों के तथा कर्मों-कर्मवालों-क्रिया वाले जड़ पदार्थों के स्वामिन् "शची प्रज्ञा-नाम" [निघं० ३।९] "शची कर्म नाम" [निघं० २।१] पराक्रमी परमात्मन् ! तू (विश्वाभिः-ऊतिभिः) समस्त रक्षाविधियों से प्रज्ञानरक्षाओं क्रियारक्षाओं से (उ) निश्चय (सुशग्धि) रक्षा करने में सुशक्त है पूर्ण समर्थ है (यशसं त्वा हि भगं न) यशवाले जिससे हमारा यश हो ऐसे तुझ ऐश्वर्यस्वरूप के समान (वसुविदम्) अध्यात्मधन—मोक्षैश्वर्य के प्राप्त कराने वाले के प्रति (अनुचरामसि) अपने को समर्पित करते हैं।

हे प्रज्ञानो प्रज्ञावालो चेतनों तथा कर्म कलापों क्रिया वाले जड पदार्थों के स्वामिन् परमवीर पराक्रमी परमात्मन् ! तू अपनी समस्त रक्षाओं प्रज्ञान रक्षाओं या क्रिया रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा करने में पूर्ण समर्थ है, ऐश्वर्यवान् के समान तुझ यशोरूप यश के निमित्तरूप मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने वाले के प्रति हम अपना समर्पण करते हैं ॥१॥

ऋषिः—रेभः काश्यपः (कश्यप-मन निरोध में कुशल स्तोता†)

† "रेभः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्द्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! तू (स्वर्वान्) हमारे लिये विशेष सुख वाला—सुख देने वाला होता हुआ (असुरेभ्यः) 'असुरान् अतिरिच्य-ल्यब्लोपे पञ्चम्युपसंख्यानम्' मानवता से अस्त व्यस्त हुये जनों को अतिरिक्त कर—छोड़ कर वञ्चितकर (याः-भुजः-आभरः) जो भोगने वाली सामग्री 'भुज् धातोः क्विप् कर्मणि' समन्तरूप से तू धारण कर रहा है (अस्य) 'आभिः' 'विभक्तिवचनव्यत्ययः' इन भोगसामग्रियों से (मघवन्) धनवन् परमात्मन् ! (स्तोतारम्-इत्) 'स्तोतॄन्-वचनव्यत्ययः' अवश्य स्तोताओं को (वर्धय) बढा (च) और (ये) जो (त्वे) 'त्वे-एके' कोई (वृक्तबर्हिषः) प्रवृक्त प्रकट किया ज्ञान अग्नि जिन्होंने "बर्हिः—अग्निः" [निरु० ८।९] ऐसे असुरविरोधी देववृत्ति वाले हैं ।

हे परमात्मन् ! तू असुरों को वञ्चित कर जो प्रशस्त भोग सामग्रियाँ धारण करता है उनके विपरीत ज्ञानाग्नि प्रदीप्त करने वाले स्तोता जन हैं उनको उनसे प्रवृद्ध करता है ॥२॥

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित ज्ञानाग्नि जिसके अन्दर है †)

देवता-इन्द्रो मित्रार्यमवरुणरूपः (मित्र अर्यमा वरुण रूप इन्द्र परमात्मा)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वरूथ्ये३वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रँ राजसु गायत ॥३॥

† "जमदग्नयः प्रज्वलिताग्नयः' [निरु० ७।२५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋतावसो) हे सत्य धन वाले उपासक ! (मित्राय) मित्र रूप स्नेही साथी इन्द्र परमात्मा के लिये (सचथ्यं छन्द्यं वचः स्तोत्रम्) सेवनीय — उपासनीय, स्वाभिप्रायानुरूप वचन स्तुति समूह को (प्र-गायत) 'गाय' प्रकृष्ट रूप से गा-बोल (वरूथ्ये वरुणे प्र) घर में रहने हृदय में वसने वाले वरुणरूप—वरने योग्य इन्द्र-परमात्मा के निमित्त भी वैसे ही प्रकृष्ट गान कर (राजसु) इन राजरूपों के लिये प्रकृष्ट गान कर।

हे उपासक तू मित्ररूप स्नेही संसारव्यापी वरुणरूप वरणीय हृदय वासी परमात्मा अर्यमा रूप आश्रयदाता मोक्षवासी परमात्मा के लिये उपासनीय स्वाभिप्रायानुरूप स्तुति वचन का उत्तम गान कर ॥३॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से अतन प्रवेश शील उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभित्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभव समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वा पूर्व्यम्-अभि) तुझे पूर्वतः सृष्टि से पूर्व में भी वर्तमान या श्रेष्ठों में श्रेष्ठ को लक्ष्य कर (पूर्वपीतये) तेरे उपासक अपने अपने उपासनारस को पृथक् पान कराने स्वीकराने के लिये या तेरा दर्शनामृत प्रथम पान करने के लिये (स्तोमेभिः) विविध स्तुति वचनों से (आयवः) जन प्रार्थी जन "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २।३] (समीचीनासः-ऋभवः) सम्यक् गति वाले मेधावी लोग 'ऋभुः-मेधाविनाम' [निघं० ३।१५] (समस्वरन्) संशब्द-संस्तवन निरन्तर स्तुत करते हैं (रुद्राः-गृणन्त) स्तोता—उपासक जन "रुद्रः स्तोता" [निघं० ३।१६] गुणगण वर्णन करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! तुझे अपने अपने उपासनारस को पृथक् पान कराने स्वीकराने के लिये या तेरे दर्शनामृत प्रथम पान करने के लिए तेरे तीन प्रकार मानने वाले प्रार्थी जन सम्यग् गति वाले स्तुति करने वाले मेधावी महानुभाव तथा उपासना करने वाले जीवन्मुक्त तेरी अर्चना गुणगान करते हैं हम भी उन्हीं तीनों में तेरी उपासना कर अमृत को सेवन करें ॥४॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुषमेधश्च (नायकबुद्धिवाला और पौरुष-बुद्धि वाला उपासक) ।

२ ३ १ २ ३१ २ २३ १ २
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥

(मरुतः) हे अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक जनो ! "मरुतः-ऋत्विङ् नामसु" [निघं० ३।१८] (वः) 'यूयम्' विभक्तिव्यत्ययः' तुम (बृहते-इन्द्राय) महान् परमात्मा के लिये (ब्रह्म प्र-अर्चत) तुम्हारे पास तुम्हारी बड़ी वस्तु मन है उस मन को अर्पित करो "मनो वै सम्राट् परमं ब्रह्म" [श० १४।६।१०।१२] (शतक्रतुः) बहुत प्रज्ञान और कर्म वाला (वृत्रहा) पापनाशक (शतपर्वणा वज्रेण) बहुत शक्तिसन्धानवाले शासन से "वज्रः शासः" [श० ३।८।१५] (वृत्रं हनति) पाप को नष्ट करता है "शपो-लुगभावश्छान्दसः" ।

अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासको ! महान् परमात्मा के लिये अपने मन को अर्पित करो वह बहुत प्रज्ञान कर्म वाला पाप संकल्प का नाशक बहुत शक्ति सन्धान वाले शासन से तुम्हारे मन के पाप को नष्ट कर देता है ॥५॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—पूर्ववत्

२ १ २र ३ १२ ३ १ २
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ६ ॥

(मरुतः) अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक जनो ! (वृत्रहन्तमं देवाय-इन्द्राय) वृत्रहन्ता-पापाज्ञाननाशक परमात्मदेव के लिये "वृत्रहन्तमम्"-सुपां सुपो भवन्तीतिङे स्थानेऽम् (बृहत्-गायत) बड़ा भारी गुण गान करो (येन) जिस गुणगान कर्म से (ऋता-वृधः) परमात्मज्ञान को बढ़ाने वाले (देवं जागृवि ज्योतिः-अजनयन्) दिव्य-अलौकिक जागरणशील ज्योति को अपने अन्दर प्रादुर्भूत करते हैं।

हे अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासको ! पापाज्ञाननाशक परमात्मदेव के लिये भारी गुणगान करो जिससे कि परमात्मज्ञान के बढ़ाने वाले दिव्य जागने वाली-निरन्तर चेताने वाली ज्योति को अपने अन्दर प्रकट किया करते हैं ॥६॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥

(पुरुहूत) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (पुत्रेभ्यः-यथा पिता) पुत्रों के लिये पिता की भाँति (नः क्रतुम्-आभर) हमारे लिये प्रज्ञान ऊँचा ज्ञान सौंप दे (नः-शिक्ष) हमें सर्वस्व गुण सम्मपत्ति दे "शिक्षति दानकर्मा"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[निघं० ३।२०] (अस्मिन्-यामनि) इस संसारयात्रा में (जीवाः-ज्योतिः-अशीमहि) हम जीते हुए तेरी ज्योति को प्राप्त कर सकें।

परमात्मन् ! तू हमारा पिता है हम तेरे पुत्र हैं, पुत्रों के अन्दर जैसा पिता अपने प्रज्ञान को भरता है और सर्वस्व का प्रदान करता है तू भी प्रज्ञान भर दे तथा गुणसम्पत्ति का भी प्रदान कर दे अतः इस संसारयात्रा में मार्ग निर्देश कर कि हम कैसे संसार के भिन्न भिन्न मार्गों में चले यहाँ जीवन की सफलता प्राप्त करें पुनः जीते हुए तेरी अनुपम ज्योति को पा सकें ॥७॥

ऋषिः—रेभः (परमात्मा के गुणगान करने वाला स्तोता)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १२
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (नः-मा परावृणक्) हमें नहीं त्यागना "वृजी" वर्जने (रुधादि०) (नः-सधमाद्ये भव) हमारे साथ हर्ष सदन-हृदय में विराजमान हो (त्वं नः-ऊती) तू हमारी रक्षा शरण है (त्वं-इत्) तू ही (नः-आप्यम्) हमारा प्राप्त करने योग्य मित्र है (इन्द्र) परमात्मन् ! (नः-मा परावृणक्) हाँ हमें मत त्यागना।

परमात्मान् ! तू हमें न त्याग अपितु हमारे साथ हर्षसदन हृदयसदन में विराजमान हो, क्योंकि तू हमारा रक्षाशरण है और तू ही प्राप्तव्य सहज मित्र है अतः आशा है तू हमें न त्याग सकेगा ॥ ८ ॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से निरन्तर परमात्मा में गमन प्रवेश करने वाला)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥९॥

(वृत्रहन्) हे पापनाशक परमात्मन्! (पवित्रस्य) तुझ पवित्र के (वयं घ सुतावन्तः) हम तो निष्पन्न उपासनारस वाले (वृक्तबर्हिषः) प्रकटित ज्ञानाग्निवाले (स्तोतारः) उपासक (त्वा परि-आसते 'आस्महे') तुझे—तेरे आश्रय बैठते हैं (आपः-न प्रस्रवणेषु) जल जैसे प्रस्रवण स्थानों—जलाशयों—तडाग सरोवर—सागरों में परिनिष्ठित हो जाते हैं—आश्रित होते हैं। 'प्रस्रवन्ति जलानि येषु तानि प्रस्रवणानि'।

पापनाशक परमात्मन्! तुझ पवित्रकारक के हम स्तुतिकर्ता उपासनारस निष्पादक प्रकटित ज्ञानाग्निवाले तेरे आश्रय में परिनिष्ठित हैं जैसे विविध जल अपने गिरने वाले तडाग—सरोवर—समुद्र—जलाशयों में परिनिष्ठित हो जाते हैं॥ ९॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न को धारण करने वाला)

३ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ १ २
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमाभर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥

(इन्द्र) परमात्मन्! (नाहुषीषु कृष्टिषु) 'णह बन्धने' [दिवादि०] "नह्यति बध्नातीति नह्-क्विपि नह् रागः, तं रागमोषित दहतीति नहुष् क्विपि यद्वा नहो रागस्य-उषो दग्धा दहनकर्ता नहुषः" "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" [अष्टा० ३।१।१३५] इति कप्रत्यये—उषः, राग बन्धन को जला चुकाने वाली कृष्टि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट देह, प्रशस्त देहों—जीवन्मुक्तों में "कृष्टयः-विकृष्टदेहाः" [निरु० १०।२२] "कृष्टशब्दान्मतुबर्थीय-इकारश्छान्दसः प्रशस्तार्थे" (यत्-ओजः-नृम्णं च-आ-'आभर') जो तेज—आत्मिक प्रताप "ओजो वा अग्निः" [काठ० २०।१०] और बल—परमात्मतेज "तेजोऽसि तेजो मयि……" [यजु० १९।९] होता है 'नृम्णं बलनाम" [निघं० २।९] उसे आभरित कर (यत्-वा) और जो (क्षितीनाम्) अज्ञान का क्षय करने वाले ज्ञानियों—मुमुक्षुओं का (पञ्च) ज्ञानपञ्चक—ज्ञानेन्द्रियविषयक भोगप्रवृत्ति से रहित संयम शुभ ज्ञान वैराग्य परमात्मदर्शन है तथा (द्युम्नम्) यश है "द्युम्नं द्योततेर्यशो……" [निरु० ५।५] (सत्रा) सत्य—सदाचार "सत्रा सत्यनाम" [निघं० ३।१०] (विश्वानि पौंस्या) समस्त पौरुष—साहस—कर्मेन्द्रियों और शरीर पर पूर्णाधिकार हुआ करते हैं उन्हें (आभर) हमारे अन्दर आभरित कर।

परमात्मन् ! राग बन्धन को दग्ध करने वाली—आकृष्ट या प्रशस्त देहवाली जीवन्मुक्त आत्माओं में जो आत्मबल और परमात्म तेज है और जो अज्ञान का क्षय करने वाले ज्ञानी मुमुक्षुओं में ज्ञानपञ्चक—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का शुभज्ञान तथा यश एवं संयम सदाचार समस्त साहस है उन्हें हम उपासकों के अन्दर भर—भरता है यह तेरी बड़ी कृपा है ॥ १० ॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में प्रवेशशील)

३ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ २
सत्यमित्था वृषेदसि वृष जूतिर्नोऽविता ।
२क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उग्र) हे तेजस्विन् परमात्मन् ! (वृषाजूतिः) समस्त सुखवर्षकों की गति—आश्रय हुआ "जूतिर्गतिः" [निरु० १०।२८] (नः-अविता) तू हमारा रक्षक हो (वृषा हि परावति शृण्विषे) सुखवर्षक ही दूर काल में सुना जायगा "सामर्थ्याद् भविष्यत्कालाभिधायी प्रयोगः" "परावतः परागतात्" [निरु० ७।२६] (वृषा-उ- अर्वावति श्रुतः) सुखवर्षक ही सुना गया अभी—हाल निकट भूत में भी सुना गया है (इत्था सत्यं वृषा-इत्-असि) इस हेतु "था हेतौ च छन्दसि" [अष्टा० ५।३।२६] तू ही सच्चा सुखवर्षक है।

हे तेजस्वी परमात्मन् ! तू सुखवर्षकों की गति—आश्रयभूमि है कोई भी सुखवर्षक आपके विना स्वतन्त्र सुखवर्षक नहीं तू हमारा रक्षक है, तू सुखवर्षक अभी सुना गया है और आगे भी सुखवर्षक सुना जायगा इस हेतु तू ही सच्चा सुखवर्षक है, तुझे छोड़कर कहाँ जावें ॥ १ ॥

ऋषिः—रेभः (परमात्मगुणों का कथनकर्ता स्तोता)

१ ३१ २ ३२ ३ १२ ३१ २
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँआ विवासति ॥२॥

(वृत्रहन्-शक्र द्युमत्-इन्द्र) हे पापनाशक सर्वशक्तिसम्पन्न स्वप्रकाशस्वरूप को प्राप्त परमात्मन् ! तू (केशिभिः) ज्ञानरश्मियुक्त बलों से (यद्) जबकि (परावति) दूरस्थान में (यद्) 'यदा' जबकि (अर्वावति) निकट स्थान में भी (असि) है (अतः) इस कारण (त्वा) तुझे (सुतावान्) उपासनारस वाला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासक (गीर्भिः) स्तुतियों से (आविवासति) समन्तरूप से उपासित करता है।

हे पापनाशक सर्वशक्तिमन् स्वप्रकाशरूप में विराजमान परमात्मन्! तू अपने ज्ञानरश्मियुक्त बलों से दूर देश में दूर से दूर देश में भी और निकट देश में—निकट से निकट देश में भी है इस कारण उपासनारसवाला उपासक अपनी स्तुतियों द्वारा सुगमता से तेरी उपासना करता है॥ २॥

ऋषिः—वत्सः (परमात्मगुणों का वक्ता)

३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ २ ३ १२ २र
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र नाम श्रुत्यꣳ शाकिनं वचो यथा॥३॥

(वः) हे उपासको! तुम "विभक्तिव्यत्ययः" (अन्धसः-मदेषु) आध्यानीय—समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के "अन्धः-आध्यानीयं भवति" [निरु० ५।१] अर्चन स्तवन—उपासन प्रसङ्गों में "मदति-अर्चतिकर्मा" [निरु० ३।१४] (वीरं विचेतसम्) पराक्रमी, विशेष ज्ञानी—सर्वज्ञ—(श्रुत्यं शाकिनम्) श्रवणीय शक्तिमान् (इन्द्रं नाम) प्रसिद्ध परमात्मा का (महा-गिरा) महत्व वाली स्तुति से (वचः-यथा) 'यथा वचः' वाणी शक्ति के अनुसार (अभिगाय) 'गायत वचनव्यत्ययः' निरन्तर गान—गुणगान करो।

हे उपासको! तुम समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के स्तुतिप्रसङ्गों में पराक्रमी सर्वज्ञ श्रोतव्य सर्वशक्तिमान—प्रसिद्ध

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा का खुलकर गुणगान करो जब तक वाणीशक्ति गा सके ॥ २ ॥

ऋषिः—शंयुर्भरद्वाजो वा (कल्याण कर परमात्मा को प्राप्त होने वाला या अमृत अन्न को अपने में भरने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथꣳ स्वस्तये ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (स्वस्तये) सु—अस्ति—शोभन अस्तित्व—स्वात्मस्वरूप के लिये—अपने अविनाशी—अमरत्व के लिये "स्वस्तीत्यविनाशि नाम । सु अस्तीति" [निरु० ३।२१] "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८।३।४] (मह्यं च) मुझ उपासक के लिये और (एभ्यः-मघवद्भ्यः-च) इन मेरे जैसे अध्यात्म यज्ञ वालों के लिये भी "यज्ञेन मघवान्" [तै० सं० ४।४।८।१] (त्रिधातु) तीन—स्तुति प्रार्थना उपासनारूप परमात्मा को धारण करने के साधनों से सिद्ध होने वाले—(त्रिवरूथम्) तृतीय धाम मोक्ष में "तृतीय धामन्नध्यैरयन्त" [यजु० ३२।१०] यथा "त्रिनाके त्रिदिवे" "तीयप्रत्ययलोपश्छान्दसः" [ऋ० ९।११३।९—त्रिदिवे तृतीयायां दिवि त्रिनाके तृतीयनाके सायणः] इन्द्रिय मन आत्मा में से आत्मा द्वारा वरणीय मोक्षधाम में, अथवा तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर का वारण निवृत्ति जिसमें हो जावे ऐसे मोक्षधाम "तस्माद्वैतत्पुरां परमं रूपं यत् त्रिपुरम्" [श० ६।३।३।२५] (छर्दिः) सन्दीप्त प्रकाशमय—ज्योतिर्मय—"छृदी सन्दीपने" [चुरादि०] (शरणम्) घर को "शरणं गृहनाम" [निघं ३।४] (यच्छ)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रयच्छ" प्रदान कर (दिद्युं यावय) हमारे अध्यात्मयज्ञ को खण्डित करने वाले "दिद्युद् द्यते:" [निरु० १०।७] वाण या वज्र के समान वाधक पाप या वासनाभाव को "इषवो दिद्यवः" [श० ५।४।२।२] "दिद्युत् वज्र नाम" [निघं० २।१०] पृथक् कर दें।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू स्वस्ति—शोभन अस्तित्व—अपने स्वरूप अमरत्व के लिये मुझ उपासक के लिये और मेरे जैसे अध्यात्म यज्ञ—सेवन करने वाले उपासकों के लिये भी तुझे धारण कराने वाले स्तुति प्रार्थना उपासना से सिद्ध होने वाले तृतीयधाम तीन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों का वारण निवृत्ति जिसमें हो जाती है ऐसे मोक्षरूप ज्योतिर्मय घर को अपनी कृपा से प्रदान कर जहाँ हम अपने अमर स्वरूप से तुझ परमअमृत का आनन्द प्राप्त कर सकें अतः अध्यात्म यज्ञ को खण्डित करने वाले वाण या वज्र के समान किसी वाधक पाप या वासनाभाव को दूर रख ॥ ४ ॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधा वाला उपासक)

१ २ ३ २र १र २र
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥५॥

(सूर्यम्-इव श्रायन्त) "लुप्तोपमानोपमेयालङ्कारः" रश्मियाँ—किरणें सूर्य को आश्रित हुई रहती हैं ऐसे उपासक इन्द्र—परमात्मा को आश्रित हुए रहते हैं (इन्द्रस्य) परमात्मा के (विश्वा जाता जनिमानि-इत्-उ) सब प्रसिद्ध हुए—साक्षात् हुए प्रसिद्ध होने वाले—साक्षात् होने वाले अमृत भोगधनों को भी अवश्य (भक्षत)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन करने के इच्छुक हुए—प्राप्त करने के इच्छुक हुए "भज् धातोः सन्नन्तात् 'अतच्' औणादिकः कर्तरि, अभ्यासाभावो जसो लुक् च छान्दसः" "भक्षत—विभक्तमाणाः" [निरु० ६।८] (ओजसा भागं न प्रति दीधिमः) अपने आत्मिक बल तेज—स्वस्वरूप से उस भजनीय इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा को हम साक्षात् अनुभव करें "ते वयं भागमनुध्यायाम" [निरु० ६।८]।

जैसे किरणें सूर्य को आश्रित हुई रहती हैं ऐसे उपासक मोक्ष में परमात्मा को आश्रित होकर रहते हैं, परमात्मा के समस्त साक्षात् हुए और होने वाले अमृत भोग धनों को भी अवश्य सेवन करने के इच्छुक हुए—प्राप्त करने के इच्छुक हुए अपने आत्मिक बल—तेज—स्वरूप से उस भजनीय परमात्मा को हम उपासक साक्षात् अनुभव करें—कर सकें ॥ ५ ॥

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत वासनाओं का हन्ता)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥६॥

(दीर्घायः) आयु आय जिसका है ऐसा आयुधन—जीवन-धन "आयु र्वै ? दीर्घम्" [श० १३।११।१२] केवल जीना ही अभीष्ट मानने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (अदेवः) परमात्मदेव जिसका इष्ट नहीं वह नास्तिक (तत्-इषम्) उस एषणीय अमृत सुखभोग को (सीं न-आप) सर्वभाव से—सर्वथा नहीं प्राप्त करता है उससे नितान्त वञ्चित रहता है परन्तु (यः-एतग्वा एतशः-चित्-युयोजते) जो इस परमात्मा की ओर गति करने वाला

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"एतं गच्छतीति-एतद् पूर्वकाद् गमधातोः वनिप् प्रत्ययः छान्दसः दकार लोपश्च" 'एतस्मिन् शेते अन्येष्वपि दृश्यते' [अष्टा० ३।२। ११०] "डः प्रत्ययः" तथा उस परमात्मा में शयन प्रवेश करने वाला होकर पूर्णरूप से "चित् साकल्ये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] परमात्मा को युक्त हो जाता है, पुनः (इन्द्रः-हरी-युयोजते) परमात्मा दुःखापहरणकर्ता और सुखाहरणकर्ता "हरयो हरणाः" [निरु० ७।२४] अपने ज्योति और स्नेह को या ऋक् और साम, स्तवन और सान्त्वन धर्मों को या अमृतरस और देवान्न दिव्य भोग को उपासक में युक्त कर देता है "ऋक्सामे वा इन्द्र हरी" [मै० ३।१०।६] "ज्योतिस्तदृक्" [जै० १।७६] "अमृतं वा ऋक्" [कौ० ७।१०] "साम देवानामन्नम्" [जै० १।७१]।

केवल जीना ही धन मानने वाला—परमात्मा को न मानने वाला नास्तिक सदा मरणधर्मी जन परमात्मा के एषणीय—कमनीय सुखभोग को कभी नहीं प्राप्त कर सकता है, किन्तु जो इस परमात्मा की ओर गति प्रवृत्ति करने वाला तथा इस परमात्मा में शयन—प्रवेश करने वाला परमात्मा को युक्त हो जाता है तो परमात्मा उस उपासक के प्रति दुःखापहरण करने तथा सुखाहरण करने वाले ज्योति और स्नेह को या प्रशंसन और सान्त्वन धर्मों को या अमृतरस मुक्तों के रस और देवान्न—दिव्यभोग मुक्तों के अन्न को उस उपासक में युक्त कर देता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—नृमेधः पुरुमेधश्च (नायक बुद्धि वाला और बहुत बुद्धि वाला।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रँ समत्सु भूषत।
२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम् ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वासु समत्सु) समस्त प्रतिद्वन्द्वी प्रवृत्तियों में दैववृत्तियों आसुरवृत्तियों के संघर्षों में (हव्यम्-इन्द्रम्) आमन्त्रणीय परमात्मा को (आ:-भूषत) आभूषित करो पूजित करो। यतः (ऋचीषम) स्तुति के अनुरूप फलप्रद "ऋचीषमः-ऋचा समः" [निरु० ६।२३] (परमज्याः) विरोधियों पर अलौकिक जय साधन वाला (वृत्रहन्) सर्वत्र "सुपां सुलुक्" [अष्टा० ७।३।३९] "सुलुक् छान्दसः" पापनाशक (नः) हमारे (ब्रह्माणि सवनानि) मन-बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, उपासना रस निष्पादनस्थानों को "मनो ब्रह्मेति व्यजानात्" [तै० आ० १०।६४।१] (उप—उपभूषत) उपभूषित कर अपने आनन्द स्वरूप से वासित कर।

उपासकों ! सारी विरोधी प्रवृत्तियों के प्रसङ्ग में आमन्त्रणीय परमात्मा को आहूत करो स्मरण करो जिससे वह उन पर परम जय साधन वाला पापनाशक स्तुति के अनुरूप फलप्रद परमात्मा हमारे मनों-मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार उपासना रस के निष्पादन स्थानों को उपभूषित करें अपने आनन्द स्वरूप से वासित करदें ॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

१र २र ३२उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (अवमं वसु) उरला—इन्द्रियों द्वारा सेवनीय भोगने योग्य धन जिसे हम इन्द्रियों से भोगते हैं वह (तवः-इत्) तेरा ही है (मध्यम त्वं पुष्यसि) उससे ऊपर दूसरा मनोग्राह्य-मन द्वारा सेवनीय ज्ञान धन—वेद जिसे मनसे सेवन करते हैं उसको तू पोषण देता है—रक्षित करता है (विश्वस्य परमस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसि) स्वात्मा के प्रवेश योग्य अन्तिम मोक्षानन्द अमृतधन का तू स्वामित्व करता है जिसे हम स्वात्मा से भोगते हैं, अतः (गोषु) वाणियों में वाणियों के द्वारा "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १।११] (सत्रा) यथावत् पूर्णरूप से (त्वा) तुझे—तेरा (न किः) "न केचन" कोई भी–कितने भी जन नहीं (वृण्वते) 'विवृण्वते' विवरण कर सकते हैं।

परमात्मन् ! तू अद्भुत स्वामी है इन्द्रियों से भोगने योग्य धन-भोगधन का स्वामी, मन से सेवन करने योग्य ज्ञान वेदरूप धन का स्वामी और आत्मा जिसमें प्रविष्ट हो जावे उस ऐसे आत्मा के द्वारा मोक्षानन्द अमृत धन का भी स्वामी है अतः तुझ स्वामी का वाणियों द्वारा यथार्थ विवरण से खोलकर कथन करने वाले जन कोई नहीं हैं तेरा जितना स्तवन करता है वह मानव वाणी से अल्प थोड़ा ही हो पाता है ॥८॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मध्यातिथिश्च (मेधा से गमन प्रवेश करने वाला और पवित्र गुणों में गमन शील)

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
केयथ केदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३१ २
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषु ॥ ९ ॥

(युध्म खजकृत्-पुरन्दर) हे पापों से संग्राम करने वाले "खजे संग्राम नाम" [निघं० २।१७] योद्धा पापशरीरों को विदीर्ण करने वाले परमात्मन् "आत्मा वै पूः" [श० ७।५।१।२] तू (पुरुत्रा) बहुत उपासक जनों में "देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्यो-र्बहुलम्" [अष्टा० ५।४।५६] 'त्रा' (ते चित् हि-मनः) तेरे लिये ही निरन्तर मन है (क-इयथ क-इत्-असि) कि तू कहाँ गया था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ है ? (अलर्षि) तू आ (गायत्रा प्र-अगासिषुः) उपासक लोग प्रकृष्ट स्तुति गान गाते हैं।

हे पापों से संग्राम करने वाले योद्धा ! पापात्माओं पाप शरीरों को विदीर्ण करने वाले परमात्मन् ! बहुत उपासकों में तेरे दर्शन के लिये मन लगा हुआ है कि तू कहाँ गया ? कहाँ है ? आजा वे गुण गानों को प्रकृष्ट गाते हैं ॥९॥

ऋषिः—कलिः (गुण कथनकर्ता)

३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
वयमेनामिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
२ ३ १र २र ३ २ ३ १र ३ १ २ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १० ॥

(वयम्) हम (एनं वज्रिणम्) इस ओजस्वी परमात्मा को "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (इह) इस जीवन में (ह्यः-इदा) कल और अब—आज (अपीपेम) स्तुतियों से प्रवृद्ध करें और करते हैं (तस्मै-उ) उसके लिये ही (अद्य सवने) आरम्भ होने वाले स्तुतिप्रसङ्ग में (सुतंभर 'भरामः') निष्पन्न उपासनारस को समर्पित करते हैं (नूनम्) निश्चित (श्रुते) 'श्रुतेन' श्रुत—श्रवण चतुष्टय—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार से (आभूषत) 'आभूषेम' पुरुषव्यत्ययः पूजित करें ध्यावें।

हम इस ओजस्वी परमात्मा को गत कल स्तुतियों से प्रवृद्ध किया और आज भी करते हैं उसके लिये ही आरम्भ होने वाले भावी स्तुतिप्रसङ्ग में निष्पन्न उपासनारस को समर्पित करते हैं निश्चित श्रवण चतुष्टय-श्रवण मनन निदिध्यासन साक्षात्कार से उसे पूजित करें ध्यावें-ध्याते हैं ॥१०॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुतों को अध्यात्म में प्रेरित कर्ता)

१र २र ३ १उ ३ १ २ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

(यः-चर्षणीनां राजा) जो आदित्य समान ज्ञान से प्रकाशमान जनों का राजा—दीपयिता—ज्ञानदाता "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघं० २।३] "चर्षणिः-चायितादित्यः" [निरु० ५।२४] (रथेभिः-अध्रिगुः-याता) रथों—वेग वाले यानों के द्वारा जाने वालों का उनमें भी अधृतगमन—अप्राप्तगतिवाला जाने वाला "अध्रिगुर-धृतगमनः" [निरु० ५।१०] (विश्वासां पृतनानां तरुता) समस्त युद्ध करने वाली शक्तियों का "युधौ वै पृतनाः" (श० ५।२।४।१६) तारक—तारयिता प्रेरक "तरुतारं तारयितारम्" [निरु० १०।२९] (यः-वृत्रहा ज्येष्ठः) जो पापाज्ञाननाशक महान् है (गृणे) मैं उसे स्तुति में लाऊं—उसकी स्तुति करूं।

जो सूर्यसमान ज्ञानप्रकाश से प्रकाशमान ज्ञानियों का—आदि ऋषियों का प्रकाशक ज्ञानदाता है, जो तीव्र गतिवाले यानों से जाने वालों का भी—उनमें—उनसे भी अप्राप्त गति वाला विभु—गतिवाला जाने वाला है और समस्त युद्ध करने वाली शक्तियों—विद्युत् आदियों का प्रेरक है जो पाप अज्ञानों का नाशक अति महान् है उसकी मैं स्तुति करता हूँ अर्थात् ज्ञान, गति, शक्ति, पापाज्ञाननिवृत्ति का अधिष्ठाता परमात्मा है उसकी स्तुति करनी चाहिये ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—भर्गः (ज्ञानमय तेज वाला उपासक)

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
१२ ३ २उ ३ १२ ३२ ३ २उ ३ १२ २२
मघवँ छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ २ ॥

(मघवन्-इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यतः-भयामहे) जिससे हम भय करें (ततः-नः-अभयं कृधि) उससे हमें अभय कर (तव) हम तेरे हैं (शग्धि) तू समर्थ है (तत्) तिस कारण (नः-ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (द्विषः-विजहि) द्वेषवृत्तियों को नष्ट कर (मृधः-वि-) पाप भावनाओं को विनष्ट कर "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।२।३।८] ।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! जिस दुर्भाव से हम डरते हैं उससे हमें अभय कर—उसे कभी न सेवन कर सकें, तू ऐसा करने में समर्थ है, अतः हम तेरी शरण में हैं तिससे तू हमारी रक्षा के लिये द्वेष भावनाओं और पापवृत्तियों को हमसे नष्ट कर—उन्हें दूर रख ॥ २ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (गति-प्रवृत्ति है व्योम समान परमात्मा में जिसकी ऐसा ध्यानी जन)

१ २ ३ १२ २२ ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा ꣳ सत्रं ꣳ सोम्यानाम् ।
३ २ ३ २ ३ १२ २ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीना ꣳ सखा ॥ ३ ॥

(सोम्यानाम्) हम सोम—उपासनारस सम्पादक उपासकों के (वास्तोः-पते) वासस्थान हृदय गृह के स्वामिन् परमात्मन् ! "वास्तुर्वसतेर्निवासकर्मणः" [निरु० १०।१६] (ध्रुवा स्थूणा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुव, स्थापक जीवन स्तम्भ है (अंसत्रम्) पाप से बचाने वाला है "अंसत्रमंहसस्त्राणम्" [निरु० ५।२६] ('इन्द्रः) 'इन्द्र' सुविभक्तेरलुक्छान्दसः "हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (शश्वतीनां पुराम्) शाश्वतिक—आत्मा के साथ चली आई मन बुद्धि चित्त अहङ्कार स्थलियों का "मन एव पुरः 'अन्तःकरणम्' मनो हि प्रथमं प्राणानाम्—इन्द्रियाणाम्" [श० १०।३।५।७] (भेत्ता) उद्घाटयिता उद्घाटन करने वाला, तथा (द्रप्सः) हर्षयिता—विकसित करने वाला "दृप हर्षे" [दिवा०] (मुनीनां सखा) मननशील—तेरा मनन चिन्तन करने वालों का तू सखा है—मित्र है।

उपासनारस सम्पादक उपासकों के हृदय गृह के स्वामी परमात्मन् ! तू उनके जीवन का स्तम्भ—सहारा—आधार तथा उन्हें पापों से बचाने वाला है एवं ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू शरीर में आत्मा के साथ प्रथम होने वाली मन बुद्धि चित्त अहङ्कार शक्तियों को उद्घाटित करता तथा विकसितकर्ता एवं अपने मननशील चिन्तन करने वालों का मित्र भी है ॥ ३ ॥

ऋषिः—जमदग्निः (जिसमें प्राप्त परमात्माग्नि प्रकाशित है ऐसा उपासक है)

१ ३१ २ ३ १२ ३१ २
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
३१ २ ३१ २३१ २ ३१ २ ३१ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ ४ ॥

(सूर्य) हे सरणशील संसार में विभुगति से चरणशील इन्द्र परमात्मन् ! तू (बट्) सत्य—सचमुच "बट् सत्यनाम" [निघं० ३।१०] (महान्-असि) महत्त्व—वाला है—सांसारिक महान् वस्तु से भी महान् है (आदित्य) हे अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति के स्वामी इन्द्र परमात्मन् ! तू (बट्) सचमुच (महान्-असि) महान् है (महः-सतः-ते महिमा) महान् होते हुए का तेरा महत्त्व (अपनिष्टम) हमारे द्वारा स्तुत किया जाता है (देव) हे द्योतन दानादि गुण युक्त इन्द्र परमात्मन् ! तू (मह्ना महान्-असि) महत्त्व—गुणमहत्त्व से महान् है।

हे परमात्मन् ! तू संसार में विभुगति से सर्वत्र चरणशील होता हुआ सचमुच महान् है सर्व महान् है, तू अखण्ड सुख-सम्पत्ति मुक्ति का स्वामी होता हुआ सचमुच महान् है नितान्त महान् से महान् है तुझ महान् होते हुए की महिमा प्रसंशित की जाती है, हे द्योतन शील दाता परमात्मन् ! तू महत्त्व से महान् है तेरे जैसा सर्वगुणसम्पन्न कोई नहीं है ॥४॥

ऋषिः—देवातिथिः (परमात्म देव की ओर निरन्तर गमन-प्रवेश करने वाला उपासक)

३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमा ॐ यदिन्द्र ते सखा।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यत्) 'यतः' क्योंकि (ते सखा) तेरा मित्र तुझ से सङ्ग कर लिया जिसने ऐसा समागमशील उपासक (अश्वी) प्रशस्त इन्द्रियघोड़ों वाला संयमी (रथी) प्रशस्त शरीररथ वाला स्वस्थ (सुरूपः) प्रशस्त स्वरूप वाला शान्तात्मा (गोमान्) प्रशस्तवाणी वाला यथार्थ वक्ता (इत्) अवश्य उक्त गुण वाला हो जाता है (श्वात्रभाजा वयसा सचते) शीघ्रभाक् शीघ्र प्राप्त करने वाले जीवन से 'श्वात्रमिति क्षिप्रनाम' [निरु० ५।३] समवेत होता है (सदाचन्द्रैः-सभामुपयाति) सदा आह्लादक गुणों से सभा को उपगत होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तेरा समागम करने वाला उपासक प्रशस्त इन्द्रियों वाला संयमी, प्रशस्त शरीर वाला, स्वस्थ, प्रशस्त सुरूप वाला शान्तात्मा, प्रशस्त वाणी वाला यथार्थ वक्ता हो जाता है तथा शीघ्र फल भागी जीवन से समस्त कार्य में प्रवेश करता है सदा आह्लादकारी गुणों से सभा में उपगत होता ऊँचा स्थान पाता है ॥५॥

ऋषिः—पुरुहन्मा (बहुत प्रगतिशील बहुत ज्ञानी)

यद् द्याव इन्द्र ते शतꣳ शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६॥

(वज्रिन्-इन्द्र) हे ओजस्वी 'वज्रो वा ओजः' [श० ८।४।१।२०] ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यत्) यदि (ते) तेरे सम्मुख (शतं द्यावः) सैकड़ों द्युलोक भी हों (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियाँ हों (सहस्रं सूर्याः) बहुत सूर्य भी हों (त्वा-अनु न) तेरे अनुरूप—तुल्य—गुण कर्म स्वरूप के प्रतिमान नहीं हैं (रोदसी जातं न-अष्ट) "रोदसी रोधसी रोधः कूलं निरुणद्धि स्रोतः" [निरु० ६।१] विश्व के दोनों कटाह सम्पुट उत्तर गोलार्द्ध दक्षिण गोलार्द्ध सीमा प्रान्त भी तुझ प्रसिद्ध को नहीं व्याप सकते हैं ।

हे ओजस्वी परमात्मन् ! यदि तेरे सम्मुख सैकड़ों द्युलोक हों और सैकड़ों भूमियाँ—पृथिवी लोक हों तथा बहुत सूर्य भी हों तेरे अनुरूप—गुण कर्म स्वरूप में तुल्य नहीं हो सकते एक एक की तो क्या कथा सब मिलकर भी तथा विश्व को थामने वाली दोनों उत्तर गोलार्द्ध दक्षिणगोलार्द्ध सीमाएं भी तुझ प्रसिद्ध सर्वत्र भीतर बाहर वर्तमान को व्याप नहीं सकती सीमित नहीं कर सकती हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ ऐसे अनन्त—आकाश से भी परे वर्तमान को "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः [ऋ० १।५२।१२] हम समझें ध्यावें ॥६॥

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में निरन्तर गमनप्रवेश करने वाला)

१ २ ३ २उ ३ २उक २ र ३२ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३१ २ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् (यत्) 'यदा' जब कि तू (नृभिः) स्वात्मा को ऊपर ले जाने वाले विद्वान् उपासकों द्वारा "नरो वै देवविशः" [जै० १।८९] (प्राक्-अपाक्-उदक्-न्यक्) पूर्व में, पश्चिम में, ऊँची दिशा में-उत्तर में, नीची दिशा में—दक्षिण में (हूयसे) आमन्त्रित किया जाता है—हृदय में स्मरण किया जाता है—बिठाया जाता है तब तू (पुरू सिम) "पुरुः पूर्वसवर्ण-दीर्घश्छान्दसः" बहुत श्रेष्ठ सर्वप्रशस्य परमात्मन् ! "सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते" [जै० ३।११] सुविभक्तेराकारादेशः "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेया..." [अष्टा० ७।१।३९] (नृषूतः-असि) उन नरों—विद्वान् उपासकों का प्रेरक होता है बन जाता है तथा (आनवे) समन्तात् स्तुति करने वाले के लिये पूर्ण आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिये (तुर्वशे प्रशर्ध-असि) शीघ्र "तुर्वशे क्षिप्रनाम" [निघं० २।१६] प्रशर्ध-प्रशर्धः "सुपां सुलुक्...." [अष्ट० ७।१।३९] इति सुविभक्तेर्लुक् "प्रकृष्ट उत्साहक" शर्धत्-उत्सहते [निरु० ४।१९] या स्वानन्दरस से पूर्ण रसीला बनाने वाला हो जाता है "शधु उन्दने" [भ्वादि०]

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू जब विद्वान् उपासकों द्वारा पूर्व में पश्चिम में उत्तर में दक्षिण में सर्वत्र स्थानों में अर्थात् सर्वत्र कहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जहाँ रहें या जाव आमन्त्रित किया जाता हृदय में स्मरण किया जाता है तो तू बहुत श्रेष्ठ—पूज्यतम तथा उन विद्वानों का प्रेरक बन जाता है तथा सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण करने वाले स्तोता-उपासक के लिये शीघ्र उत्साहक—आत्मबलदाता या अपने आनन्दरस से रसीला बनाने वाला हो जाता है ॥७॥

ऋषिः—वसिष्ठ (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

१र २र ३ १र २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाज ँ सिषासति ॥८॥

(वसो-इन्द्र) हे सबको वसाने वाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (तं त्वा) उस तुझको (कः-मर्त्यः-आदधर्षति) कौन मनुष्य अपने अनुकूल बनाता है (मघवन्) हे ऐश्वर्यवन् (श्रद्धा) 'श्रद्धया' टा विभक्ते लुक आन्तरिक सद्भावना से (हि) ही (ते) तेरे लिये जो (वाजी) वाजवान्—सोमवान्—उपासनारस वाला (वाजम्) सोम—उपासनारस को "सोमो वै वाजः" [मै० ४।५।४] (पार्ये दिवि) संसार से परे वर्तमान दिव्य धाम—मोक्ष के निमित्त देना चाहता है समर्पण करना चाहता है ।

सबको वसाने वाले परमात्मन् ! तुझे कौन मरणधर्मा संसारी मनुष्य अपने अनुकूल बनाता है, हाँ हम जानते हैं कि ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! जो ही उपासनारस वाला उपासक अपने उपासनारस को संसार से परे वर्तमान दिव्यधाम—मोक्ष के निमित्त तेरे लिये श्रद्धा से समर्पित करना चाहता है—समर्पित करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—भारद्वाजः (परमात्मा के लिये उपासनारस को धारण करने वाला उपासक)

देवता—इन्द्राग्नी देवते (ऐश्वर्यवान् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मा)

१ २ ३२ ३१र २र ३१ १
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
३ १र २र ३२३ १२३ १२ ३ २ ३१ २
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥६॥

(इन्द्राग्नी) हे ऐश्वर्यवन् और प्रकाशस्वरूप उभयरूप परमात्मन् ! (पद्वतीभ्यः) विभागवाली श्रद्धाओं—कामनाओं से—गन्धकामना रसकामना रूपकामना स्पर्शकामना शब्दकामनाओं से "कणे मनसी श्रद्धाप्रतिघाते" [अष्टा० १।४।६५] (पूर्वा) प्रथम सत्ता वाली "प्रज्ञा पूर्वरूपं श्रद्धोत्तररूपम्" [शा० आ० ७।१८] (इयम्-अपात्) विभागरहित गन्धादिरहित—केवल परमात्मपरायणा प्रज्ञा ऋतम्भरा प्रज्ञा (अगात्) उपासक को प्राप्त होती है (शिरः-हित्वा) संसार बन्धन के शिरोरूप राग को पृथक् करके हटाकर (जिह्वया) वाणी से "जिह्वा वाङ्नाम" [निघं० १।११] (रारपत् चरत्) पुनः पुनः तेरा जप करती हुई (त्रिंशत् पदानि) तीसों मुहूर्त "अत्यन्तसंयोगे द्वितीया" मानों दिन रात (न्यक्रमीत्) निकाल देती है ।

हे ऐश्वर्यवन् एवं प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! अलग अलग अपने अपने पदों भौतिक विभागों वाली श्रद्धाओं—इच्छाओं से पूर्व सत्तावाली यह भौतिक विभागरहित परमात्मपरायणा प्रज्ञा उपासक को प्राप्त होती हैं जो संसारबन्धन के शिर—राग को दूर करके हटाकर वाणी से तेरा जप करती हुई तीसों ही मुहूर्त—दिन रात निकाल देती है तू ऐसा प्रेमपात्र कृपा कर प्राप्त हो ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—बालखिल्याः-ऋषयः (आत्मबलसीमा में कुशल जन)

२ ३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥१०॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् तू ! (मितमेधाभिः-ऊतिभिः) मित—एकत्र स्थित—अविचलित अध्यात्म यज्ञ जिनसे हो रहें ऐसी "मेधः-यज्ञः" [निघं० ३।१७] अपनी रक्षाओं के साथ (नेदीयः-इत्) अतिसमीप—हमारे आत्मा में (आ-इहि) आ—प्राप्त हो (शन्तम) हे अत्यन्त कल्याणस्वरूप परमात्मन् ! तू (शन्तमाभिः-अभिष्टिभिः-आ) अत्यन्त कल्याणरूप इष्टपूर्तिकारक प्रवृत्तियों से आ—प्राप्त हो (स्वापे) हे अपने पन को प्राप्त होने वाले बन्धु परमात्मन् ! तू (स्वापिभिः-आ) स्व—अपनापन प्राप्त कराने वाली—अपना बनाने वाली भावनाओं के साथ आ—प्राप्त हो।

ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू एक—तुझ इष्टदेव पर निर्भर अध्यात्मयज्ञ सम्पादन वाली रक्षाओं के साथ अति समीप—आत्मा में ही प्राप्त हो तथा अति कल्याणस्वरूप ! तू अत्यन्त कल्याणकारी इष्ट पूर्तिकारक प्रवृत्तियों के साथ आ—प्राप्त हो एवं हे अपनेपन से प्राप्त होने वाले बन्धु परमात्मन् ! तू अपनापन कराने वाली—अपनाने वाली भावनाओं के साथ आ—प्राप्त हो ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधावाला विद्वान्)

३२ ३१ २ ३१२ ३२३१२
इत ऊती वा अजरं प्रहेतारमप्रहितम्
३१र २र३ १२ ३१२३१२ ३१२
आशुं जेतारꣳ होतारꣳ रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१॥

(वः) "वः-यूयम् विभक्तिव्यत्ययः" तुम उपासको ! (ऊती) अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिये (अजरम्) जरारहित—सदा एकरस युवा (प्रहेतारम्) प्रेरिता—उन्नत पथ पर ले जाने वाले— (अप्रहितम्) अन्य से अप्रेरित—स्वशक्ति से वर्तवान—(आशुम्) व्यापनशील—(जेतारम्) दुष्टों के दमनशील—(होतारम्-'हेतारम्') वर्धक—'हि वृद्धौ' [स्वादि०] (रथीतमम्) अत्यन्त रथी—जीवों के रमणस्थान—संसार के स्वामी—(अतूर्तम्) अप्रतिहत (तुग्रिया-वृधम्) "तुज आदाने" [चुरादि०] "तुज्यते-आदीयते परमात्मना तुक्"—उपासनारसः "तुजं राति यया क्रियाया सा तुग्री तया वर्धकम्" आदान करने योग्य उपासनारस देने की भावना बढ़ाने वाले परमात्मा को (इत) प्राप्त करो।

उपासक जनो ! अपनी रक्षा के लिये तुम ! एकरस युवा, उन्नत पथ पर प्रेरित करने वाले अन्य से अप्रेरित स्वशक्तिसम्पन्न व्यापनशील दुष्टों पर जयशील जीवकर्मों के ज्ञाता महान् रथ स्वामी—जीवों के रमणस्थान संसार के स्वामी लेने योग्य उपासनारस भेटकों की देने की भावना या प्रवृत्ति से बढ़ाने वाले परमात्मा को प्राप्त होओ ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि:—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले उपासक)

१र   २र ३ १ २ ३ २उ   ३ १र   २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मान्नि रीरमन् ।

३ १ २   ३ १ २ ३   १ २ ३ २ ३ १र २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि: ॥२॥

(सु) हे पूजनीय ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (वाघत:-चन) तेरी ओर हमें वहन करने वाले—पहुंचाने वाले अध्यात्म प्रवचनकर्ता जन "वाघत:-वोढार:" [निरु० ११।१६] (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (मा-उ) निश्चित नहीं—कभी नहीं (निरीरमन्) विरत—विगत—पृथक करते हैं "नि निषेधे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] अतः (आरात्तात्-वा) दूर से भी समीप से भी "आरात् शब्दात्स्वार्थे तातिल् प्रत्ययश्छान्दस:" (नः सधस्थम्) हमारे साथ होने वाले आनन्दस्थान अध्यात्मयज्ञ में (आ गहि) आ—समन्तरूप से प्राप्त हो (इह सन् वा) और यहाँ अध्यात्मयज्ञ में विराजमान हुआ—होकर (उपश्रुधि) प्रार्थना को स्वीकार कर ।

हे पूजनीय परमात्मन् ! तेरी ओर ले जाने वाले अध्यात्मवक्ता महानुभाव तुझे हमसे दूर कभी नहीं विरत करते हैं अपितु संयुक्त करते हैं अतः हम उनका सत्सङ्ग और स्वागत—सत्कार करते हैं, हे परमात्मन् यह हम जानते हैं तू दूर भी है समीप भी है "तद् दूरे तद्वन्तिके" [यजु० ४०।५] अतः दूर स्वरूप विभुरूप से भी और समीपस्वरूप अन्तर्यामीरूप से भी मेरे बाहर और भीतर हुआ इस अध्यात्मयज्ञ में प्रार्थना को स्वीकार कर ॥ २ ॥

ऋषि:—पूर्ववत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
१ २ ३ १२ २र ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणेत मयः ॥३॥

(वज्रिणे) ओजस्वी—"वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (सोमपाव्ने) उपासनारस का पान करने वाले—स्वीकार करने वाले—(इन्द्राय) परमात्मा के लिये (सोमं सुनोत) उपासनारस को निष्पन्न करो (अवसे) रक्षा के लिये "अवरक्षणगति-कान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेश........" [भ्वादि०] (पक्तीः पचत) परिपक्व करने योग्य—साधने योग्य चित्तवृत्तियों को परिपक्व करो अभ्यास वैराग्य द्वारा साधो—निरुद्ध करो (कृणुध्वम्) पुनः आत्मसमर्पण करो (इत्) इस प्रकार (पृणते) उपासनारस से प्रसन्न करते हुए या उपासनारस प्रदान करते हुए उपासक के लिये (इत्) अवश्य परमात्मा (मयः-पृणन्) सुख देता हुआ सदा वर्तमान रहता है "पृणाति दानकर्मा" [निघं० ३।१०] ।

हे उपासक जनो ! उपासनारस पान—स्वीकार करने वाले ओजस्वी परमात्मा के लिये उपासनारस को निष्पन्न करो इस कारण परिपक्व करने योग्य—निरुद्ध करने योग्य चित्तवृत्तियों को अभ्यास वैराग्य के द्वारा साधो—निरुद्ध करो पुनः आत्मसमर्पण करो इस प्रकार उपासनारस देने वाले उपासक के लिये परमात्मा सुख का दान—वरदान देता रहता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—शंयुः (सुखस्वरूप परमात्मा का इच्छुक)

१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तँ हूमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रमन्योतुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः-सत्राहा) जो सत्र—यज्ञ—अध्यात्म में आने वाला "सत्रं यज्ञमध्यात्मयज्ञमाहन्ति—आगच्छति "हन हिंसागत्योः" [अदादि०] 'गत्यर्थऽत्र हन धातुः' (विचर्षणिः) द्रष्टा अन्तर्यामी होने से उपासक के अभिप्राय को जानने वाला है "विचर्षणिः पश्यतिकर्मसु नामशब्दः" [निघं० ३।११] (तम् 'त्वाम्'-इन्द्रम्) उस तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (वयम्) हम (हूमहे) अध्यात्मयज्ञ में आमन्त्रित करते हैं (सहस्रमन्यो) हे बहुत मननीय ! या बहुत तेजोमय—अत्यन्त दीप्तिवाले ! "मन्युर्मन्यते-र्दीप्तिकर्मणः" [नि० १०।२९] (तुविनृम्ण) बहुत मोक्षैश्वर्यरूप धनवाले "तुवि बहुनाम" [निघं० ३।१] "असेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यकुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह" [श० १४।२।२।३०] (सत्पते) सत्पुरुषों उपासकों के पालक परमात्मन् ! तू (समत्सु नः-वृधे भव) विरोधी वृत्तियों के साथ हुए संघर्षों में हमारी वृद्धि के लिये हो।

जो अध्यात्मयज्ञ में आने वाला द्रष्टा अन्तर्यामीरूप से उपासक के सद्भाव को जानने वाला है उस तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को हम अपने अध्यात्मयज्ञ में आमन्त्रित करते हैं, हे बहुत मनन करने योग्य या बहुत दीप्तिमन् प्रकाशस्वरूप बहुत धन मोक्षैश्वर्य वाले तथा सत्पुरुषों उपासकों के पालक परमात्मन् ! तू विरोधी वृत्ति प्रवृत्तियों के संघर्षों में हमारी वृद्धि के लिये हो—सदा रह ॥ ४ ॥

ऋषिः—परुच्छेपः (पर्व पर्व में पदपर्व वाक्य पर्व तथा दिन रात्रि के पर्व पर अपने ज्ञान से परमात्मा का विशेष स्पर्श—आलिङ्गन करने वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता—अश्विनौ 'इन्द्रान्तर्गतौ—इन्द्ररूपौ' देवते (इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा के अन्दर वर्तमान ज्योति और आनन्दरस धर्म एवं उन दोनों धर्मों वाला इन्द्र

१ २ ३ २ ३ १ २
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
मा वाꣳरातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥५॥

(शचीवसू) हे ज्ञानज्योति देने वाली प्रज्ञा से तथा आनन्द-रस देने वाले कर्म से हमें बसाने वाले—दोनों रूपों वाले—इन्द्र परमात्मन् ! या दोनो धर्मों ! "शची प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] "शचीकर्मनाम" [निघं० २।१] (शचीभिः) ज्ञानज्योति निरन्तर प्रज्ञानों से तथा आनन्दरसप्रद निरन्तर कर्मों से (नः) हमारे (दिवा नक्तम्) दिन और रात्रि को (दिशस्यतम्) अतिसर्जित करो ज्ञान ज्योति से और आनन्दरस से सम्पन्न करो सूर्य जैसे दिन को ज्योति से चन्द्रमा जैसे रात्रि को रस से सम्पन्न करता है "अत्र लुप्तोपमानोपमावाचकालङ्कारः" 'दिश अतिसर्जने' [अदादि०] "मध्ये स्यप्रत्ययश्छान्दसः" "यद्वा दिशास नामधातुः सम्पादनेऽर्थे कण्ड्वादिगणे छान्दसः" (वाम्) हमारे लिये तुम्हारी (रातिः) दान—ज्ञानज्योति का दान और आनन्दरस का दान (कदाचन) कभी (मा) न (उपदसत्) क्षीण हो (अस्मद्रातिः कदाचन) हमारा उपासनारस दान तुम्हारे लिये कभी क्षीण न हो ।

हे ज्ञानज्योतिष्प्रद प्रज्ञा वाले तथा आनन्दरसप्रद कर्म वाले उभयरूप परमात्मन् ! तुम अपनी उक्त प्रज्ञाओं और कर्मों से हमारे दिन को ज्ञानज्योति से और रात्रि को आनन्दरस से सम्पन्न कर दो, तुम्हारा यह हमारे लिये ज्ञानज्योति का दान और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दरस का दान कभी क्षीण न हो तथा तुम्हारे लिये हमारा उपासनारस भेंटरूप दान कभी क्षीण न हो हम ज्ञानपूर्वक दिन बितावें जागे और आनन्दपूर्वक रात निकालें सोवें ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय इष्टदेव परमात्मा जिसका है ऐसा अनन्य उपासक)

देवता—वरुणरूप (वरने योग्य वरने वावा ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३२ ३१ २ ३१२ ३१ २ १ २
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ॥६॥

(मर्त्यः) मरणधर्मी जन्ममरण में पड़ा संसारी मनुष्य (स्तोता) परमात्मा का स्तुतिकर्ता हुआ—स्तुतिकर्ता बनकर (यदा कदा) जब कभी भी सुख में हो या दुःख में हो सम्पत्ति में या विपत्ति में (मीढुषे जरेत) सुखशान्तिवर्षक परमात्मा की स्तुति करें "जरते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (आत्-इत्) अनन्तर ही साथ ही (विव्रतानां धर्तारम्) विविधकर्मों—सृष्टि उत्पत्ति आदि तथा जीवों के कर्मफल विधान मोक्षानन्द प्रदान कर्मों के धर्ता—सम्पादन कर्ता—(वरुणम्) वरने योग्य वरने वाले या दुःखाज्ञान निवारक परमात्मा को (गिरा विपा) गरण भजन गुणगान करने वाली वाणी "विपा वाङ् नाम" [निघं० १।११] से (वन्देत) वन्दन करें—अभिनन्दन करें ।

सांसारिक बन्धन में पड़ा जन्ममरण में आने वाला मनुष्य जब कभी सुख में हो या दुःख में हो या सम्पत्ति में हो या विपत्ति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हो सांसारिक सुख तथा मोक्षानन्द की वृष्टि करने वाले पर-मात्मा की स्तुति किया करें सुखसम्पत्ति में गर्वरहित रहने का शान्तिबल मिलेगा और दुःख दारिद्र्य में सन्तोष सहारा मिलेगा साथ ही स्तुति के उस नाना प्रकार सृष्टि रचनादि तथा जीवों के कर्मफल मोक्षानन्द प्रदान आदिकर्मा के विधाता का स्पष्ट कथन करने वाला वाणी से वन्दन गुणगान भजन भी उसका करना चाहिए एकान्त में स्तुति स्तवन और सभा सम्मेलन में भी गुण-गान भजन करना चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः—(पवित्र करने वाले परमात्मा में निर-न्तर गमन प्रवेश करने वाला उपासक)

३ १ २र ३ २ ३ १ २
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
१र २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७॥

(मेध्यातिथे) हे पवित्र परमात्मा की प्राप्ति के लिए निरन्तर गमन करने वाले जीवात्मन् ! तू (अन्धसः-मदे) आध्यानीय परमात्मा के सङ्ग से प्राप्त होने वाले हर्ष—आनन्द के निमित्त (गाः पाहि) अपनी इन्द्रियों की रक्षा कर अनुचित भोगों में न जाने दें "इन्द्रियं वै वीर्यं गावः" [श० ५।४।३।१०] (यः) जो (हर्योः सम्मिशलः) ऋक् और सामों—स्तुति और उपासना के होने पर सम्यक् समागम को प्राप्त होने वाला "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [मै ३।१०।६] (यः-इन्द्रः-हिरण्ययः) जो इन्द्र परमात्मा ज्योतिर्मय है (वज्री हिरण्ययः) जो ओजस्वी आत्मा बलवाला ज्योतिर्मय है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे पवित्र परमात्मा की प्राप्ति के लिये निरन्तर अतनशील उपासक! उस समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के आनन्द के निमित्त अपनी इन्द्रियों की अन्यथा चेष्टा—अनुचित भोगों से बचा—संयम सदाचार में रख, जो परमात्मा स्तुति और उपासना के होने पर सम्यक् मिलने वाला है जो परमात्मा ज्योतिर्मय है वह परमात्मा सचमुच ओजस्वी—आत्मिक बल से युक्त ज्तोतिर्मय है ॥ ७ ॥

ऋषिः—भर्गः (तेजस्वी उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १र २र
उभय ँ् शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नः) हमारे (इदम्-उभयं वचः) इस दोनों प्रकार के स्तुतिवचन और उपासना वचन को (अर्वाक्-शृणवत्) इधर अन्दर अन्तर्यामीरूप होकर सुनें (मघवा शविष्ठः) प्रशस्त ऐश्वर्यवान् अत्यन्त या सब बलों से युक्त परमात्मा (सत्रा धिया) सत्ययुक्त प्रज्ञा से—हित बुद्धि से (सोमपीतये) उपासना रस को पान—स्वीकार करने के लिये (आगमत आवें ।

परमात्मा हमारे इन दोनों स्तुति वचन और उपासना वचन को इधर अन्दर अन्तर्यामी रूप से सुने—सुनता है और वह ऐश्वर्यवान् अत्यन्त बलवान् या सभी बलों से युक्त हुआ सत्य प्रज्ञा—हित बुद्धि से उपासनारस स्वीकार करने के लिये आवें—आता है ॥८॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मध्यातिथिश्च (मेधा से निरन्तर-अतन प्रवेश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला और मेध्य पवित्र परमात्मा में निरन्तर प्रवेशशील उपासक)

३२ ३ १ २ ३ १२३ १२
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
२ ३१ २ ३ १२ २२ ३ २ ३१ २
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥

(अद्रिवः-वज्रिवः शतामघ) हे आनन्द घनवन् ओजस्वी बहुत प्रकार के धनवाले! कोषवाले परमात्मन्! "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (त्वा) "त्वम्" सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छे....." [अष्टा० ७।१।३९] तू (शताय शुल्काय) सौ लक्ष्मी के लिये "श्रीर्वै शुल्कः" [जै० ३।२५८] (न परा दीयसे) नहीं त्यागा जाता है (सहस्राय न) सहस्र लक्ष्मी के लिये नहीं त्यागा जाता है (अयुताय न) लाख लक्ष्मी के लिये नहीं त्यागा जाता है (महे च न) लाख से महान् अधिक लक्ष्मी पाने के लिये भी नहीं त्यागा जाता है।

हे आनन्दघनवन्-आनन्द वरसाने वाले ओज-आत्मबल वाले महैश्वर्यवन् निधिपति परमात्मन्! हम तुझे सौ लक्ष्मी स्वर्ण धन पाने के लिये सहस्रलक्ष्मी स्वर्ण धन पाने के लिये लक्ष लक्ष्मी सुवर्ण धन पाने के लिये भारी लक्ष्मी सुवर्ण धन पाने के लिये त्याग नहीं कर सकते हैं। तेरे से प्राप्त होने वाले आनन्द ओज और ऐश्वर्य के सम्मुख सांसारिक भारी से भारी लक्ष्मी धन तुच्छ है ॥९॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३२ ३२३ ३१२
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
३ १२ ३१ १ ३२३ १२
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् (मे) मेरे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता से (उत) और (भ्रातुः) भ्राता से (वस्यान्-असि) अधिक वसाने वाला पालने वाला तू है (वसो) हे वसाने वाले परमात्मन् ! (माता च समा ये छदयथः) माता और तू इष्ट देव परमात्मा समान भाव से मेरा संवरण करते हो—रक्षण करते हो—पालते हो (वसुत्वनाय राधसे) अत्यन्त वसाने वाले "वसु शब्दात् त्वनप्रत्ययोऽतिशयार्थश्छान्दसः" धनप्राप्ति के लिये हमें अपनी शरण में लेता है।

संसार में पिता और भ्राता सम्भव है पालन न कर सके परन्तु परमात्मन् ! तू अत्यन्त वसाने वाला है—पालन करने वाला है, माता और परमात्मन् ! तुम दोनों समान पालन करने वाले हो माता भी कभी पालन करना नहीं त्यागती ऐसे परमात्मन् ! तू भी पालन करना नहीं त्यागता। माता सांसारिक धन से या स्व-शरीर गत दूध से पालन करती है परन्तु वसाने वाले परमात्मन् ! तू तो अत्यन्त वसाने वाले आध्यात्मिक धन प्राप्ति के लिये हमें अपनी शरण देता है ॥ १० ॥

सप्तम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
१र २ र ३२३१२ ३ २३ २
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वज्रहस्त) विश्व का शासन हाथ में रखने वाले परमात्मन् ! "वज्रः शासः" [श० ३।८।१।५] (इमे) ये (दध्याशिरः) दधिध्यान के आश्रय—आश्रित "दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानमिति प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा" [निरु० १२।३४] "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६।८] (सोमासः) सोम-उपासनारस (इन्द्राय) तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (सुन्विरे) निष्पन्न किये गये हैं (तान्) उन्हें (मदाय) प्रीति के अर्थ (पीतये) पान करने-स्वीकार करने के लिये (आयाहि) आ-प्राप्त हो (हरिभ्याम्-ओकः-आ) दुःखाज्ञानापहरणशील तथा सुखाहरणशील ज्योति और आनन्द स्वरूपों से मेरे हृदय—आत्मा के निवास-गृह को आ प्राप्त हो। "ओक इति निवासनाम" [निरु० ३।३]

हे विश्व के शासन को सम्भालने वाले परमात्मन् ! ये ध्यान चिन्तन से मिश्रित उपासनारस तुझ ऐश्वर्यवान् के लिये निष्पन्न हैं उन्हें हमारे प्रति प्रीति के निमित्त पान करने-स्वीकार करने के लिये प्राप्त हो, दुःख अज्ञान के अपहरण करने वाले तथा सुख के आहरण करने वाले अपने ज्योति और आनन्दमय स्वरूपों के साथ मेरे निवास स्थान हृदय गृह को प्राप्त हो ॥१॥

३ १ २ ३ १ २ २ १ ३ ३ १ २
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥२॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य देव जिसका है ऐसा उपासक)

(इन्द्र) ऐश्वययवन् परमात्मन् ! (इमे) ये (उक्थिनः) प्रशस्ति वाले (सोमाः) उपासनारस (ते मदाय) तेरे प्रीति प्रसाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये (चिकित्रे) जाने गये प्रसिद्ध किये गये हैं "कित ज्ञाने" [भ्वादि० लिटि] "इरयो रे" [अष्टा० ६।४।७६] (गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय (मधोः पपान) इनके मधु-मीठे रस को पान कर-स्वीकार कर (नः-गिरः) हमारी प्रार्थनाओं को (उपश्रृणु) स्वीकार कर अतः (स्तोत्राय रास्व) आत्मा—उपासक आत्मा के लिये "आत्मा वै स्तोत्रम्" [श० ५।२।२।२] स्वदर्शन या अपना आनन्द प्रदान कर।

ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! ये प्रशस्ति वाले उपासनारस तेरे प्रीति प्रसाद के लिये प्रसिद्ध किए जाते हैं, तू इनके मधु-मीठास को स्वीकार कर हे स्तुतियों से सेवनीय परमात्मन् ! प्रार्थनाओं को स्वीकार करके स्तोता-आत्मा के लिये अपने दर्शन या आनन्द को प्रदान कर ॥२॥

ऋषिः—मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च विश्वामित्रः केचित् (मेधा से निरन्तर गमन प्रवेश करने वाला और पवित्र परमात्मा की ओर जाने वाला उपासक या सबका मित्र उपासक)

१ २ १ २३ २ ३१ २ ३ १२
आ त्वा३ द्य सबर्दुघाᳬहुवे गायत्रवेपसम् ।
१२ ३२ ३ २ ३ २ ३१२ ३१ २ ३ १२
इन्द्र धेनु सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (अद्य) आज-अब (त्वा सबर्दुघाम्) सब कुछ दुहने वाली "रेफस्य स्थानविपर्यासः" यद्वा वर्-वरणीयमात्र सहित दोहन वाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसनीय कर्म प्रवृत्ति वाली "वेपस् कर्मनाम" [निघण्टु २।१] (उरुधाराम्) बहुधारा वाली (सुदुघाम्) सुगमता से दोहने-योग्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्याम्-इषम्) विरली एषणीय—कमनीय (अलङ्कृतं धेनुम्) गुणों से सुभूषित गौ को (आहुवे) आमन्त्रित करता हूँ।

ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! आज--इस जीवन में तुझ सब कुछ दुहने वाली या सवर्-वरणीय सहित अमृत दुहने वाली—प्रशंसनीय कर्म-प्रवृत्ति वाली मोक्ष की ओर ले जाने वाली बहुत धाराओं वाली सुगमता से दुहने योग्य विरली एषणीय-कमनीय गुणालङ्कृत गौ को आमन्त्रित करता हूँ—ऐसी गौ मेरे हृदय में सदा वास करे ॥३॥

ऋषिः—नोधाः (नवन—स्तवन—स्तुति को धारण करने वाला उपासक †)

१ २ ३२ ३ १२ ३ १२ ३१२
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः।
१२ २१ २ १२ १२ ३ २ ३ २ ३१२ २२
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥४॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (बृहन्तः) ऊँचे-ऊँचे या बड़े-बड़े (वीडवः) दृढ़—अचल—अडिग "वीड्वङ्ग दृढाङ्ग" [निरु० २।११] या बलवान् "वीलु बलनाम" [निघं० २।९] "मतुब्लोपश्छान्दसः" (अद्रयः) अदरणीय—न विदारण करने योग्य—न हटने हटाने योग्य सीमाप्रदेश "अद्रयः, अदरणीयाः क्वचित् पाठः" [निरु० ९।९] "एष सूर्यो वा अद्रिजाः" [ऐ० ४।२०] या आदारण शस्त्रधारी जन "अद्रिरादृणात्येतेन" [निरु० ४।४] "मतुब्लोपश्छान्दसः" (त्वा) तुझे (न वरन्ते) नहीं रोकते हैं तथा (मावते स्तुवते) मेरे जैसे "युष्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्यः" [वा० अष्टा० ५।१।६१] स्तुति करते हुए के लिये (यत्-वसु

---

† "नोधाः-नवनं स्तुतिं दधाति" [निरु० ४।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षसि) जो अध्यात्म धन—स्वानन्द धन तू देता है "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३।२०] (ते) प्राप्त हुए तेरे इस धन को (न किः) नहीं कोई (आमिनाति) सर्वथा किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं कर सकता है।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! ऊँचे-ऊँचे दृढ़—अचल—अडिग सीमा प्रदेश भी या बड़े-बड़े बलवान् आदारण—चकनाचूर कर देने वाले शस्त्रधारी जन भी तुझे मुझ उपासक तक पहुँचने के लिये नहीं रोक सकते तथा मेरे जैसे स्तुति करने वाले उपासक के लिये जो अध्यात्म धन स्वानन्द तू प्रदान करता है उसे भी कोई नहीं मिटा सकता है ॥४॥

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से निरन्तर अतन गमन-प्रवेश करने वाला उपासक)

१ २ ३ २उ ३ १२ ३ १र २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ १ २
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ ५ ॥

(सुते सचा पिबन्तम्) उपासक के निष्पन्न उपासनारस होने पर उपासनारस निष्पादक के साथ समकाल ही पीते हुए—स्वीकार करते हुए को (कः-ईं वेद) कौन ही ऐसे जानता है जैसे अन्तरात्मा में विराजमान हो उसका पान करता है—स्वीकार करता है (कत्-उ-वयः- दधे) फलरूप में किसी विलक्षण जीवन—ऊँचे जीवन को—अध्यात्म जीवन को धारण करता है (यः-अयम्) जो यह (शिप्री) विभुगतिमान् (अन्धसः-मन्दानः) आध्यानीय उपासनारस के पान से प्रसाद को प्राप्त हुआ-प्रीति करता हुआ (ओजसा) स्वात्मशक्ति से (पुरः-विभिनत्ति) मानस भूमियों-मन बुद्धि चित्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहङ्कार "मन एव पुरः" [श० १०।३।५।७] गुणस्वरूपों से खोलता है—विकसित करता है।

उपासक के निष्पन्न उपासनारस को उसके साथ समकाल में ही पान करते हुए—स्वीकार करते हुए परमात्मा को कौन जानता है अर्थात् कोई नहीं केवल उपासक ही जान पाता है ऐसा कहा जाए तो कहा जावे कौन विलक्षण जीवन उसे धारण कर सकता है। वह विभुगतिमान् परमात्मा उपासनारस के पान से प्रसन्न हुआ अपने आत्मबल—आत्मशक्ति से उपासक के मन बुद्धि चित्त अहङ्कार को खोलता है—विकसित करता है ॥५॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय—उपासनीय इष्टदेव वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्माकमꣳशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधिबर्हय ॥६॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (यत्) जिस कारण (शासः) तू शासक—शिक्षक है मुझे यथावत् आचरण की शिक्षा देने वाला है अपने आन्तरिक सदुपदेश से (अव्रतम्) विहित कर्म सत्य आदि के विरुद्ध अनाचरणीय पापकर्म या पापसङ्कल्प को (सदसः-परिच्यावय) मेरे अन्तःसदन—अन्तःकरण या मन से परे निकाल दे—हटा दे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (अस्माकम्) हमारे (पुरुस्पृहम्) बहुत वाञ्छनीय—स्वीकरणीय (अंशुम्) जीवन के लिये कल्याणकर उपासनारस प्राणस्वरूप को "अननाय शम्भवतीति" [निरु० २।५] "प्राण एवांशुः" [श० ११।५।९।२] (वसव्ये-अधिबर्हय) मेरे वसने योग्य हृदयस्थान में अधिकाधिक बढ़ा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! जबकि तू मेरा शासक है—शिक्षक है फिर मुझे आन्तरिक भाव से उपदेश देकर अज्ञात अनाचरणीय पाप कर्म या अचिन्त्य पापसङ्कल्प को मेरे अन्तःसदन—अन्तःकरण—मन से पृथक् कर दूर रख, हमारे जीवन के लिये बहुत वाञ्छनीय कल्याण कर प्राणस्वरूप उपासनारस को हमारे बसने योग्य हृदय स्थान में अधिकाधिक बढ़ा ॥६॥

ऋषिः—पूर्ववत् !

देवता—बह्वो लिङ्गोक्ता देवताः "इन्द्रपरायणाः" (इन्द्र ऐश्वर्यवान् के अधीन मन्त्र में कहे हुए स्वरूप)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
२ १र २र २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३२
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७॥

(पुत्रैः-भ्रातृभिः) पुत्रों भ्राताओं के सहित (नः-दैव्यं वचः) हमारे देव के प्रति प्रार्थना वचन को (त्वष्टा) जगत् का घड़ने वाला (पर्जन्यः) तृप्तिकर्ता जनक (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड का स्वामी (अदितिः) समस्त देवों का मातृरूप इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा (नु पातु) अवश्य पालें सफल करें, यतः (नः-दुष्टरं त्रामणं वचः) हमारा यह प्रार्थनावचन दुर्निवार—पूरण करने योग्य रक्षा करने वाला है ।

जगन्निर्माता तृप्तिकर्ता जनक ब्रह्माण्डस्वामी देवों का मातृरूप परमात्मा पुत्रों भ्राताओं सहित किये गये प्रार्थना वचनों को सफल करें । यह हमारा प्रार्थना बचन दुर्निवार्य-त्राण कारक है ॥७॥

ऋषिः—बालखिल्याः (बल खिल—दो बलों परमात्म बल और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्म बलों के अन्तर—स्वरूपों के जानने में कुशल जन)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
२ ३ १र २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (कदाचन) कभी भी (स्तरीः-न-असि) वधक नहीं होता है 'स्तृणाति वधकर्मा' [निघं० २।१९] 'तत ई प्रत्ययश्छान्दसः कर्तरि' (दाशुषे सश्चसि) आत्म-दान या उपासनारस प्रदान करने वाले के लिये गति करता है अपने को पहुँचाता है "सश्चसि गतिकर्मा" [निघं० २।१४] 'देहि में ददामि ते' [यजु० ३।५०] (मघवन्) हे प्रशस्त धन वाले परमात्मन् ! (ते देवस्य दानम्) तुझ देव का दान आत्मस्वरूप का प्रदान—ब्रह्मानन्द दान (इत्-उ) अवश्य ही (भूयः) अधिकाधिक (नु) निश्चय (उप-उप पृच्यते) समीप उपपृक्त—उपसंयुक्त होता है।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू कभी भी उपासक का वधक नहीं होता है अपितु हितसाधक होता है, आत्मदान आत्मसमर्पण करने वाले या उपासनारस देने वाले के लिये तू भी अपने आपको पहुंचाता है यह तुझ देव का विचित्र दान है जो उपासक के आत्मदान या उपासनारस दान से भी निश्चय अधिक दान है वरदान है जो कि उपासक के अन्दर समीप से समीप उपसंयुक्त हो जाता है ॥८॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः (पवित्र देव की ओर निरन्तर गमनशील)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १ २
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मघवन् वृत्रहन्तम-इन्द्र) हे प्रशस्त धन वाले अत्यन्त पापाज्ञान नाशक परमात्मन् ! तू (परावतः-अर्वाचीनः) दूर से दूर में वर्तमान विभु होता हुआ "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १।५२।१४] या मोक्ष-धाम से—"अन्तौ वै परावतः" [ऐ० ५।२] अर्वाक्-इधर हृदयस्थ हुआ (हि) अवश्य (हरी युङ्क्ष्व) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले अपने दया और प्रसाद धर्मों को युक्त होकर (सोमपीतये) उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये (उग्रः) ऊंचे बल वाला होता हुआ (ऋष्वेभिः-आगहि) अपने महान् गतिक्रमों प्रापणधर्मों से आ—आजा "ऋष्वः-महन्नाम" [निघं० ३।३] "ऋषी गतौ" [तुदादि०] ततः कन् प्रत्ययः ।

प्रशस्त धन वाले अत्यन्त पापाज्ञानान्धकारनाशक परमात्मन् ! तू दूर से दूर में वर्तमान अपने विभुरूप में होने पर भी इधर हृदयस्थ होकर दुःखापहरण करने वाले और सुखाहरण करने वाले अपने दया और प्रसाद धर्मों को मेरे अन्दर युक्त कर उपासनारस के पान—स्वीकार करने के लिये ऊंचे बलवाला होता हुआ अपने महान् गतिक्रमों या प्रापण धर्मों में आ ॥ ९ ॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधावाला जन)

२ ३ १२ २र ३ १ २
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
१ २ ३ १ २ ३१ ३ २ ३ १ २ ३१ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥

(वज्रिन्) हे ओजस्वी परमात्मन् ! "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (भूर्णयः-नरः) भरण—तुझे अपने अन्दर भरने स्थापित करने वाले उपासक जन (त्वाम्) तुझे (ह्यः) गए

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल—गत समय में (इदा) और अब (अपीप्यन्) अपना उपासनारस पिलाते रहे—पिलाते हैं (सः) वह (इन्द्र) तू परमात्मन् ! (इह) यहाँ फलदानप्रसङ्ग या वरदानप्रसङ्ग में या प्रतिदानप्रसङ्ग में (स्तोमवाहसः उपश्रुधि) स्तुति को पहुंचाने वाले हम जनों को उपश्रुत कर—उपकृत कर अपना बना, अतः (स्वसरम् आगहि) हमारे हृदय गृह को आ—प्राप्त हो "स्वसराणि गृहाणि" [निघं० ३।४] जिससे उनके अभीष्ट को जानकर हमें उपकृत कर सकें।

ओजस्वी परमात्मन् ! तुझे अपने अन्दर भरने स्थापित करने वाले उपासक जन कल—पीछे और अब भी उपासनारस पान कराते रहे और अब भी पान कराते हैं स्तुति पहुंचाने वाले उपासकों को भी उपकृत कर—करता है—उन हमको कभी उपेक्षित नहीं करता है अतः उपकृत करने के हेतु हमारे हृदय गृह को आ—प्राप्त हो ॥ १० ॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपसक)

देवता—उषाः 'इन्द्रप्रसक्तोषाः' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध उषा—ज्ञानज्योति)

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
प्रत्यु अदर्श्यात्यायू३च्छन्ती दुहिता दिवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिवः-दुहिता) सूर्य की दुहिता—ज्ञानप्रकाशक परमात्मा को दूहने वाली श्रद्धा प्रज्ञा का उत्कृष्टरूप ज्ञानज्योति "श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता" [श० १२।७।३।११] "प्रज्ञा पूर्वरूपं श्रद्धोत्तर-रूपम्" [शां—आ० ३।७, कौ० उ० १।७] (आयती) आती हुई—प्राप्त होती हुई (उच्छन्ती) अज्ञान एवं संसारमोह को हटाती हुई (प्रत्यदर्शि-उ) उपासकों द्वारा प्रतिलक्षित होती है प्रत्यक्ष होती है "लुप्तोपमावाचकालङ्कारः" जैसे (मही सूनरी) महत्त्ववाली उषा "सूनरी उषो नाम" [निघं० १।८] (चक्षुषा) 'चक्षुषः' 'आकारादेशश्छान्दसः' नेत्र के आगे आने वाले (तमः) अन्धकार को (उ-अपवृणुते) निश्चय हटाती है (ज्योतिः-कृणोति) प्रकाश को सामने करती है।

ज्ञानप्रकाशक परमात्मा की दूहने वाली उपासक के अन्दर उसके दर्शनामृत को खींच ले आने वाली श्रद्धा जो कि प्रज्ञा से भी ऊंची ज्ञानज्योति उपासक के अन्दर आती हुई अज्ञान एवं सांसारिकमोह को हटाती मिटाती हुई उपासकद्वारा प्रत्यक्ष होती है जैसे महत्त्वपूर्ण प्रातःकालीन उषा—प्रभा नेत्र के आगे आने वाले अन्धकार को नितान्त हटाती है और प्रकाश को सामने कर देती है ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—'अश्विनौ' इन्द्रसम्बद्धौ (परमात्मा के प्रकाश और आनन्द गुणस्वरूप)

३१ २ ३ १२ ३१ २
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
३१ २३१ २ ३ १२ ३ १ २र
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशं विशं हि गच्छथः ॥२॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उस्रा-अश्विना) हे इन्द्र ऐश्वर्यवन् परमात्मा के वसाने वाले व्यापनशील ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस (वाम्) तुम दोनों को (इमाः-दिविष्टयः) ये दिव्य—अमृत मोक्ष को चाहने वाली प्रजाएं—उपासक जन (हवन्ते) बुलाते हैं—आकर्षित करते हैं (वाम्) जैसे तुम दोनों को (अवसे) रक्षार्थ (अयम्-अह्वे) यह मैं बुलाता हूं—आकर्षित करता हूं वैसे तुम (शचीवसू) प्रज्ञा से वसने वाले (विशं विशं हि गच्छथः) प्रत्येक मनुष्य ही को प्राप्त होते हो।

हे वसाने वाले परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस धर्मों तुम्हें मोक्ष को चाहने वाले मुमुक्षु उपासक जन अवश्य अपने अन्दर आमन्त्रित करते हैं—आकर्षित करते हैं, सो यह मैं भी अपनी रक्षार्थ तुम्हें आमन्त्रित करता हूँ, वैसे तुम प्रज्ञा से वसने वाले होकर प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त होते हो प्रज्ञावान् मनुष्य तुम्हें अपने अन्दर अवश्य धारण करता है ॥ २ ॥

देवता—पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः।
३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
घ्नता वामश्मया क्षयमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

(अश्विना देवा) हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्द-रस देवो ! (कः कुष्ठः-मर्त्यः) कौन पृथिवीस्थ—प्रथित संसार का मरणशील नश्वर पदार्थ (वां तपानः) तुम्हारा तापक—अभिभूत करने वाला है ? कोई नहीं (वाम्) तुम्हारा (अश्मया घ्नता-अंशुना) व्यापने वाले तुम्हें प्राप्त होने वाले उपासनारस से "हन्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[हिंसागत्योः" [अदादि०] 'इत्यत्र गत्यर्थो हन् धातुः' (इत्थम्-उ) (यथा-आद्वन्-क्षयमाणः) ऐसे ही जैसे अन्न आदि भोजन [साधनवान् ऐश्वर्यशाली होता है "क्षयति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २।२१] (इत्थम्-उ) ऐसे ही ऐश्वर्यशाली होते हैं '

हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश और आनन्दरस दिव्य धर्मों ! इस प्रथित संसार में मरणधर्मी नश्वर पदार्थ कौन है ? अर्थात् कोई नहीं जो तुम्हारा तापक—विरोधी अभिभूत करने वाला हो, अपितु व्यापने वाले तुम्हें प्राप्त होने वाले उपासनारस से तुम ऐसे ऐश्वर्यशाली बन जाते हो जैसे भोजन साधन वाला जन ऐश्वर्यशाली हो जाता है, अतः मेरे उपासनारस से प्रभु के ज्ञानप्रकाश और अमृतानन्द तुम मेरे अन्दर बढ़ते रहो ॥ ३ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (कण्वाग्र— ऊंचा मेधावीजन)

देवता—पूर्ववत् ।

३२ ३ १२ ३२ऊ ३ १ २
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
१२ ३ १ २ ३ २ १र २र ३ १ २
तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४॥

(अश्विना) हे परमात्मा के ज्ञानप्रकाश करने वाले और आनन्दरस देने वाले धर्मों (वाम्) तुम्हारे लिये (दिविष्टिषु) दिव्य अमृतलोक मोक्ष कामनार्थ अध्यात्मप्रसङ्गों में या निमित्तों में (अयं मधुमत्तमः सोमः) यह अत्यन्त मधुमान्—माधुर्ययुक्त उपासनारस (सुतः) निष्पन्न है तैयार है (तं तिरः-अह्न्यं पिबतम्) उस निरन्तरपूर्व दिनों से चले आये अर्थात् दीर्घकाल से परिपक्व या सम्प्रति—अभी 'तिरः सतः……प्राप्तस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम' 'तिरस्तीर्णं भवति' [निरु० ३।००] आज ही प्रसिद्ध किये गये निर्दोष निर्मल उपासनारस को पान करो—स्वीकार करो (दाशुषे) उपासनारस द्वारा अपने को प्रदान—समर्पण करने वाले—उपासक के लिये (रत्नानि धत्तम्) रमणीय—अध्यात्म सुख साधनों को धारण कराओ या दो।

परमात्मा की ज्ञानप्रकाश तथा आनन्दरस प्रसारक शक्तियों ! तुम्हारे लिये दिव्य अमृतलोक मोक्षकामनार्थ अध्यात्म प्रसङ्गों या निमित्तों में यह अत्यन्त मीठा—श्रद्धाभरा उपासनारस तैयार है उसे निरन्तर पूर्व दिनों से चले आए—दीर्घकाल से परिपक्व हुए या अभी आज ही प्रसिद्ध किए निर्दोष निर्मल सबल को पान करो—स्वीकार करो पुनः उपासनारस प्रदानद्वारा अपना समर्पण करने वाले उपासक के लिए रमणीय अध्यात्म सुख साधनों को धारण कराओ—प्रदान करो ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेधातिथि र्मेध्यातिश्च (मेधा से निरन्तर गमन परमात्मा में प्रवेश करने वाला और पवित्र परमात्मा में निरन्तर प्रवेश करने वाला उपासक)

आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥

(अहं सदा याचन्) मैं उपासक सदा याचना करता हुआ (त्वा भूर्णिम्) तुझ भरण पालन करने वाले परमात्मा को "भृञ् धारणपोषणयोः" [जुहो०] "घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णयः [उणा० ४।५२] 'नि प्रत्ययान्तो निपात्यते' (चुक्रुधम्) 'क्रोध-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येयम्' "क्रुधधातोर्णिजन्ताच्चङि छान्दसं रूपम्" मैं क्रुद्ध करूं (आ) यह ऐसा करना भर्त्सनीय है मेरा निन्दनीय कर्म है "आ भर्त्सनाश्चर्ययोः" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (ज्या मृगं न) 'ज्या-ज्यया' बाणसहितधनुष डोरी से पीड़ित किए मृग—वन्य पशु को जैसे क्रुद्ध कर देते हैं ऐसा याचना से भरणकर्ता परमात्मा को मैं क्रुद्ध करूं परन्तु (सवनेषु) अध्यात्म यज्ञावसरों में (सोमस्य गल्दया) उपासनारस के गालन—स्रावण से प्रवाहित प्रेरित करने के द्वारा मैं याचना करता हूं "गल्दया गालनेन" [निरु० ६।२४] (कः-ईशानं न याचिषत्) कदाचित् क्रुद्ध होने की आशङ्का से कौन स्वामी को याचना नहीं कर सके—कर सकेगा।

भरणपोषण करने वाले परमात्मा से सदा याचना करके क्रुद्ध करना ही है विना उपासनारस प्रेरित—समर्पित करे, केवल याचना करते रहने से परमात्मा प्रसन्न नहीं होता, किन्तु बाण से ताडित सिंह की भांति अपने पर उसे क्रुद्ध करना समझना चाहिए, हाँ अध्यात्मयज्ञप्रसङ्गों में उसे उपासनारस समर्पण करते हुए याचना करें उस स्थिति में क्रुद्ध होने की आशङ्का नहीं, कौन होगा जो याचना न करें अर्थात् अभागा ही होगा ॥ ५ ॥

ऋषिः—देवातिथिः (इष्टदेव परमात्मा में निरन्तर गति प्रवृत्ति वाला उपासक)

१ २ ३ १ ३ २उ ३ १ २
अध्वर्यो द्रावया त्वꣳसोममिन्द्रः पिपासति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर—अध्यात्मयज्ञ को प्राप्त होने वाले उपासक ! (त्वम्) तू (सोमं द्रावय) उपासनारस को निष्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर (इन्द्रः पिपासति) परमात्मा उसे पीना चाहता है—स्वीकार करना चाहता है, पुनः (उ नूनम) हाँ निश्चय (वृषणा) सुख-वृष्टि करने वाले (हरी) दुःखापहरण करने और सुखाहरण करने वाले दया और प्रसाद धर्मों को (युयुजे) युक्त करता (च) और (वृत्रहा-आजगाम) पाप मिटाने वाला आता है।

हे उपासक ! तू उपासनारस निष्पादन कर परमात्मा इसे अवश्य पान करेगा—स्वीकार करेगा तभी वह अपने दया और प्रसादधर्म को उपासक के अन्दर युक्त करेगा और पापनाशक साक्षात् होगा ॥ ६ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरे भरे च हव्यः ॥७॥

(ज्यायः-इन्द्र) हे मेरे ज्येष्ठ श्रेष्ठ—बड़े भ्राता परमात्मन् ! "स नो बन्धुर्जनिता" [यजु० ३२।१०] (कनीयसः सतः) मुझ छोटे भ्राता सदाचारी होते हुए के (तत्) उस दातव्य मोक्षधन को (अभि-आभर) मेरी ओर आभरित कर—निःसङ्कोच मुझे देदे (मघवन्) हे प्रशंसनीय धनवाले ! (पुरूवसुः-हि) तू बहुत धनवाला है ही—धन की कमी तेरे पास नहीं (च) और (भरे भरे हव्यः-बभूविथ) संसार में भी प्रत्येक भरण अवसर पर—जब-जब मैं भरणीय होऊं किसी भी प्रकार ह्रास में होऊं तब तू मेरा देने वाला हो "हव्यः कर्तरि यत्-कृत्यल्युटो बहुलम्" [अष्टा० ३।३।११३]।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मन् ! तेरा मेरा भ्रातृसम्बन्ध भी है तू मेरा बड़ा भ्राता है छोटा भ्राता बड़े भ्राता का भरणीय होता है और मैं तो सदाचारी तेरा अनुवर्ती हूं अतः मुझ छोटे भ्राता के देने योग्य मोक्षधन मेरे अन्दर आभरित कर—मुझे उदारता से दे दे, हे प्रशंसनीय धन देने वाले परमात्मन् तू तो बहुत धन वाला है अतः संसार में भी भरणीय पोषणयोग्य ह्रासप्रसङ्ग में तू मुझे देने वाला बना रहे ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३   २ ३ १ २ ३ १२   २२
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
३ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८॥

(रदावसो-'रदवसो' इन्द्र) हे धन की खान परमात्मन् "वसूनां धनानां रदः खनिः" "राजदन्तादिषु परम्" [अष्टा० २।२।३१] "वसुशब्दस्य परनिपातः" "रदति खनतिकर्मा" [निघं० २।२७] 'रद्यते सुवर्णादिधनं यस्माद् स रदः' घञर्थे कविधानम् (यद् यावतः) यदि जितने धन ज्ञान आदि का (त्वम्) स्वामी है (अहम्-ईशीय) मैं स्वामी हो जाऊं तो (स्तोतारम्-इत्) स्तोता—स्तुति करने वाले के प्रति ही (दधिषे) धर दूं—दे डालूं (पापत्वाय) पापपन—पापी जन के लिये (न रंसिषन्) नहीं रमण चाहता—नहीं दूं ।

हे धन की खान परमात्मन् ! जितने धन ऐश्वर्य का तू स्वामी है यदि उतने धन का मैं उपासक भी स्वामी बन जाऊं तो स्तुति करने वाले को दे डालूं धन की खान तू है मैं नहीं, होता माँगता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों ! अतः तू मुझ स्तोता को अपना धन खुल कर दे यह स्वार्थ धनप्राप्ति में हेतु भावनात्मक है अतिशयालङ्कार दिया है पापी को कभी न देता तू पापी को न दे परन्तु अपने उपासक धर्मात्मा को अवश्य दे और मैं दूंगा ही, जब तेरा उपासक इतना उदार है तो तू भी तो महान् उदार है वस्तुतः तेरा धन तेरे लिये है ही नहीं तू ने तो उपासक के लिये ही रखा हुआ है ॥ ८ ॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक मेधा वाला)

१ ३ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ॥९॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) हमारे आत्मभाव को हिंसित करने वाले प्रसङ्गों में होने वाला "प्रपूर्वकात्-तुर्वि हिंसिर्थः" [भ्वादि०] "अधिकरणे क्तिन्" (विश्वाः स्पृधः) समस्त विरोधी भावनाओं—आसुरी वृत्तियों को (अभि-असि) अभिभूत करता है—तिरस्कृत करता है—विनष्ट कर देता है (अशस्तिहा) अप्रशस्ति—अकीर्तिकर—अनिष्ट का नाशक अपितु (जनिता) शस्ति—कीतिकर अभीष्ट का जनयिता—उत्पन्नकर्ता एवं (त्वम्) तू (तरुष्यतः-तूर्य) हे हिंसकों को हिंसित करने वाले ! "तुरुष्यति-हन्तिकर्मा" [निरु० ५।२] (वृत्रतूः-असि) पापों का नाशक है ।

परमात्मा हम उपासकों के आत्मभाव को हिंसित करने वाले प्रसङ्गों में समस्त विरोधी वृत्तियों को उठने नहीं देता तथा अकीर्ति कर अनिष्ट को नष्ट करता और कीतिकर अभीष्ट को प्राप्त कराता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है पापों को नष्टकर्ता अपितु हमारे पीड़ा पहुँचाने वाले का भी नाशक बनता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—नोधाः (नवन—स्तवन को धारण करने वाला)

१२ २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥

(यः) जो तू इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा ! (ओजसा) आत्मिक ओज—स्वगत आत्मस्वरूप बल से (दिवः-सदोभ्यः-परि) द्युमण्डल के प्रदेशसीमाओं से (प्ररिरिक्षे) प्रकर्ष से अर्थात् बहुत अतिरिक्त—पृथक् होकर भी वर्तमान है तथा (पार्थिवं रजः) पृथिवीक्षेत्र का रज—परिसीमित लोक—पिण्ड या धूलभाग (त्वा न विव्याच) तुझे नहीं व्यापता है, अपितु (विश्वम्-अति ववक्षिथ) विश्व का अतिक्रमण कर उसे वहन करता है सम्भालता चलाता है या हमें विश्व से अलग स्वरूप मोक्ष में ले जाना चाहता है ।

परमात्मा सबल स्वात्मस्वरूप से द्युमण्डल के सीमावर्ती प्रदेश को पार किए हुए विराजमान हैं तथा पृथिवीक्षेत्र के सीमावर्ती लोक धूलभाग की व्याप्ति से परे है अपितु समस्त लोकमण्डल या संसार से अलग होकर उसे सम्भालने और चलाने वाला एवं विश्व से परे हमें मोक्ष में ले जाना चाहता है ऐसा एक मात्र परमात्मा है तब हम ऐसे परमात्मा के अनुकूल हों उसकी उपासना करें ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम खण्ड

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १र २र ३ २ २क २र ३ १ २ ३ १ २
असावि देवं गोऋजीकमन्धोन्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसा मदेषु ॥१॥

(गोऋजीकं देवम्-अन्धः-असावि) वाणी से—स्तुति से ऋजुरूप "ऋज् धातोः—ईकक् प्रत्यय औणादिकः" दिव्य आध्यानीय उपासनारस निष्पन्न को (ईम्-इन्द्रः-अस्मिन् जनुषा निउवोच) यह परमात्मा यहां स्वभावतः या निष्पन्न उपासनारस के साथ ही निरन्तर समवेत होता है "उच समवाये" [दिवादि०] यह हम जानते हैं अतः (हर्यश्व) हे ऋक् और साम—स्तुति और उपासना द्वारा प्राप्ति के साधन वाले परमात्मन् ! (यज्ञैः-त्वा बोधामसि) अध्यात्म यज्ञों से तुझे हम अपनी ओर बोधित-सम्बोधित करते हैं, अतः (अन्धसः-मदेषु) आध्यानीय—समन्तात् ध्यान के हर्षों के निमित्तों में (नः-स्तोमं बोध) हमारे स्तुतिवचन को जान-जानकर अपनी कृपा से हमारा कल्याण कर ।

परमात्मन् ! हम तेरे लिये स्तुति वाणी से मिश्रित—सहित उपासनारस जब तैयार करते हैं तू इसमें स्वभावतः या इसके तैयार होने के साथ ही समवेत हो संयुक्त होता है स्तवन उपासना से प्राप्त होने वाले परमात्मन् तुझे अध्यात्म यज्ञों से सम्बोधित करते हैं बुलाते हैं हमारे ध्यानप्रसङ्ग के हर्ष आनन्दों के निमित्तों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हमारे द्वारा स्तुतिवचन को जान—हमारा कल्याण करना भी तेरा स्वभाव है ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
१ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद् ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (सदने) हृदयसदन में (ते योनिः-अकारि) तेरा घर—अवकाशरूप स्थान बनाया है "योनिः-गृहम्" [निघं० ३।४] (पुरुहूत) हे बहुत प्रकार से बुलाने योग्य परमात्मन् ! (नृभिः-आ प्र याहि) हम दिव्य प्रजाओं उपासक आत्माओं के साथ "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] समन्त-रूप से प्राप्त हो—विराजो (यथा नः-अविता वृधः-चित्-असः) जिस प्रकार हमारा रक्षकवर्धक भी हो—बने (वसूनि ददः) धनों को दे च और (सोमैः-ममदः) हमारे उपासनारसों से तू हर्षित हो।

हम उपासक जन अपने हृदय में परमात्मा के लिये अवकाश बनावें जिससे वह हम उपासक आत्माओं के साथ भली प्रकार विराजमान हो सके और विराजकर हमारा रक्षक तथा वृद्धिकर्ता भी हो सके हमारे वसाने योग्य उपयोगी ज्ञान धन भी दे सके यह सब हमारे उपासनारसों से प्रसन्न होकर ही कर सकेगा ॥२॥

ऋषिः—गातुः (परमात्मा का गान करने वाला)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३ १ २
अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्धधानाँ अरम्णाः ।
३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २
महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (उत्सम्-अदर्दः) उत्सदन "उत्स उत्सदनात्" [निरु० १०।९] "दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" [अथर्व० १०।७।३] ऊपर मस्तिष्कस्थान को "असौ द्युलोक उत्सः" [जै० १।१२१] खोलता है जिसमें से ज्ञानप्रवाह चलते हैं (खानि वि-असृजः) छिद्रों—इन्द्रियों को विसर्जित करता है विकसित करता है जिनमें से बाहर से गन्ध आदि अन्दर प्रविष्ट होते हैं (बद्बधानान्-अर्णवान्) नाडियों में रक्त को बाँधने वाले "बध बन्धने" [भ्वादि०] प्राणों को "प्राणो वा अर्णवः" [श० ७।५।२।५१] (अरम्णाः) विसर्जित किया—छोड़ा 'रम्णाति विसर्जनकर्मा' [निरु० १०।९] (यत्) जबकि (महान्तं पर्वतं विवः) महान् महत्त्वपूर्ण पर्ववाले—अङ्गों जोड़ों वाले शरीर को स्पष्ट—व्यक्त किया (यत्) 'यतः' (धाराः-सृजत्) जीवन धाराओं—जीवनशक्तियों को सर्जित किया—छोड़ा (दानवान्-अवहन्) पुनः पुनः जन्म देने वाले कारणों "दानवं दानकर्माणम्" [निरु० १०।९] नष्ट करता है।

परमात्मा सब मनुष्यों के सामान्यरूप से और उपासकों के विशेषरूप से मूर्धा—मस्तिष्क को खोलता है जिससे ज्ञानप्रवाह चलें, इन्द्रियों को विकसित करता है जिनमें गन्धादि प्रविष्ट होते हैं, नाड़ियों में रक्त को बान्धने वाले प्राणों को छोड़ता है जिनसे रक्तसञ्चार शरीर में होता है महत्त्वपूर्ण जोड़ोंवाले शरीर को व्यक्त बनाता है जीवन धाराओं को भी उसमें छोड़ता है पुनः पुनः जन्म देने वाले कारणों को भी नष्ट करता है ऐसा परमात्मा सदा उपासनीय है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पृथुर्वैन्यः (वेन—सूर्यसमान कान्तिमान् परमात्मा में प्रथनशील जीवन का प्रसार करने वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम्।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥४॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (सुष्वाणासः) हम उपासनारस को निष्पन्न करने के हेतु "षुञ् अभिषवे" [स्वादि०] "ततः कानच् प्रत्ययः" (त्वा स्तुमसि) तेरी स्तुति करते हैं (तुविनृम्ण) हे बहुत धन वाले (वाजं सनिष्यन्तः-चित्) अमृत अन्न—मोक्षभोग के सेवन करने के हेतु भी "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] तेरी स्तुति करते हैं (नः सुवितम्-आभर) हमारे लिये आभ्युदयिक सुख भी आभरित कर (यस्य कोना तना) 'कोनानि तनानि' "कवते गतिकर्मा" [निघं० २।१४] जिसके गमक उपकरण—उपयोग विस्तारक धन हैं (त्वोताः-त्मना-आसह्याम) तुझ से रक्षित हुए आत्मस्वरूप से हम किन्हीं विरोधी व्यवहारों को सदा सहन करते रहें।

हम उपासनारस निष्पन्न करें इसलिये तथा उस बहुत धन वाले परमात्मा से अमृतभोगप्राप्ति के लिये भी उसकी स्तुति करें। सांसारिक सच्चा सुख भी हमारे अन्दर भरता है उस परमात्मा से उपकारक धनों और साधनों को पाकर विरोधियों को सहन कर सकें ॥ ४ ॥

ऋषिः—सप्तयुगः (सातों छन्दों युक्त वाणियों से परमात्मा की स्तुति करने वाला)

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वसुपते-इन्द्र) हे धनों के स्वामिन् परमात्मन् ! (वसूनां वसूयवः) विविध धनों के हम धनकांक्षी (ते दक्षिणं हस्तं जगृह्म) तेरे दक्षिण हाथ को—दान करने वाले शक्तिरूप हाथ को पकड़ते हैं "दक्षिणो दशतेर्दानकर्मणः" [निरु० १।७] (शूर) हे विक्रम-शील ! (त्वा गोनां गोपतिं विद्म हि) तुझ गौओं के स्तुतिकर्ताओं के स्तोतृस्वामी को जानते हैं "गौः स्तोतृनामः" [निघं० ३।१६] (अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः) हम उपासकों के लिये चायनीय—दर्शनीय—अपने अमृत सुखवर्षक धन को दें।

उपासक जन परमात्मा में वसाने वाले गुणधनों के इच्छुक हों उन ऐसे वासक गुणधनों के दान करने वाले शक्तिरूप हाथ को पकड़ें तथा स्तुति करने वाले उपासकों के दर्शनामृत सुखवर्षक धन को भी उपासकाधिपति से माँगे ॥ ५ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३१ २ ३ २ ३ २
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः॥६॥

(नरः) देव जन—मुमुक्षु जन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (नेमधिता) शुभ-अशुभ वर्गों की स्थिति—संग्रामप्रवृत्ति में "नेमोऽर्द्धनाम" "त्वो नेम इत्यर्द्धस्य" [निरु० ३।२०] "नेमधिता संग्रामनाम" [निघं० २।१७] (इन्द्रं हवन्ते) परमात्मा को आहूत करते हैं—आमन्त्रित करते हैं (यत्) 'यतः' (ताः-पार्याः-धियः-युनजते) उन विरुद्ध—प्रवृत्तिसंग्रामों में अशुभप्रवृत्तियों से पार करने वाली या अशुभप्रवृत्तियों को परे फेंकने वाली योगक्रियाओं को युक्त होते हैं (त्वम्) तू (शूरः) विक्रमी (नृषाता) देवश्रेणि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मनुष्यों—मुमुक्षुओं का स्वभोग का सम्भागी बनने वाला (च) और (श्रवसः कामः) यशस्वी जन को चाहने वाला "श्रवः-श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९] (नः-गोमति व्रजे-आभज) स्तोता वाले व्रज—"गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] छन्दोमय—मन्त्र-भाग में "छन्दा ँ सि वै व्रजो०" [मै० ४।१।१०] समन्तरूप से भागी बना।

देवजन आगे विभक्त हुए देवासुर संग्राम के अवसर पर परमात्मा को आमन्त्रित करें तब वे असुर वृत्तियों परे फेंक डालने वाली अपनी देववृत्तियों के युक्त होते हैं वह विक्रमी मुक्त आत्माओं को अपने आनन्द का भागी बनाने वाला उन यशस्वी मुक्तात्माओं को चाहता है वह उनके स्तोतृसदन में उन्हें सुख भाक् भी बनाता है ॥६॥

ऋषिः—गौरीवीतिः शाक्त्यः (ब्रह्मवर्चस्तेज का सम्पादक शक्ति से सम्पन्न जन †)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ २ ३ १ २ ३ २
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३ स्मान्निधयेव बद्धान् ॥७॥

(वयः सुपर्णाः) ऊँची गति वाले पुरुष अर्थात् उपासक सत्पुरुष "पुरुषः सुपर्णः" [श० ७।४।२।५] (प्रियमेधाः-ऋषयः) परमात्मा की सङ्गति प्रिय जिनको है ऐसे "मेधृ सङ्गमे" [भ्वादि०] ऋषि महानुभाव (नाधमानाः) यह याचना करने के हेतु (इन्द्रम्-उपसेदुः) परमात्मा को ध्यान में प्राप्त हुए—प्राप्त होते हैं (ध्वान्तम्-अप-ऊर्णुहि) कि परमात्मन् ! तू अज्ञान अन्धकार को हटा दे (चक्षुः-पूर्धि) अपने ज्ञानप्रकाश से ज्ञाननेत्र को भरदे (अस्मान्-

† "तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतम्" [ऐ० ४।२३]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निधया-इव बद्धान् मुमुग्धि) हमें पाशसमूह की भांति संसारपाश में बन्धे हुओं को अब छोड़ दें।

प्रगतिशील सत्पुरुष परमात्मा की सङ्गति ही जिन्हें प्रिय है ऐसे ऋषिजन ध्यान में परमात्मा को प्राप्त हो यही याचना किया करते हैं कि परमात्मन् ! तू हमारे अज्ञानान्धकार को मिटा अपने ज्ञान-प्रकाश से हमारे ज्ञाननेत्र भर दे और पाश में बन्धे जैसे हमें संसार बन्धन से छोड़ अपने मुक्तिसदन में ले ले। परमात्मन् ! ऐसे सत्पुरुषों को तू अपनी कृपा से उन्हें मुक्ति प्रदान करता है ॥७॥

ऋषिः—वेनो भार्गवः (भृगु—तेजस्वी गुरु का शिष्य परमात्म-सङ्ग की कामना वाला)

१ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्त ँ हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ।८॥

(नाके) दुःखरहित नितान्त सुखस्थान मोक्षधाम में (सुपर्णम्) सुन्दर पालन धर्म वाले—(उपपतन्तं त्वा) स्वामीभाव से उपस्थित तुझ ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (हृदा वेनन्तः) हृदय से चाहते हुए उपासक (अभ्यचक्षत) लक्षित करते हैं (हिरण्यपक्षम्) वर-सुनहरी पक्षवाले पक्षीसमान—तेजस्वी—(वरुणस्य दूतम्) वर-णीय प्रमुख आनन्द के प्रेरक—(यमस्य योनौ) यमन—नियमन-संयम के आश्रय में (भुरण्युं शकुनम्) भ्रमणशील समर्थ पक्षी जैसे को लक्षित करते हैं।

अत्यन्त सुखमय मोक्ष-धाम में स्वामीभाव से उपस्थित सुन्दर पालन धर्म से युक्त सुनहरी पक्ष वाले समर्थ पक्षी समान भ्रमण—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापनशील तुझ परमात्मा को जो कि अत्यन्त वरणीय सुख का प्रेरक और यम—नियम संयम के आश्रय पर प्राप्त होने वाले को उपासकजन हृदय से अनुभूत करते हैं ॥८॥

ऋषिः—बृहस्पतिर्नकुलो वा (बृहती वाक्-वाणी विद्या का पति ब्रह्मवक्ता या नकुल—परिवार प्रसार से रहित एकाकी आदित्य ब्रह्मचारी)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमतः सुरुचो वेन आवः ।
३क २र ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९॥

(पुरस्तात्) सृष्टि से पूर्व (प्रथमं ब्रह्म जज्ञानम्) प्रथित अण्डरूप ब्रह्माण्ड परमात्मा के द्वारा प्रसिद्ध हुआ तो उसमें (वेनः) कान्तिमान् इन्द्र—परमात्मा ने "इन्द्र उ वै वेनः" [कौ० ८।५] (सीमतः) सीमा से उनकी अपनी सीमा से—परिधिक्रम से (सुरुचः) पृथिवी चन्द्रादि लोकों को "इमे लोकाः सुरुचः" [श० ७।४।१।१४] (वि-आव) पृथक्-पृथक् व्यक्त किया – रचा (सः) उस परमात्मा ने (अस्य) इस ब्रह्माण्ड की (बुध्न्याः-उपमाः-विष्ठाः) अन्तरिक्ष आकाश में होने वाली दिशाओं को "दिशो वा उपमाः" [श० ७।४।१।१४] विशेष स्थापित किया "व्यष्ठाः-अड् लोपश्छान्दसः" "बहुलं छन्दस्यमाङ् योगेऽपि" [अष्टा० ६।४।७५] तथा (सतः-च-असतः-च योनिं विवः) प्राणी की और अप्राणी की योनि—प्राणी योनि और अप्राणी योनि–जड़ योनि को "प्राणो वै सत्" [जै० १।१०२] व्यक्त किया।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा के द्वारा सृष्टि से पूर्व प्रथित ब्रह्माण्ड—विश्वगोल– व्यक्त हुआ उसमें परमात्मा ने सीमाओं में परिधियों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पृथिवी आदि लोकों पिण्डों को व्यक्त किया—रचा, पुनः इस ब्रह्माण्ड की आकाशगत दिशाओं को व्यवस्थित किया मनुष्य, गौ, घोड़ा आदि प्राणी योनि और आम्र वृक्ष आदि अप्राणी योनि को व्यक्त किया—रचा है उस ऐसे रचयिता शक्तिशाली परमात्मा को जान उसकी उपासना करनी चाहिए जिसने पृथिवी आदि पिण्डों को सीमा में बान्धा और पृथिवी आदि पिण्डों पर हम जीवात्माओं को योनियों में बान्धा है बन्धन से छूटने के लिये परमात्मा की उपासना करना साधन है ॥९॥

ऋषिः—सुहोत्रः (अच्छे अङ्गों वाला संयमी या योगाङ्गों वाला योगी †)

१२ ३१२ ३२ ३१२ ३१२ ३१२
अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तपसे तुराय ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांᳪसयस्मै स्थविराय तक्षुः॥१०॥

(अस्मै महे वीराय तवसे तुराय) इस महनीय—पूज्य जीवन-गतिप्रद बलवान् शीघ्रकारी इन्द्र—परमात्मा के लिये, तथा (अस्मै विरप्शिने स्थविराय) इस महान् या विशेष वक्ता 'विरप्शी महन्नाम' [निघं० ३।३] ओजस्वी ज्येष्ठ इन्द्र—परमात्मा के लिये (अपूर्व्या पुरुतमानि शन्तमानि वचांसि तक्षुः) सर्वश्रेष्ठ अधिकाधिक अति मधुर स्तुति वचन उपासकजन सम्पन्न करते हैं—समर्पित करते हैं।

उस पूजनीय वीर—गतिप्रद बलवान् शीघ्रकारी तथा महान् या विशेष वक्ता ओजस्वी ज्येष्ठ परमात्मा के लिये सर्वश्रेष्ठ अधिकाधिक अति मधुर स्तुति वचन उपासकजन समर्पित किया करते हैं अतः हम करते हैं ॥१०॥

† "अङ्गानि वाव होत्राः" [गो० २।६।५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम खण्ड

ऋषिः—द्युतानः (परमात्मप्रकाश का अपने अन्दर विस्तार करने वाला उपासक)

छन्दः—त्रिष्टुम्

१ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ दीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
२ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ २ २
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥ १ ॥

(द्रप्सः-कृष्णः) अल्प—अणुपरिणाम वाला—अणु जीवात्मा "स्तोको वै द्रप्सः" [गो० २।२।१२] पापभावनावाला हुआ "एतद्वै पाप्मनो रूपं यत् कृष्णम्" [मै० २।५ ६] (ईयानः) गीत करता हुआ (दशभि सहस्रैः) दस सहस्र नाडीतन्तुओं से युक्त (अंशुमतीम्) प्राणोंवाली नगरी—देहपुरी को "प्राणः वा अंशवः" [मै० ४।५।५] (अवातिष्ठत्) अवस्थित हुआ—प्राप्त हुआ (तं धमन्तम्) उस अर्चना करते हुए को—परमात्मा की स्तुति करते हुए को "धमति-अर्चतिकर्मा" [निघं० २।१४] (नृमणाः-इन्द्रः-शच्या-आवत्) नरों मुमुक्षुजनों में मन—कल्याण चिन्तना वाला "नरो वै देवविशः" [जै० १।८९] ऐश्वर्यवान् परमात्मा प्रज्ञान से उसको सुरक्षित करता है—(अध) अनन्तर इसकी (स्नीहितिम्) वध करने वाली पाप वासना को "स्नेहति वधकर्मा" [निघं० २।१९] ततः क्तिन् प्रत्ययः। (अधद्राः) पृथक् भगाता है—दूर करता "द्राति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] या रोन्धता है नष्ट करता है।

अणु—जीवात्मा पापाचरणवश हो सहस्रों नाड़ी तन्तुओं से युक्त प्राणों वाली देहपुरी को भटकता हुआ प्राप्त होता है देह धारण करता रहता है, जब यह परमात्मा की स्तुति करता है तो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा ज्ञान देकर इसकी रक्षा करता है और इसकी हानिकारक पापवासना को भी भगा देता है या नष्ट कर देता है कारण कि वह उपासक मुमुक्षुजनों में कल्याण भावना रखने वाला है ॥१॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखाय ।
३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ २उ ३ १२
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (वृत्रस्य श्वसथात्) पाप के बधक प्रहार से फटकार से "श्वसति वधकर्मा" [निघं० २।१९] (ईषमाणाः) हिंसित ताड़ित होते हुए "ईष हिंसार्थः" [भ्वादि०] (विश्वे देवाः) साधारण मनुष्य "विश्वे हीदं देवाः स्मो यन्मनुष्याः" [मै० ३।२।२] (त्वा-अजहुः) तुझे त्याग देते हैं (ये सखायः) जो तेरे सखिभूत समान ख्यान थे (मरुद्भिः-ते सख्यम्-अस्तु) मुमुक्षु अध्यात्मयाजीजनों के साथ "देवविशो वै मरुतः" [मै० २।१।९] "मरुत्:-ऋत्विङ्नाम" [निघं० ३।१८] तेरी मित्रता हो—होती है (इमाः-विश्वा पृतनाः-जयसि) इनमें वर्तमान सारी संघर्ष करती हुई पापवासनाओं को तू जीत ले दूर भगा दे—भगा देता है ।

चेतन देव सर्वज्ञ परमात्मा के सखा चेतन ज्ञानवान् मनुष्य—साधारण जन पाप के प्रहार से बाधित हो परमात्मा को छोड़ बैठते हैं, नास्तिक हो जाते हैं या जो जन समान चेतन ज्ञान वाले होते हुए भी तुझ परमात्मा को त्याग देते हैं अर्थात् नास्तिक हो जाते हैं वे पाप के प्रहार से पीड़ित होते पाप पर पाप करते हैं और पाप के फल दुःख को भोगते हैं परन्तु तेरे उपासक आत्मयाजी मुमुक्षुजन हैं वे ही जो तेरी मित्रता में रहते हैं तू इनकी समस्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी वासनाओं—भावनाओं को जीत लेता है—नष्ट कर देता है ॥ २ ॥

ऋषिः—बृहदुक्थः (महान् बड़ी वाक्-ओ३म् उपास्य जिसका है)।

३ १ २ ३ १र २र ३ १र १र १ २ ३ १ २
विधुं दद्राणं ँ समने बहूनां युवान ँ सन्तं पलितो जगार
३१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥

(बहूनां) अनेक इन्द्रियों के (दद्राणम्) दमनशील (विधुम्) स्वयं विधमानशील—चञ्चल (युवानं सन्तम्) युवा जब तक शरीर है तब तक समानरूप में वर्तमान हुए अन्तःकरण पदार्थ को (समने) रात्रिशयन में (पलितः) ज्ञानी चेतन आत्मा (जगार) निगल लेता है (देवस्य) परमात्मदेव के (काव्यं पश्य) कला शिल्प को देख (महित्वा) उसकी महती शक्ति से (अद्य ममार) आज शयन काल में जो मृत सा हो गया (स ह्यः-समानः) वह कल तो समान स्वरूप में था या (ह्यः-ममार-अद्य समानः) गए कल मरा आज फिर वैसा कार्य करने में वैसा ही हो गया अथवा जो अन्तःकरण युक्त आत्मा कार्यकरण—समर्थ गत काल में था वह आज मृत हो गया—देह त्याग गया, जो आज मृत हो गया वह आगे समय में पुनर्देह प्राप्त करके वैसा ही उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार जन्म मरण का शिल्प परमात्मा का विवेचनीय है।

यह अन्तःकरण इन्द्रियों का नियन्त्रण करने वाला स्वयं चञ्चल, शरीर में इन्द्रियों की अपेक्षा युवा—जरा रहित है इन्द्रियां तो शरीर के रहते हुए भी जीर्ण-क्षीण या नष्ट भी हो जाती हैं परन्तु यह तो जब तक यह शरीर जीवित है तब तक रहता है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु रात को सोते समय चेतन आत्मा इसे अपने अन्दर ले लेता है या इन्द्रियों का सञ्चालित करने वाला आत्मा अजर होते हुए को भी महान् चेतन परमात्मा अपने अन्दर ले लेता देह त्यागने पर, यह परमात्मदेव का शिल्प है कला है जो अन्तःकरण आज रात्रि में मरा अकिञ्चित्कर हो गया कल वह अपने रूप में ठीक था और आगे भी आने वाले कल भी फिर वैसा ही हो जायगा या यह परमात्मा की कला है जो आत्मा आज मर गया देह को त्याग गया वह कल तो अच्छा समान था और अगले काल में पुनः देह को प्राप्त कर फिर वैसा ही हो जाता है ॥३॥

ऋषिः—द्युतानः (परमात्मप्रकाश को अपने अन्दर प्रसार करने वाला)

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
त्व ँ ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
३ १र २र ३ १र २र ३२ ३ १ ३ १ २
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणधाः ॥४॥

(त्वम्-इन्द्रः) तू इन्द्र (ह) निश्चय (जायमानः) प्रसिद्ध होता हुआ (त्यत्-सप्तभ्यः-अशत्रुभ्यः) उन सात शत्रुरहित—सात जो तेरे होता है "इन्द्रः सप्तहोत्राः" [तै० २।२।५।८] "दिशः सप्त-होत्राः" [श० ७।४।१।२०] पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर नीचे, मध्य का (शत्रुः-अभवः) शातयिता विलोडनकर्ता है अतः उनमें (गूढे द्यावापृथिवी) गहन सूक्ष्मरूप हुए द्यावापृथिवीमय पिण्ड समूह को (अन्वविन्दः) अन्वेषण कर लिया—खोज लिया—पा लिया उसके अन्दर वर्तमान (विभुमद्भ्यः-भुवनेभ्यः) अन्न-भोग वाले "अन्नमिव विभु भूयासम्" [ऐ० आ० ५।१।१] लोकों पिण्डों से "इमे लोका भुवनम्" [काठ० १४।१।७] (रणं धाः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिये रमणीय भोगों को 'रणाय रमणीयाय' [नि० ९।१२६] धारित करता है—देता है।

पूर्व से प्रसिद्ध हुए परमात्मा ने अजेय सात दिशाओं—पूर्व पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर नीचे, मध्यवर्ती दिशाओं को बिलोडित करके सूक्ष्म द्यावापृथिवीमय पिण्डमण्डल को खोज लिया और अन्न भोग वाले लोकों—पिण्डों से मनुष्यों के लिये रमणीय भोग को देता है। उसकी उपासना करनी चाहिये ॥४॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम्।
३ २उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (मेडिं न) माध्यमिक वाक्—विद्युत् के समान "मेडिः-वाङ्नाम" [निघं० १।११] (भृष्टिमन्तम्) पापाभाव के भर्जन शक्ति वाले—(पुरुधस्मानम्) "पुरुदस्मानम्" "दकारस्य धकारश्छान्दसो वर्णव्यत्ययः" बहुदान बहुत आनन्दामृत प्रदानकर्ता को "बहुदान इति हैतदाह पुरुदस्म इति" [श० ४।५।२।१२] (स्थिरप्स्नुम्) एकरसस्वरूप वाले—(वज्रिणम्) ओजस्वी—(द्युक्षम्) ज्ञान भण्डार (वृत्रहणम्) पाप नाशक (त्वा) तुझको (गृणीषे) प्रशंसित करता हूँ स्तुति में लाता हूँ अपितु (तरुषीः-अर्थः) हिंसित करने वाली बाधक प्रवृत्तियों को भी "तरुष्यति हन्तिकर्मा" [निरु० ५।२] (करोषि) तिरस्कृत करता है बहिष्कृत करता है (अवस्युः) हमारी रक्षा को चाहता हुआ।

परमात्मा तू विद्युत् की भांति तेजस्वी पाप को भस्म करने की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति रखने वाला बहुत आनन्ददाता एकरस ज्ञानभण्डार अज्ञानान्धकारनाशक तथा हमारी रक्षा चाहने वाला भीतर प्रवृत्तियों को भी बहिष्कृत या तिरस्कृत करता है ऐसे उस तुझ परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

छन्दः—त्रिपदा विराट् अनुष्टुप

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
१ २ ३ १र २र ३
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥६॥

(वः) 'यूयम् विभक्तिव्यत्ययः' हे उपासको ! तुम (महे) अपने महान् होने के लिये (प्रचेतसे) प्रकृष्ट ज्ञानवान् सर्वज्ञ एवं प्रकृष्ट चेताने वाले (महे वृधे) महान्वर्धक परमात्मा के लिये (भरध्वम्) उपासनारस समर्पित करो (सुमतिं प्रकृणुध्वम्) शुभ स्तुति करो "वाग्वै मतिः" [श० ८।१।२।७] (चर्षणिप्राः) मनुष्यों के कामपूरक परमात्मा (पूर्वीः-विशः प्रचर) अपनी श्रेष्ठ उपासक प्रजा को अवश्य संरक्षण देता है ।

परमात्मा महान् वर्धक सर्वज्ञ सावधान करने वाला है अपने महान् कल्याण के लिये उपासनारसों से उसे भर दे और उसकी शोभन स्तुति करें तो वह मनुष्यों का पालन करने वाला अपनी श्रेष्ठ उपासक प्रजाओं को अवश्य प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सर्वमित्र—सबका मित्र सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—त्रिष्टुप्

३१ २ ३१२३ १२३ २उ ३१२३१ २
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
३ १२३२३१२ ३२ ३ १२३१ २ ३ २३१२
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥७॥

(अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अमृत अन्न भोग की सम्भक्ति वाले भर—आनन्द भण्डार मोक्षधाम की प्राप्ति के निमित्त (समत्सु) सामुख्य संघर्ष स्थलों में (वृत्राणि-घ्नन्तम्) पाप भावों के हनन-कर्ता—(ऊतये शृण्वन्तम्) रक्षा के लिये प्रार्थना सुनने वाले—(धनानि सञ्जितम्) अनुकूल धनों के सम्यक् जय कराने वाले—"अन्तर्गतणिजर्थः" (शुनं मघवानम्-उग्रम्-इन्द्रं हुवेम) सुख-स्वरूप—कल्याण धन वाले तेजस्वी परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ।

हमारे इस लक्षित अमृत अन्नभोग सम्प्राप्ति वाले आनन्द भण्डार मोक्षधाम के निमित्त सामुख्य प्रसङ्गों में आए पापभावों के हननकर्ता रक्षा के लिए सुनने वाले—अभीष्ट धनों पर अधिकार कराने वाले सुखस्वरूप कल्याण धनवान् तेजस्वी परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥८॥

(वसिष्ठ) हे परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले उपासक ! (समर्ये) अपने अन्दर उठे शुभाशुभ वृत्तियों के संग्राम—संघर्ष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में "समर्ये संग्रामनाम" [निघं० २।१७] (इन्द्र महय) परमात्मा को अर्चित कर—उसकी स्तुति कर (श्रवस्या ब्रह्माणि-उदैरत-उ) 'श्रवस्यया' अवश्य अपने अध्यात्म धन की इच्छा से "श्रवः धनम्" [निघं० २।१०] उपासनाकर्मों को उच्चभाव से अनुष्ठित कर (यः) जो परमात्मा (विश्वानि श्रवसा) समस्त 'श्रवसानि-श्रवस् शब्दान्मतुबर्थीयोऽकारश्छान्दसः' अध्यात्म धन के आश्रयों को (आ ततान) प्रकाशित किया करता है (सः) वह परमात्मा (ईवतः-मे वचांसि-उपश्रोत) मुझ प्राप्त हुए के वचनों को सुनता है या स्वीकार करता है।

उपासक अपने को सम्बोधित करके कहे कि अरे उपासक! तू अपने अन्दर वृत्तियों के संघर्ष में परमात्मा की अर्चना कर अध्यात्मधन की इच्छा से उपासना कर्मों—अष्टाङ्गयोगाचरणों का अनुष्ठान कर, जो परमात्मा अध्यात्मधन के आश्रयों—मित्रों को प्रकाशित करता है वह प्राप्त हुए मुझ उपासक के प्रार्थनावचनों को स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—गौरिवीतिः (सुन्दर वीत तृप्ति का साधनरस जिसके पास हो वह अध्यात्म रसवान्)

३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
३ १र २र ३·२उ ३ २ ३ १' २र ३ १ २
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

(अस्य) इस परमात्मा का (यत्-चक्रम्) जो सृष्टिक्रम चक्र अर्थात् उत्पत्ति और जीवों के कर्मफल प्रदानरूप (अप्सु-आनिषत्तम्) व्याप्त परमाणुओं में समन्तरूप निगूढ़ हो चल रहा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है (उत-उ) और भी (अस्मै) इस चक्र के लिये (मधु-इत्-चच्छद्यात्) प्राण को निहित किया है "प्राणो वै मधु" [श० १४।१।३।३०] (पृथिव्याम्) वह पृथिवी पर प्रथनशील सृष्टि में तथा प्रत्येक पार्थिव लोक में छोड़ दिया पुनः उससे (गोषु यत्-ऊधः) गौ आदि पशुओं में ऊधस्य—मधुररस दूध (ओषधीषु पयः) ओषधियों में रस धारण करता है।

परमात्मा ने सृष्टिक्रमचक्र परमाणुओं में चलाया उसके लिये प्राण सम्यक् स्थिर किया, वह प्राण प्रथनशील सृष्टि में प्रथनशील लोकमात्र में छोड़ा, पुनः गौ आदि पशुओं में दूध और ओषधियों में अन्नरस मानवों के लिये धारण कराया परमाणुओं में गतिप्रद विश्वप्राण और जीवों के लिये ओषधियों में जीवनप्राण परमात्मा ने धारण कराया, मानव के निर्वाहार्थ गौ आदि से दूध लेने और ओषधियों से अन्नरस लेने का विधान किया, उपासक उस ऐसे प्राणदाता की उपासना करे अध्यात्म प्राण अध्यात्म जीवन धारण करने के लिये ॥ ९ ॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः (अहिंसित रक्षणपरिधान जीवनप्रद परमात्मा जिसका है ऐसा उपासक)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
त्यमू षु वाजिनं दवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳ रथानाम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳ स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्यम्-उ) उस ही (सु वाजिनम्) हमारे अमृत अन्नभोग-वाले (देवजूतम्) मुमुक्षुओं के प्रीत—प्रेमपात्र (सहोवानम्) सहस्वान्—साहसी बलवान् (रथानां तरुतारम्) गमनशील लोकों के शरीररथों के यथावत् चलगति या कर्मगति के प्रेरक (अरिष्ट-नेमिम्) किसी भी प्रकार न हिंसित होने वाले प्रगतिचक्रवाले (पृतनाजम्) मानवों की विरोधी प्रवृत्तियों पर जय पाने वाले—(आशुम्) व्यापनशील (तार्क्ष्यम्) विश्व को गति देने वाले वायुस्वरूप परमात्मा को "वायुर्वै तार्क्ष्यः" [कौ० ३०।५] (स्वस्तये-इह हुवेम) कल्याणार्थ इस जीवन में आमन्त्रित करते हैं।

परमात्मा उत्तम अमृतान्न भोग वाला मुमुक्षु का प्रेमपात्र बलवान् पृथिवी आदि पिण्डों तथा शरीरों का चलगति कर्मगति का प्रेरक अबाधित रक्षण शक्तियों वाला विरोधी प्रवृत्ति पर जय पाने वाला है उसको हम अपने हृदय में कल्याणार्थ इस जीवन में आमन्त्रित करते रहें॥ १॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के स्वरूपबल को अपने अन्दर भरण करने वाला)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
३ २ उ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२॥

(त्रातारम्-इन्द्रम्) त्राणकर्ता परमात्मा को (अवितारम्-इन्द्रम्) नित्य रक्षक परमात्मा को (सुहवम्) सुगमता से बुलाने योग्य (शूरम्-इन्द्रम्) विक्रमवान् परमात्मा को (हवे-हवे-हुवे) आमन्त्रित करने योग्य प्रत्येक अवसर पर आमन्त्रित करता हूं (शक्रम्) शक्तिमान् (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आहूत करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य (इन्द्रम्-इत्) परमात्मा को अवश्य (नु-हुवे) शीघ्र आमन्त्रित करता हूँ (मघवा-इन्द्रः-हविः-वेतु) ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे मन—मनोभाव को—प्रार्थना को "मनो हविः" [तै० आ० ३।६।१] प्राप्त हो—स्वीकार करे।

परमात्मा त्राणकर्ता है नित्य रक्षक है सुगमता से बुलाया जाने योग्य है शूर है प्रत्येक आमन्त्रित करने योग्य अवसर पर बुलाया करूं शक्तिमान् बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य को मैं आमन्त्रित किया करूं वह ऐश्वर्यवान् परमात्मा मेरे मनोरूप हविः—प्रार्थना को प्राप्त हो ॥ २ ॥

ऋषिः—वसुक्रो विमदो वा (अध्यात्मधन का सम्पादनकर्ता या विगतमद—विरक्त उपासक)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणꣳ हरीणाꣳरथ्यां३ विव्रतानाम्।

१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा॥३॥

(वज्रदक्षिणम्) "वज्रदक्षी" ओज के प्रेरक "दक्ष गति-वृद्ध्योः" [भ्वादि०] (विव्रतानां हरीणां रथ्यम्) विगतकर्म—विपरीत गतिकर्म वाले प्राणों—इन्द्रियों के "प्रणो वै हरिः" [कौ० १७।१] "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८।१] रथ—शरीररथ के चालक (इन्द्रम्) परमात्मा को (यजामहे) हम यजन करें—अध्यात्मयज्ञ में स्तुत करें (श्मश्रुभिः) अपनी शरीर में श्रवण करने वाली ज्ञान शक्तियों से (दोधुवत्) पाप को कम्पाता हुआ (ऊर्ध्वधाः) हमें ऊपर स्थापित करने वाला है (सेनाभिः) "इनेन स्वामिना सह वर्तमानाः शक्तयः" इन्द्र—परमात्मा के साथ रहने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली पापनाशक शक्तियों से पापी जन को (भयमानः) डराता हुआ 'अन्तर्गत णिजर्थश्छान्दसः' (राधसा वि) धनैश्वर्य—अर्थसिद्धि से विगत कर (भुवत्) विराजमान हो जाता है।

ओजः—उत्साहवर्धक तथा विपरीत गति वाले इन्द्रिय घोड़ों के शरीररूप रथ के चालक परमात्मा की हम स्तुति करते हैं। जो अपनी ज्ञानशक्तियों से पापी को कम्पाता हुआ उपासक आत्मा को ऊंचे स्थापित करता है तथा अपनी व्यापन शक्तियों से पापी को डराता हुआ ऐश्वर्यसिद्धि से विगत करके विराजमान होता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ सुवज्रम्।
२ ३ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ता यो वृत्रꣳ सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः॥४॥

(सत्राहणम्) असुर—पाप के हन्ता "यत्-देवा असुरान् सत्राजयंस्तत् सत्राजितः सत्राजित्त्वम्" [जै० २।९२] (दाधृषिम्) अत्यन्त पापधर्षक—(तुम्रम्) पापक्षेप्ता—(अपारं) अनन्त—(वृषभम्) सुखवर्षक—(सुवज्रम्) सदा ओजस्वी—(महाम्) महान—(इन्द्रम्) परमात्मा को स्तुत करें (यः) जो (वृत्रं हन्ता) पाप का हननशीलवाला (वाजं सनिता) अमृतभोग का सेवन कराने वाला (उत) और (सुराधाः) उत्तम ऐश्वर्य वाला (मघवा) मघवान्—अध्यात्मयज्ञ का आश्रय "यज्ञेन मघवान् भवति" [तै० ४।४।८।१] (मघानि-दाता) अध्यात्मयज्ञ के सुख वालों का दाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा आसुरी वृत्तियों का नाशक पापों का घर्षणशील पाप को दूर फेंकने वाला अनन्त सुखवर्षक सदा ओजस्वी पाप हन्ता अमृतभोग का सेवन कराने वाला उत्तम भोग धनों वाला अध्यात्मयज्ञ का नायक तथा तत्सम्बन्धी फलों का दाता है उसकी उपासना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभीष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५॥

(यः) जो (मर्त्तः) अनात्मा—असत्त्व—मृत का मोह "अनात्मा हि मर्त्यः" 'मर्तः स्वार्थे यत्' [श० २।२।२।८] (वनुष्यन्) हनन करना चाहता हुआ "वनुष्यति जिघांसति" [निरु० ५।२] (नः-अभिदाति) हम पर प्रहार करता है (वा) या (उगणाः) "उद्गणा" उद्वाक्--उखड़ा वचन किसी का आक्षिप्त वचन—आक्षेप "गणस्-वाङ्नाम" [निघं० १।११] (वा मन्यमानः-तुरः) या अपने अन्दर माना हुआ भ्रमात्मक--मृत्युविषयक विचार "मन्यमानस्तुरः-तुर इति यमनाम" [निरु० १२।१६] 'अभिदाति'—प्रहार करता है (क्षिधी युधा) 'क्षिधिना युधा'--क्षय धारण करने वाली गति से "युध्यति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (वा) या (शवसा) बल से "शवः-बलम्" [निरु० २।९] (वृषमणः) बलिष्ठ मन वाले हुए हम (इन्द्र त्वोताः) हे परमात्मन् ! तेरे से रक्षित हुए (तम्) उसे (अभीष्याम) अभिभूत करें—दबा देते हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे परमात्मन् ! जो अनात्मा असत्त्व पाप हमें मारना चाहता हुआ प्रहार करता है या किसी का शाप—शपथ—आक्षेप या हमारा माना हुआ मृत्यु विचार प्रहार करता है हम बलिष्ठ मन वाले होकर तेरे से रक्षा पाए हुए उसे क्षय धारण गति से या बल से दबा देते हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
३ र २ र ३ २ ३ १ र २ र ३ १ १ २ र ३ १ २ ३ १ र २ र
यꣳ शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६॥

(वृत्रेषु) विविध पापप्रसङ्गों में (स्पर्द्धमानाः-क्षितयः) उन पापों के साथ संघर्ष करते हुए मनुष्य "क्षितयो मनुष्याः" [निघं० २।३] (यम्) जिसको (हवन्ते) आमन्त्रित करत हैं (युक्तेषु) युक्त—ठीक—पुण्यों के प्रसङ्गों में (तुरयन्तः) शीघ्रता करते हुए पुण्य जन "तुर-शीघ्रतायाम्" [जुहोत्यादि०] पुकारते हैं—आमन्त्रित करते हैं (शूरसातौ यम्) शूर—पराक्रमी सौभाग्यशालीजनों की लाभप्राप्ति में जिसको शूर—सौभाग्यशीलजन आमन्त्रित करते हैं—स्मरण करते हैं (विप्रासः) ऋषि जन "एते वै विप्रा यदृषयः" [श० १।४।२।८] (ज्मन्-अपाम्-उप) पृथिवी पर "ज्मा पृथिवी-नाम" [निघं० १।१] जलों के समीप "अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः" [मनुस्मृतौ] (यं वाजयन्ते) जिसको अर्चित करते हैं "वाजयति-अर्चति कर्मा" [निघं० ३।१४] (सः-इन्द्रः) वह परमात्मा है अर्चनीय—उपास्य है।

पापप्रसङ्गों में पापों से संघर्ष करते हुए परमात्मा को आमन्त्रित करें उससे बल मांगें, पुण्यकर्मों में शीघ्र आचरित करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये पुण्य जन पर परमात्मा को स्मरण करें, सौभाग्य की प्राप्ति में परमात्मा को सौभाग्यशील आमन्त्रित करें ऋषिजन पृथिवी पर जलों स्रोतों के समीप परमात्मा की अर्चना-स्तुति करते हैं उस परमात्मा को पाने के लिये ॥ ६ ॥

ऋषि;—विश्वामित्रः (सबका मित्र सब जिसके मित्र हैं)

देवता—इन्द्रपर्वतौ (ऐश्वर्यवान् परमात्मा और उसका पर्ववान् स्थान)

१ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतꣳ सुवीराः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
वीतꣳ हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७॥

(इन्द्रपर्वता) "इन्द्रापर्वतौ" हे ऐश्वर्यवन् एवं उत्पादनाशधर्मी संसारस्वामी उभयस्वरूप परमात्मन् (बृहता रथेन) महान् यज्ञरथ—अध्यात्मयज्ञरूप रथ के द्वारा "यज्ञो वाव देवरथः" [जै० १।१२९-१३०] (सुवीराः) सुपुष्ट (वामीः) वननीय—श्रेष्ठ (इषः) कमनीय उपासनाओं को (आवहतम्) समन्तरूप से प्राप्त करो, (अध्वरेषु) नाना अध्यात्मयज्ञों में (हव्यानि) अध्यात्मयज्ञों में भिन्न-भिन्न भावनाभेटों को (वीतम्) व्याप्त हो—प्राप्त होओ (गीर्भिः) प्रार्थना वचनों से (इडया) श्रद्धा से "श्रद्धा वा इडा" [श० ११।२।७।२०] (मदन्ता) हर्षित होते हुए (देवाः) हे देवों (वर्धेथाम्) 'वर्धयेथाम्' "अन्तर्गतणिजर्थः" हमें बढ़ाओ ।

परमात्मा ऐश्वर्यवान् एवं उत्पादकपालकधर्मवान् है वह महान् अध्यात्मयज्ञ के द्वारा सुपुष्ट श्रेष्ठ कमनीय उपासनाओं को भली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार प्राप्त करता है नाना अध्यात्मयज्ञों में भिन्न-भिन्न भावना भेटों को व्याप्त प्राप्त होता है, प्रार्थना वचनों और श्रद्धा से प्रसन्न होते हुए हमें बढ़ाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—रेणुः (सूक्ष्मज्ञ उपासक)

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥८॥

(इन्द्राय) परमात्मा के लिये (अनिशितसर्गाः-गिरः) अविच्छिन्न क्रम वाली वाणियों—स्तुतियों के लिये (अपः) कर्म को (प्रैरयत्) प्रेरित करता है (सगरस्य बुध्नात्) अन्तरिक्ष के बुध्न—मूल से—पृथिवीपृष्ठ से (यः) जो (अक्षेण-इव चक्रियौ) अक्ष—धूरा से चक्रों को कर्म शक्तियों से (विष्वक्) सब ओर पृथिवी और द्युलोक को स्तम्भित करता है ।

उपासक उस परमात्मा के लिये निरन्तर स्तुतियाँ करता है और सदाचरण कर्म हृदयाकाश के मूल से प्रेरित करता है जो कर्मशक्ति के धुरा से दो पहियों की भांति द्यावापृथिवी को ठीक सम्भाले हुए है ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाँ जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्वा) हे परमात्मन् ! तुझे (सखायः) समानधर्मवाले उपासकजन (सख्या) मित्रभाव से (आववृत्युः) भलीभांति वरें—वरते हैं (तिरः-पुरूचित्-अर्णवं जगम्याः) तू विस्तृत बहुत ही आनन्दार्णव को स्वतः प्राप्त है (पितुः-नपातम्-आदधीत) पिता जैसे अपने नप्ता—नाति को गोद में लेता—उसमें अपनी सम्पत्ति को सौंपता है एवं मुझ नपात्—नप्ता—नाति को गोद में ले मुझे अपना आनन्दार्णव धारण करा (वेधाः) हे विधाता (अस्मिन्-क्षये) इस मेरे निवासस्थान हृदय में प्रबल प्रकाश करते हुए मुझे अपना !

महान् आनन्दसागर परमात्मा को प्राप्त हुए हम उसके सख्य को वरण किए हुए सखा हैं वह पिता जैसे नाति को गोद में लेता है ऐसे गोद में आधान करता है वह विधाता मेरे हृदय घर में प्रदीप्त होता हुआ—प्रकाश करता हुआ विराजमान रहे ॥ ९ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला)

२ ३१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
३ १ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्
॥ १० ॥

(अद्य) इस वर्तमान समय में (ऋतस्य) शरीर रथ की "शरीरं रथमेव तु" [कठो० ३।३] (धुरि) धुरा में (शिमीवतः) कर्मप्रवृत्ति वाले "शिमी कर्म नाम" [निघं० २।१] (भामिनः) स्वविषय ग्रहण में दीप्ति वाले (दुर्हृणायून्) दुर्धर्षणीय—स्ववेग वाले—(अप्सुवाहः) रूपादि आप्तव्य विषय को प्राप्त करने वाले (मयोभून्) कल्याण को भावित करने वाले (गाः) इन्द्रिय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृषभों को (कः-युङ्क्ते) प्रजापति परमात्मा युक्त करता है "प्रजापतिर्वै कः" [तै० स० १।६।८।५] (यः) जो उपासक (एषाम्-आसन्) इनके मुख में (एषाम्) इनकी (भृत्याम्) भरण क्रिया को—यथावत् धारण क्रिया को—शुभ प्रवृत्ति को (ऋणधत्) परिचरित करता है—जीवन में लाभ लेता है "ऋणद्धि परिचरणकर्मा:" [निघं० ३।५] (सः-जीवात्) वह संसार में वास्तविक जीवन धारण करता है—जीता है।

शरीररथ की धुरा में कर्मशील विषय दीप्ति वाले दुर्धर्षणीय—कठिनता से वश में आने योग्य रूपादि विषय प्राप्त कराने वाले सुख दिलाने वाले इन्द्रिय बैलों को परमात्मा युक्त करता है परन्तु जो उपासक इनके मुख में उचित शुभ भरण-पोषण देता है वह संसार में वस्तुतः जीता है ॥ १० ॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुतन्त्र मधु-परायण)

छन्दः—अनुष्टुप्

१ २ ३ १र २र ३ १ ३ ३ २

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वꣳशमिव येमिरे ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे बहुत ज्ञान कर्म वाले सर्वज्ञ सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! (त्वा) तुझे (गायत्रिणः) गायत्र—साम गान वाले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायक उद्गाता जन (गायन्ति) गाते हैं—तेरी उपासना करते हैं (आर्किणः) अर्क—ऋङ् मन्त्र वाले (अर्कम्) तुझ अर्चनीय देव को (अर्चन्ति) पूजित करते हैं—प्रशंसित करते हैं तेरी स्तुति करते हैं। (ब्रह्माणः) यजुर्वेद के अध्ययनशील तेरी प्रार्थना करते हैं (वंशम्-इव) वंश की भाँति—बाँस की भाँति ऊपर उठाते हैं।

परमात्मा को सामवेदी साम गान से उसके साक्षात् से प्रशंसित करते हैं, ऋग्वेदीजन पूजनीय तुझ परमात्मा को अर्चित पूजित करते हैं प्रार्थना में लाते हैं और यजुर्वेदीजन तुझे वश की भाँति ऊँचे घोषित करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः (मधुच्छन्दा का पुत्र वा शिष्य जितेन्द्रिय)

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतम ँ् रथीनां वाजानाᳩं सत्पतिं पातम् ॥ २ ॥

(विश्वाः-गिरः) समस्तवाणियाँ-वेदवाणियाँ तदनुरूप स्तुतियाँ (समुद्रव्यचसम्-इन्द्रम्) अन्तरिक्षसमान व्यापक परमात्मा को "समुद्रमन्तरिक्षनाम" [निघं० १।३] (रथीनां रथीतमम्) रथियों शरीर रथस्वामी जीवात्माओं में भी महान् रथी संसाररथी—(वाजानां सत्पतिं पतिम्) "वाजवताम्" "अकारो मत्वर्थीयः" बलवानों—विद्युत् वायु सूर्य के भी स्वामी को तथा सद्गुण सम्पन्न जीवन्मुक्तों के तथा सदात्मक प्रकृति के भी स्वामी पालक परमात्मा को (अवीवृधन्) निरन्तर बढ़ाती है उपासक में उसका गुण स्वरूप साक्षात् कराती हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समस्त वेदवाणियाँ उनके अनुरूप उपासक की स्तुतियाँ उपासक के अन्दर उस समुद्र समान व्यापक रमण स्थान शरीर स्वामी जीवात्माओं के भी महान् रमण स्थान संसार स्वामी, विद्युत् वायु सूर्य बल वालों के स्वामी एवं सद्गुण सम्पन्न जीवन्मुक्तों के तथा सदात्मक प्रकृति के स्वामी—पालक परमात्मा को बढ़ती है जैसे जैसे स्तुतियाँ बढ़ती जाती हैं परमात्मा भी अधिकाधिक साक्षात् होता जाता है ॥ २ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गमन करने वाला)

३ १ २ ३ १ २३ ३ १ २ ३ १ २
इमामिन्द्र सुत पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
३ १ २ ३ क १ र २ र १ २ ३ २ ३ १ २
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (इमं ज्येष्ठम्) इस श्रेष्ठ (अमर्त्यम्) अनश्वर – अभौतिक (मदम्) हर्ष निमित्त—प्रसाद-निमित्त (सुतम्) निष्पन्न उपासनारस को (पिब) पान कर—स्वीकार कर (शुक्रस्य) निर्मल—निष्पाप सोम उपासनारस की "शुक्रो निर्मलः सोमः" [श० ३।३।३।६] (धाराः) धाराएं (त्वा) तुझे लक्ष्य कर (ऋतस्य सदने—अभ्यक्षरन्) इस अपने 'ओ३म्' "ओमित्येदक्षरमृतम्" [जै० उ० ३।६।८।५] परमात्मा के गृह हृदय में निर्झरित होती हैं ।

परमात्मन् ! तू हमारे अनश्वर श्रेष्ठ हर्षप्रद उपासनारस को अवश्य स्वीकार करता है उस दीप्त उपासनारस की धाराएं परमात्मन् तुझे ही लक्ष्य कर तेरे सदन—गृह में निर्झरित हो रही हैं यह मेरा घर, तेरा घर है तेरे आने विराजने का घर भी वो है ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—अत्रिः (परमात्मा में निरन्तर प्रवेश शील)

१ २ ३२उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्रं म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्या भर ॥ ४ ॥

(अद्रिवः-इन्द्र) हे अदनीय भक्षणीय भोगवस्तु के स्वामी अद्रिरत्तेः "अपि वाऽत्तेः स्यात्" [निरु० ४।४] परमात्मन् ! (त्वादातम्) तेरे द्वारा देने योग्य (यत्-चित्रं राधः) जो अद्भुत अर्जनीय सर्वश्रेष्ठ धन—मोक्षैश्वर्य (इह) इस संसार में (मे) मेरे लिये (न-अस्ति) नहीं है (विदद्वसो) हे प्राप्तधनवाले ! (तत्-नः) उसे हमारे लिये (उभया हस्ति-आभर) दोनों हाथ वाले विधान से इस लोक के धन को भी और परलोक—मोक्षधाम के अमृतधन को भी आभरित कर ।

परमात्मन् ! तू हमारा भोगने योग्य धन वाला और प्राप्त धन वाला है जो तेरे द्वारा देने योग्य अद्भुत श्रेष्ठ धन—मोक्षैश्वर्य इस लोक यहाँ संसार में नहीं है उस धन को हमें दोनों हाथों वाली कर्मफल विधि से प्रदान कर—करता है जब हम तेरे उपासक बन जाते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—तिरश्चीः (अन्तर्ध्यान† में प्राप्त परमेश्वर जिसने किया)

३ १२ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ५ ॥

† "तिरोदधे—अन्तर्दधाति" [निरु० १२।३२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (सुवीर्यस्य) सुन्दर प्राणों वाले—"प्राणा वै वीर्यम्" [काठ० १३।७] (गोमतः) प्रशस्त इन्द्रियों वाले संयमी—(तिरश्च्याः) अन्तर्ध्यान करने वाले उपासक के "तिरोदधे—अन्तर्दधाति" [निरु० १२।३२] (हवं) श्रधि) आमन्त्रण प्रार्थना वचन को सुन (यः-त्वा सपर्यति) जो तेरी परिचर्या करता है उपासना रस द्वारा "सपर्यति परिचरणकर्मा" [निघं० ३।५] (रायः-पूर्धि) उसे अपने आनन्दैश्वर्य से भर दे (महान्-असि) तू महान् कृपालु है।

ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! अपने अन्दर तेरे ध्यान करने वाले संयत प्राण में संयमी हुआ तेरी उपासना करता हूँ मेरी प्रार्थना को अवश्य सुन अपने आनन्दैश्वर्य को मेरे में भरपूर कर दे तू महान् दयालु है अवश्य सुनेगा ॥ ५ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रिय ँ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ६ ॥

(शविष्ठ) अत्यन्त बलवन् (धृष्णो) मेरे अनिष्टों के धर्षण करने वाले परमात्मन् ! (ते) तेरे लिये (सोमः-असावि) उपासनारस निकाला गया है (आगहि) तू आ जा (त्वा) तुझे (इन्द्रियम्) सोम हमारा उपासनारस "इन्द्रियः सोमः" [कौ० १०।२] (आपृणक्तु) आसम्पृक्त हो—व्याप्त हो (रश्मिभिः-सूर्यः-न रजः) रश्मियों से सूर्य जैसे जल को सम्पृक्त होता है अपनी ओर आकर्षित करने को "उदकं रज उच्यते" [निरु० ४।१९]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अतिबलवान् ! मेरे अनिष्टों को नष्ट करने वाले परमात्मन् ! तू आ तेरे लिये उपासनारस तैयार किया है जैसे सूर्य अपनी रश्मियों से जल को सम्पृक्त हो उसे अपनी ओर आकर्षित करता है ऐसा मेरा उपासनारस अपनी धाराओं से अपनी ओर आकर्षित करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—काण्वो नीपातिथिः (मेधावी का पुत्र परमात्मा के निकट पहुँचने वाला यात्री †)

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (हरिभिः) दुःखाज्ञानापहरण करने वाली तथा सुखज्ञानाहरण करने वाली शक्तिधाराओं के साथ "हरयः-हरणा" [निरु० ७।२४] (कण्वस्य सुष्टुतिम्) मेधावी वक्ता की शोभन स्तुति को (उपायाहि) उपागत हो—स्वीकार कर (दिवावसो) हे प्रकाशधन वाले ! या प्रकाश में बसाने वाले परमात्मन् ! (अमुष्य दिवः-शासतः) उस प्रकाशमय अमर लोक मोक्ष का शासन करते हुए के अपने (दिवं यय) प्रकाशमय अमृतधाम को मुझे ले जा—पहुँचा ।

परमात्मन् ! तू प्रकाशधनवाला या प्रकाश में बसाने वाला है क्या ही अच्छा हो मुझ मेधावी वक्ता उपासक की सुन्दर हार्दिक स्तुति को स्वीकार कर उस अपने प्रकाशमय धाम को मुझे ले चले जिसका तू शासन करता है अवश्य सुन्दर हार्दिक स्तुति का फल यह देगा ॥ ७ ॥

---

† "नि-अप्-नीपः "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" [अष्टा० ६।३।९५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—तिरश्ची (परमात्मा का अन्दर ध्यान करने वाला)

१ ३ १२ ३ २३१ २ ३१२
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
३ २ ३ ३ १ २ ३२उ ३१२
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे स्तुतिवाणियों से वननीय सेवनीय परमात्मन् ! (त्वा) तेरे प्रति—तुझे पाकर (सुतेषु) सम्पन्न उपासनाप्रसङ्गों (गिरः) स्तुतियां (आस्थुः) आश्रित हो जाती हैं (रथीः-इव) जैसे रथवान् गन्तव्य—प्राप्तव्य स्थान को पाकर उसे आश्रित होते हैं (त्वा-अभि समनूषत) तुझे लक्ष्य कर झुकती हैं—आकर्षित होती हैं (धेनवः-गावः-न वत्सम्) दूध पिलाने वाली गौएं जैसे दूध पिलाने के स्नेहवश बच्छड़े के प्रति झुक जाती हैं—आकर्षित होती हैं ।

हमारी स्तुतियाँ परमात्मा के प्रति ऐसी होनी चाहिए जैसे यात्री अपने गन्तव्य स्थान पर जाकर ही विश्राम पाता है ऐसे परमात्मा में विश्राम पायें मध्य में विश्राम न करें तथा वे परमात्मा के प्रति ऐसी भावभरी हुई स्तुतियाँ हों जैसे दूधभरी गौएं स्नेह में भर बच्छड़े की ओर झुकी जाया करती हैं उसकी ओर आकर्षित होती जाती हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र और सब जिसके मित्र हैं ऐसा उपासक)

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३२३ १ २
एतोन्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना ।
३२३ १२३ १ २ ३२३१२
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳ सꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एत-नु-उ) हे उपासको ! आओ शीघ्र तुम और हम सब अवश्य (शुद्धम्-इन्द्रम्) पापसम्पर्करहित अपितु शुभ गुण वाले परमात्मा की (शुद्धेन साम्ना) निष्पाप अपितु शुभगुणमय शिव साधु गान से "यच्च वै शिवं शान्तं वाचस्तत् साम" [जै० ३।५।५२] (स्तवाम) स्तुति करें, तथा (शुद्धैः-उक्थैः) अनृत आदि दोषों से रहित अपितु ऋजु सत्य आदि धर्मयुक्त वाक्—वाणियों से "वागुक्थम्" [ष० १।५] (वावृध्वांसम्) बढ़ते-बढ़ाते हुए—प्रसन्न होते करते हुए परमात्मा की स्तुति करें जिससे (शुद्धैः-आशीर्वान्-ममत्तु) वह हमारी शुद्ध—पवित्र आशीः—इच्छाओं प्रार्थनाओं से आशाओं वाला कामनाओं को देने वाला प्रसन्न हो।

परमात्मा हमारी आशाओं कामनाओं को पूरा करता है परन्तु उस पवित्र की पवित्र शान्त शिवरूप साधु भाव भरे वचन से तथा अनृत आदि दोषरहित आचरणों से स्तुति करेंगे तो वह बढ़ने बढाने वाला होकर हमारी पवित्र प्रार्थनाओं से हमारी कामना पूर्ण करने वाला हुआ प्रसन्नता को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः (पूर्ण विद्वान् का पुत्र या शिष्य कल्याणरूप परमात्मा की ओर जाने वाला)

२ ३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३
यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (वः) 'तुभ्यम्' तेरे लिये "वचनव्यत्ययः" (यः) जो (रयिम्) "सुपां सुपो भवन्तीति, आम् स्थाने अम्" धनों की तुलना से (रयिन्तमः) अत्युत्कृष्ट धन है (यः) जो (द्युम्नैः-द्युम्नवत्तमः) द्योतन यश बलों की तुलना से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त द्योतमान यशस्वी (सोमः-सुतः) उपासनारस निष्पन्न किया है (स्वधापते) हे अमृत रस के स्वामिन् "स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह" [श० ५।४।३।७] (सः) वह (ते) तेरा (मदः-अस्ति) हर्षकर है।

निष्पन्न उपासनारस रसीले परमात्मा के प्रति उपहार दिया हुआ धनों की तुलना से अत्यन्त उत्कृष्ट धन भेंट तथा द्योतमान यश प्रशंसा की तुलना से अत्यन्त द्योतमान—यश प्रशंसनीय है वह और भौतिक भेंट नहीं चाहता ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्न को अपने में भरण करने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१॥

(अस्मै) इस—(पिपीषते) पान करने के इच्छुक तथा (विश्वानि विदुषे) सब लोकों के जानने वाले—(अरङ्गमाय) समर्थ—(जग्मये) सर्वत्र व्याप्त (अपश्चादध्वने) अग्र मार्ग वाले (नरः) 'नरे' नेता परमात्मा के लिये (प्रतिभर) अपना सोम—उपासनारस अर्पित कर ।

उपासक के उपासनारस समर्पित करने में इष्टदेव सब लोकों का जानने वाला, समर्थ सर्वव्यापक अग्रणेता परमात्मा ही है वह ही उपासक के उपासनारस का प्यासा है ॥ १ ॥

ऋषिः—वामदेवः शाकपूतो वा (वननीय देववाला या स्वभाव से पवित्र)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ १ २
महान्तं पूर्विणेष्ठां उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

(नः) हमारे (वयःशयं वयः) प्रत्येक प्राण में शयन करने वाले प्राणप्रिय "प्राणो वै वयः" [ऐ० १।८] (महान्तम्) महान् (गह्वरेष्ठाम्) सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थान को (पूर्विणेष्ठाम्) पूर्वी सूर्यादि देवों में निष्ठित (उग्रम्) कठोर (वचः) हमारे वचन को (अप-अवधीः) नष्ट कर ।

जो महान् परमात्मा हमारे प्रत्येक प्राण में श्वास में बसता है महान् गहन सूक्ष्मस्वरूप पूर्वी पूर्व सूक्ष्म में निष्ठ है उसकी उपासना करें वह हमारा कठोर वचन नष्ट कर देगा ॥ २ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रिय है मेधा जिसको या परमात्मा से सङ्गम प्रिय जिसको है ऐसा जन)

२ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र ँ शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

(शविष्ठ) हे अत्यन्त बलवान् ! परमात्मन् (तुविकूर्मिम्) बहुत कर्म शक्ति वाले—"तुवि बहु नाम" [निघं० ३।१] (ऋतीषहम्) ज्ञान कोष भार वहन समर्थ—(सत्पतिम्) सत्ता मात्र के स्वामी (त्वा-इन्द्रम्) तुझ परमात्मा को (ऊतये) रक्षा के लिये (सुम्नाय) सुख के लिए (यथारथम्) रथ की भांति (आवर्तयामसि) अपने जीवन में पुनः पुनः आवर्तित करते हैं तेरी शरण लेते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुतकर्मशक्तिवाले ज्ञानकोष वाले सत्तामात्र के स्वामी परमात्मा का अपनी संसारस्थिति के लिये तथा विशेष सुख मोक्षसुख प्राप्ति के लिए रथ—यान—गाड़ी की भांति ध्यान स्मरण द्वारा पुनः पुनः जीवन में आवर्तन करना चाहिए ॥ ३ ॥

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट गाथा—वाणी—स्तुति वाला)

२ ३ २ ३१ २ ३१२ २२
स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥४॥

(सः) वह (महोनां पूर्व्यः) प्रशंसनीयों में सर्वश्रेष्ठ (वेनः) कमनीयों—प्रियों—कमनीय कान्त प्रियों में श्रेष्ठ इन्द्र—परमात्मा (क्रतुभिः) अपने विविध प्रज्ञानों—अध्यात्म लक्षणों से "क्रतु प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] हमारे अन्दर व्यक्त साक्षात् होता है "अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु" [रुधादि०] परन्तु कब (यस्य द्वारा) जिसके द्वार जहाँ से साक्षात् होता है वे हैं (मनुः) आयु "आयुर्वै मनुः" [कौ० २६।१७] (पिता) प्राण "प्राणो वै पिता" [ऐ० २।३८] (धियः) प्रज्ञान—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार (देवेषु) परमात्मा देव में "बहुवचनमादरार्थं यद्वा" उसके दिव्य गुणों में (आनजे) 'एकवचनं व्यत्ययेन' लग जावें ।

समस्त पूज्यों में सर्वपूज्य प्रशंसनीय कमनीयों में कमनीय प्रियों में श्रेष्ठ कमनीयकान्त परमात्मा उपासक के अन्दर अपने प्रज्ञानों को प्रदर्शित करता हुआ साक्षात् होता है परन्तु कब जब कि उपासक की आयु अर्थात् परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति के लिये हो तथा प्राण भी उसके लिये चलें जीने मात्र के लिये न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलें, उपासक के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार भी उस परमात्मदेव में लगे रहें उसका मनन, विवेचन, स्मरण, ममत्व परमात्मा के प्रति होता रहे तो निःसन्देह ये सब उसके साक्षात् के द्वार बनकर उसे साक्षात् करा देंगे ॥ ४ ॥

ऋषिः—श्यावाश्वः (प्रगतिशील इन्द्रियघोड़ोंवाला संयमी जन †)

देवता—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धाः—मरुतः' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध मरुत—शुष्कभाव को मारने वाले गुण)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
१ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवाꣳसि कृण्वते ॥५॥

(यदि) 'यद्-ङि' 'छान्दसप्रयोगः सप्तम्याम्' जिस समय (रथेषु) गन्ध आदि रमणीय भोगों में (भ्राजमानाः) प्रकाशमान "भ्राजृ दीप्तौ" [भ्वादि०] (आशवः) मरुत—भोग—वासना को मारने वाले त्रिलोकी में व्यापने वाले परमात्मधर्म "वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत् स एषु त्रिषु लोकेषु वर्तते" [श० ८।४।१।९] (आवहन्ति) हमें ले जाते हैं (तत्र) उस समय (मदिरं मधु पिबन्तः) हर्षकारक मधु—मीठे उपासनारस का पान—स्वीकार करते हुए (श्रवांसि कृण्वते) उन गन्धादि भोगों को प्रशस्त—श्रेष्ठ भोगधन कर देते हैं "श्रवः-इच्छमानः प्रशंसामिच्छमानः" [निरु० ९।१०]

गन्ध आदि रमणीय भोगों को भोगते हुए परमात्मा के

† "श्यैङ् गतौ" [भ्वादि०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापन धर्म उपासक के उपासनारस से युक्त हुए हों तो वे उन भोगों में प्रशस्त सुख करने वाले हो जाते हैं, अतः संसार में उपासकों को केवल भोग की दृष्टि से नहीं किन्तु उनमें परमात्मा के व्यापन कला धर्मों को अनुभव करना चाहिए ॥ ५ ॥

ऋषिः—शंयुः (कल्याणस्वरूप परमात्मा की ओर चलने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं विश्वासाहं नरꣳ शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

(वः) 'यूयम्' विभक्तिव्यत्ययः' तुम (त्यम्) उस (अप्रहणम्) जिसका कोई प्रहर्ता नहीं या जो उपासक का प्रहर्ता नहीं उस ऐसे—(शवसः-पतिम्) बल के स्वामी (विश्वासाहम्) सबको सहने—सबको दबा देने वाले (नरम्) नेता—(शचिष्ठम्) अति हित वक्ता "शच व्यक्तायांवाचि" [भ्वादि०] (विश्ववेदसम्) सब सुख धन वाले—(इन्द्रम्) परमात्मा की (उ) अवश्य (गृणीषे) 'गृणीत' 'वचनव्यत्ययः' स्तुति करो ।

परमात्मा स्वरूपतः किसी पर प्रहार न करने वाला बलस्वामी समस्त दोषों का तिरस्कारकर्ता नेता अत्यन्त हित वक्ता सर्वधन वाला है उसकी उपासना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय देव जिसका है ऐसा उपासक)

देवता—दधिक्रावा 'इन्द्रसम्बद्धो दधिक्रावा' (परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाला ध्यान में आने वाला गुण देव)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
३ २ ३ १ २ २ ३ ३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूꣳषि तारिषत् ॥७॥

(जिष्णोः) जयशील—(अश्वस्य) व्यापक—(वाजिनः) अमृत अन्न वाले (दधिक्राव्णः) जगत् को धारण किए हुए परमात्मा के "देवपवित्रं वै दधिक्राः" [ऐ० ६।३६] (अकारिषम्) स्तुति करूं (नः) हमारे (मुखा) मुख में होने वाले या मुख-स्वरूप नासिका जिह्वा आदि ज्ञानेन्द्रियों को (सुरभि) सुगन्ध वाले (करत्) करो (नः-आयूंषि) हमारी आयुओं को (प्रतारिषत्) बढ़ावें।

पवित्रदेव परमात्मा जो जयशील अमृतयोग का निमित्त व्यापक है वह हमारी इन्द्रियों को सुवासित करने वाला और आयुओं को बढ़ाता है उसकी स्तुति किया करें ॥ ७ ॥

ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः (मीठी इच्छा वाले या मधु-परायण का पुत्र या शिष्य जितेन्द्रिय या वासना जीत चुका जन)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३ २ ३ १र २र ३ १र २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (पुरां भिन्दुः) उपासकों के देहपुरों—देह बन्धनों को भेदन करने वाला 'मुक्ति देकर' (युवा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा समर्थ अजर (कविः) सर्वज्ञ उपदेष्टा (अमितौजाः) अनन्त बल वाला (विश्वस्य कर्मणः-धर्त्ता) जगद्रचन कर्म का धारक (वज्री) शासनवान् शासक "वज्रः शासः" [श० ३।१।८।५] (पुरुष्टुतः) बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य (अजायत) उपासक के हृदय में साक्षात् प्रसिद्ध होता है।

परमात्मा उपासकों के देहबन्धन का काटने वाला मुक्ति देने वाला, उनका सर्वज्ञ उपदेशक अनन्त आत्मबल वाला संसार का रचनादि कर्म का अधिष्ठाता जीवों का शासक कर्मफल विधाता बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य उनके अन्दर साक्षात् होता है ॥ ८ ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—प्रियमेधाः (प्रिय है परमात्मसङ्गति जिसको ऐसा जन)

१ २ ३ १   ३ १२ ३ १२ ३ १ २
प्रप्रवस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३   १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

(वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम उपासक जनो ! (वन्दद्वीराय-इन्दवे) "वन्दन्तो वीरा यस्य" वन्दना करते हुए वीर जिससे हो जाते हैं, ऐसे ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये (त्रिष्टुभम्-इषम्) तीन—स्तुतिप्रार्थना उपासनारूप अर्चन वाला "स्तोभति-अर्चति कर्मा" [निघं० ३।१] अभीष्ट को (प्र प्र) पुनः-पुनः प्रस्तुत करो—प्रकृष्टरूप से अर्पित करो जिससे (मेधसातये)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी सङ्गति प्राप्ति के लिए "मेधृसङ्गमे" [भ्वादि०] (वः) तुमको (पुरन्ध्या) बहुत कर्मशक्ति वाली—"धीः कर्मनाम" [निघं० ३।९] (धिया) प्रज्ञा से—"धीः प्रज्ञानाम" [निघं० २।१] (विवासति) विशेषरूप से वासित करता है "अन्तर्गतणिजर्थः"।

उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिये स्तुतिप्रार्थना उपासनारूप अर्चन अभीष्ट भेंट अवश्य समर्पित करो जिसकी वन्दना करते हुए जन सब प्रकार वीर हो जाते हैं तथा अपनी सङ्गति की प्राप्ति के लिए तुमको बहुत कर्मशक्ति वाली बुद्धि से विवासित भूषित कर देता है ॥ १ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव वाला)

३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२॥

(कश्यपस्य) देखने वाले—सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १।८।८] (स्वर्विदः) स्वः-मुक्त के लिए मोक्ष सुख रखने वाले या मोक्ष सुखानुभव कराने वाले परमात्मा के—उसकी प्राप्ति के लिए (यौ सयुजौ) जो दोनों परस्पर साथी साधन दो हरियाँ—ऋक् और साम--स्तुति और उपासना है (इति धीराः-आहुः) ऐसा धीर-ध्यानी जन कहते हैं (ययोः) जिन दोनों में या दोनों के अन्तर्गत—जिनके परिपालनार्थ (विश्वं व्रतं यज्ञम्) समस्त सङ्कल्प और यज्ञ—श्रेष्ठतम कर्म (निचाय्य) निचयन करके सेवन करें।

परमात्मा सर्वसाक्षी तथा मोक्ष का स्वामी है उसकी दो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरियाँ—ऋक्, साम, स्तुति और उपासना को धीर मुमुक्षुजन प्रशंसित करते हैं इनके परिपालनार्थ सङ्कल्प और श्रेष्ठ कर्म कहते हैं इन्हें अपने जीवन में धारण करें ॥ २ ॥

ऋषि—प्रियमेधाः (प्रिय है परमात्मसङ्गति जिसको ऐसा जन)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
१ २ ३ २ ३२उ ३ १ ३क २र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥३॥

(प्रियमेधासः-नरः) हे परमात्मसङ्गतिप्रिय नरों—देवपुरुषों—मुमुक्षुओं "नरो हवै देवविशः" [जै० १।८९] (पुरम्-इत्-धृष्णु) कामपूरक तथा शुभगुणपूरक पापधर्षणशील परमात्मा को (अर्चत) सत्कृत करो स्तुतिद्वारा (अर्चत) सत्कृत करो प्रार्थना द्वारा (प्र-अर्चत) प्रकृष्ट सत्कृत करो उपासना द्वारा (पुत्रकाः-उत) तुम्हारे पुत्र भी (अर्चन्तु) सत्कृत करें (अर्चत) इस प्रकार सब मिलकर सत्कृत करो।

परमात्मा की सङ्गति के प्रेमी मुमुक्षुजनो ! तुम उस दोष—विनाशक सद्गुण शुभकामनापूरक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना द्वारा अर्चना करो और सपरिवार पुत्रों शिष्यों सहित करो, मुमुक्षुओं का कर्तव्य है अपने सन्तानों शिष्यों के अन्दर भी मुमुक्षु भावना को भरें ॥ ३ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण)

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उक्थमिन्द्राय शꣳस्यं वर्धनं पुरु निःषिधे ।
३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरु निःषिधे) बहुत या अत्यन्त पाप दोष निवारक गुण-साधक (इन्द्राय) परमात्मा के लिए (वर्धनम्-उक्थं शंस्यम्) हमारी वृद्धि के साधनभूत वक्तव्य प्रशंसा योग्य स्तुतिवचन कहना चाहिए (यथा) जिससे कि (शक्रः) सर्वशक्तिमान् समर्थ परमात्मा (नः) हमारे (सुतेषु) निष्पन्न उपासनारसों में (च) और (सख्येषु) सखिभावों—मित्रभावों में (रारणत्) रमण करें—रुचि करें "रारण रमे" [निरु० ११।२९]।

परमात्मा अत्यन्त दोषनिवारक एवं अत्यन्त गुणसाधक है उसकी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिये स्ववृद्धिकर प्रशंसनीय स्तुति-वचन कहना चाहिये जिससे वह सर्वसमर्थ परमात्मा हमारे उपासनारसों को स्वीकार करने में और हमारे मित्रभावों प्रेमभावों में रमे—रुचि करे—हमें रुचि से अपनावे ॥ ४ ॥

ऋषिः—प्रियमेधः (प्रियमेधा जिसको है ऐसा विद्वान्)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥५॥

(विश्वान्-अरस्य) सब लोकों को प्राप्त सूर्य के "विश्वानरः प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि" [निरु० ७।२१] "विश्वानरस्यादित्यस्य" [निरु० १२।२३] तथा (अनानतस्य शवसः) न—आनत—न नम्र होने वाले बलरूप सृष्टिक्रम के (वः) 'त्वाम्' तुझ (पतिम्) स्वामी इन्द्र—परमात्मा को (चर्षणीनाम्-एवैः) हम मनुष्यों के कामनाओं के लक्ष्य से "एवैः कामैः" [निरु० १२।२३] (च) और (रथानाम्-ऊती) अपने रमण साधनों—इन्द्रियों की रक्षा के लिये (हुवे) आमन्त्रित करता हूँ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा समस्त पृथिवी चन्द्र आदि लोकों का और महान् सृष्टिक्रम बल का स्वामी है उसको हम कामनापूर्ति के हेतु और अपनी इन्द्रियों की रक्षा के हेतु आमन्त्रित करते रहें ॥५॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अध्यात्म योग को अपने में भरण करने वाला जन)

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र३ १२
सघा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
३ १र २र३ १ ३ २ ३ २उ ३ १ २
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अँ हो न तरति ॥ ६ ॥

(ते दिवः-नरः-शमतः-अमर्तस्य) तुझ अमृतलोक—मोक्षधाम के नेता शान्ति देते हुए अमर देव का (यः-धिया सघा) "सघा सखा वर्णव्यत्ययः" जो ध्यान द्वारा सखा हो जाता है (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा से (बृहतः-दिवः) उस महान् मोक्षधाम के (द्विषः) विरोधी विघ्नों बाधकों को (अंहः-न तरति) संसार के साधारण पाप के समान तर जाता है।

मोक्षधाम के नायक तथा उपासकों को शान्ति सुख के दाता अमरदेव परमात्मा का जो ध्यानोपासना से सखा—मित्र बन जाता है वह उसकी रक्षा से कृपा से महान् मोक्षधाम के विरोधियों को साधारण विघ्न के समान पार कर जाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—अत्रिः (इस जीवन में ही तृतीय ज्योति परमात्मा का साक्षात्कर्ता)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नँ सुदत्र मँ हय ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शतक्रतो-इन्द्र) हे बहुत कर्मशक्तिमन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (ते विभोः-राधसः) तेरे विभुधन—महान् धन का (विभ्वी रातिः) महान् दान है (अथ) और "अथ समुच्चये" [अव्ययार्थनिबन्धम्] (विश्वचर्षणे सुदत्र) हे सर्वद्रष्टा अच्छे दाताकल्याणदानी 'सुदत्रः कल्याणदानः' [निरु० ६।१४] (नः) हमारे लिये (द्युम्नं मंहय) द्योतमान धन को प्रदान कर "मंहतेर्दानकर्मणः" [निरु० १।७]।

हे बहुत कर्म प्रवृत्ति वाले—अनन्त कर्मशक्तिमन् परमात्मन्! तेरा धन महान् है तेरे धन से संसार भरा पड़ा है और मोक्षधाम भी तेरे अमर धन से भरा पड़ा है, उस महान् धन का दान भी महान् तू करता है इस संसार में भी विविध दान तेरे जीवों के प्रति हैं एवं मोक्षधाम में मुमुक्षुओं को महान् आनन्द दान देता है और सर्वद्रष्टा भद्रदानी परमात्मन्! तू हमें कल्याणकारी द्योतमान ज्ञान दान दे जिससे इस संसार के और मोक्ष के दोनों धनों का उपभोग कर सकें ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अति मेधावी—लोक से ऊपर अध्यात्म में मेधा रखने वाला)

देवता—उषाः 'इन्द्रसम्बद्धा' (परमात्मज्योति)

१ २ ३ १ ३ ३ १र २र
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि।
२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

(अर्जुनि) अर्जुन—शुभ्रस्वरूप इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा की "अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः" [श० २।१।२।११] (उषः) दीप्त शक्ति (दिवः-अन्तेभ्यः-परि) आकाश के प्रदेशों से लेकर पृथिवी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक तेरे या तेरे द्वारा (वयः-चित्) अन्नमात्र—अद्यमान वनस्पतिवर्ग "वयः-अन्ननाम" [निघं० २।७] "वयः-अन्नम्" [निरु० ६।४] "अन्नं वै वयः" [श० ८।५।२।६] (पतत्रिणः) सब पक्षी (द्विपात्) मनुष्य "द्विपाद् वै पुरुषः" [ऐ० ४।३] (चतुष्पात्) गौ घोड़े आदि चार पैर वाले (ऋतून्-अनु) ऋतुओं के अनुसार अपने अपने समय के अनुसार (प्रारन्) प्राप्त होते हैं—प्रादुर्भूत होते हैं—प्रकट होते हैं।

परमात्मा की शुभ्र या दीप्त शक्ति के द्वारा आकाश से पृथिवी तक समस्त गोधूम आदि ओषधि वनस्पतियाँ पक्षी मनुष्य गौ आदि पशु अपनी ऋतु या समय के अनुसार प्रारम्भ सृष्टि में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं। अतः हम इस महती दीप्तशक्ति को अपने अन्दर बसा कर जीवन का विकास करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—त्रित आप्त्यः (तीर्णतम परमात्मप्राप्ति से—ऊँचा उठा)

देवता—विश्वे देवाः 'इन्द्रसम्बद्धाः' (परमात्मा के दिव्य धर्म)

३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
१ २ ३ २उ ३ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥

(दिवः-आरोचने मध्ये) ज्ञानप्रकाशक इन्द्र—परमात्मा के समन्त प्रकाश स्थान के मध्य में (अमी ये वः-देवाः—स्थन) वे जो 'वः यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम विद्वान्जन हो (कत्-ऋतम्) क्या ऋत है सत्य है (कत्-अमृतम्) क्या अमृत है (का प्रत्ना-आहुतिः) क्या पुरातनी सदा से चली आई आहुति देने लेने योग्य भेंट है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा के गुण प्रकाशनार्थ सम्मेलन होने चाहिए उनमें एकत्र विद्वानों में चर्चा चलनी चाहिए क्या ऋत धर्म है जिससे संसार का नियन्त्रण परमात्मा कर रहा है जीवात्माओं को भोग-फल एवं अभ्युदय देता है और क्या अमृत धर्म है जिससे मुक्तों के लिए मोक्ष की प्रवृत्ति है—मोक्षानन्द दे रहा है। इन दोनों में अधि-नायक परमात्मदेव को मान उसके आदेश का पालन और आरा-धन करना चाहिए ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)

देवता—ऋक्सामे 'इन्द्रसम्बद्धे' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा के ऋक्साम—स्तुति उपासना)

२ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
ऋचं ँ साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
१२ २२ ३ २ ३ १ २
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥

(ऋचं साम यजामहे) परमात्मा की स्तुति और उपासना को हम सेवन करें (याभ्यां कर्माणि कृण्वते) जिनके द्वारा—जिनके सेवन के साथ श्रेष्ठकर्म जन करते हैं (ते) वे दोनों (सदसि) हमारे हृदयसदन में (विराजतः) विशेषरूप से बने रहें स्थान जमावें (यज्ञं देवेषु वक्षतः) हमारे अध्यात्म यज्ञ को हमारी समस्त इन्द्रियों में प्रवाहित करें।

समस्त श्रेष्ठ कर्मों को परमात्मा की स्तुति उपासना से आरम्भ करना चाहिए, हमारे हृदय में स्तुति उपासना घर कर जावें और हमारी इन्द्रियों में अध्यात्मता का सञ्चार करदें जिससे इन्द्रियाँ असंयम का कार्य न कर सकें ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय खण्ड

ऋषिः—रेभः (परमात्मा की अर्चना करने वाला †)

छन्दः—जगती

२ ३१२ ३ १२३१२ ३१ २ ३१ २ ३१ २ ३१२
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
२ ३१२ ३२ ३१२३१र २र ३१२ ३ १ २
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

(नरः) मुमुक्षुजन "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (सजूः) सजोषण—समानभावना से युक्त हो "सजूः-सजोषणः" [निरु० ९।१२] (इन्द्रं विश्वाः पृतनाः-अभिभूतरम्) परमात्मा को अपनी समस्त विरोधी प्रतिकूल प्रवृत्तियों पर "पृतनां द्विषन्तं भ्रातृव्य...." [जै० २।९१] अत्यन्त अभिभव करने वाला (ततक्षुः) करा—निश्चित करा "ततक्षुः-चक्रुः" [निरु० ६।२७] (च) और (राजसे जजनुः) स्वयं भी उन पर अधिकार पाने को "राजति-ऐश्वर्यकर्मा" [निघं० २।२१] अपने सुन्दर प्रादुर्भूत किया—साक्षात् किया (क्रत्वे) अध्यात्मकर्म के लिये (वरे स्थेमनि) वरते हैं जहाँ रहें उस ऐसे हृदयस्थान में (आमुरीम्) वासना को समन्तरूप से मारने वाले—(उत) और (उग्रम्-ओजिष्ठम्) तेजस्वी भारी ओजवाले (तरसं तरस्विनम्) बलस्वरूप बलवान् को धारण करते हैं।

स्तोता जन अपने समस्त विरोधी भावों को दबा देने वाले परमात्मा को ही निश्चित करते हैं तथा स्वयं अपने में उन पर अधिकार करने को उसे अन्दर साक्षात् करते हैं, अध्यात्म कर्म करने के लिए वरण करने के लिए हृदय स्थान में उस वासनाओं के समन्त

† "रेभति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से मार देने वाले बड़े तेजस्वी ओजस्वी बलरूप बलवान् परमात्मा को उपासित करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—सुवेदः शैलूषिः (अच्छा ज्ञाता शील-समाधि में बसने वाले का शिष्य †)

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद्दस्युं नर्यम् विवेरपः ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात् पृथिवी
२
चिदद्रिवः ॥२॥

(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मन् ! (ते प्रथमाय मन्यवे) तेरे श्रेष्ठ तेज के लिए "मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः" [निरु० १०।३०] (श्रत्-दधामि) श्रद्धा करता हूं—स्वागत करता हूं (यत्-नर्यं दस्युम्-अहन्) जो नर—देवजन मुमुक्षुजन के दस्यु उपक्षीण—करने वाले विरोधी विचार को मारता है (अपः-विवेः) मोक्षयोग्य कर्म को विस्तृत करता है "अपः कर्मनाम" [निघं० २।१] (यत्) 'यतः' क्योंकि (उभे रोदसी) दो द्यावापृथिवी—द्युलोक और पृथिवीलोक (त्वा-अनु) तेरे अनुशासन में या अनुसार (भ्यसात्) भय से (धावाताम्) अपनी अपनी गति करते हैं (पृथिवी चित्-ते शुष्मात्) प्रथनशील अन्तरिक्ष भी तेरे बल—शासन में प्रथित हो रहा है "पृथिवी-अन्तरिक्षनाम" [निघं० १।३] "शुष्मं बलम्" [निघं० २।९] ।

परमात्मन् ! तू बड़ा दयालु है जो अपने मुमुक्षु उपासक के विरोधी रुकावट करने वाले विचार को नष्ट करता है दस्यु की तो

† "शील समाधौ" [भ्वादि०]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात क्या ये द्युलोक पृथिवीलोक और अन्तरिक्षलोक भी तेरे शासन बल भय में अपनी गतिविधि और स्थिति में वर्तमान हैं अतः तेरे इस दीप्त तेज शासन पर मैं श्रद्धा करता हूं ॥ २ ॥

ऋषिः—वामदेवः वननीय—उपासनीय देव जिसका है ऐसा उपासक)

३ २ ३ १ ३ १ २ ·३ १ २ ३ २उ ३ १र २र ३ १ २
समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इत् भूरतिथिर्जनानाम्।
२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषन्तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३॥

(विश्वाः) समस्त मानव प्रजाओं ! (दिवः-पतिम्) मोक्षधाम के स्वामी को (ओजसा समेत) अपने पूर्णबल से सम्प्राप्त होओ (यः-एकः-इत्) जो अकेला ही (जनानाम्-अतिथिः-भूः) जन्यमान मनुष्यों के अन्दर अन्तर्यामीरूप से विराजने वाला है (सः) वह (पूर्व्यः) उनकी उत्पत्ति या शरीर में आने से पूर्व पुरातन—पूर्व से ही वर्तमान हुआ (नूतनम्) नवीन—पश्चात् शरीर में आने वाले (आजिगीषन्तम्) शरीर को अभिभूत—स्वाधीन करने के इच्छुक जीवात्मा को "जि-अभिभवे" [भ्वादि०] (एकः-इत्) अकेला ही (वर्तनीः-अनुवावृत्ते) कर्मानुसार गतियों के पीछे "वर्तते गतिकर्मा" [निघं० २।४] घुमाता है।

परमात्मा में प्रवेश करने वाले उपासक मोक्षधाम के स्वामी परमात्मा को अपने आत्मिकबल से प्राप्त होते हैं जो कि अकेला ही जन्यमान वस्तुओं में अन्तर्यामीरूप से विराजमान स्वामी सनातन है शरीर पर अधिकार जमाने के इच्छुक इसके स्वामी जीवात्मा को कर्मानुसार गतियों में घुमाता है ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—सव्य आङ्गिरसः (प्राणविद्यावेत्ता—प्राणायामाभ्यासियों में ऐश्वर्यवान् उपासक)

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो
१ २
वचः ॥४॥

(प्रभूवसो) हे बहुत धन वाले (पुरुष्टुत-इन्द्र) बहुत प्रकार से स्तुत्य परमात्मन् ! (इमे) ये वे (ये वयं ते) जो हम तेरे उपासक (त्वा-आरभ्य चरामसि) तुझे आरम्भ कर—तेरा आश्रय लेकर जीवनयात्रा करते हैं (गिर्वणः) हे स्तुतियों से वननीय—सेवनीय परमात्मन् ! (त्वत्-अन्यः) तुझसे भिन्न (गिरः) हमारी प्रार्थनाओं को (न हि सघत्) नहीं व्याप्त होता है—"षघ अत्र व्याप्त्यर्थश्छान्दसः" (क्षोणिः-इव नः-तत्-वचः-प्रतिहर्य) पृथिवी के समान हमारे उस प्रार्थनावचन को चाह—स्वीकार कर, "क्षोणिः पृथिवीनाम" [निघं० १।१] "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २।६] ।

हे बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य और बहुत धन वाले परमात्मन् ! ये हम तेरे उपासक तुझे अपना आश्रय बनाकर जीवनयात्रा करते हैं हे स्तुतियों से सेवन करने योग्य तुझसे भिन्न कोई नहीं जो हमारी प्रार्थनाओं को प्राप्त हो सके उन पर ध्यान दे सकें, तू हमारे वचनों को चाहता है पृथिवी की भांति जैसे पृथिवी अपने आश्रित पदार्थों को त्यागती नहीं है निमित्त से अलग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुओं को अपना आश्रय देती है ऐसे तू भी अपने आश्रित हम उपासकों को नहीं त्यागता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र सब जिसके मित्र हों ऐसा उपासक)

३ १ ३१२ ३ २ २ ३ १२ ३ २ ३क २२
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यामिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
३ १ २ ३१ २ ३ २ ३१२ ३ १ २ ३ १ २
वावृधानं पुरुहूतꣳ सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥५॥

(बृहतीः-गिरः) हे हमारी बड़ी बड़ी पुकार वाली वाणियो ! तुम (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारण करने वाले संरक्षक "चर्षणीधृतः-मनुष्यधृत" [निरु० १२।४०] (मघवानम्) प्रशस्त धन वाले—(उक्थ्यम्) प्रशंसनीय—"उक्थ्यं वक्तव्यप्रशंसम्" [निरु० ११।२१] (वावृधानम्) हमें बढ़ाने वाले—"वावृधानः-वर्धयमानाः" [निरु० १०।२६] (पुरुहूतम्) 'बहुत प्रकार से—बहुत नामों गुणकर्मों से आमन्त्रित करने योग्य (अमर्त्यम्) मरणधर्मरहित—अजर अमर—(जरमाणम्) स्तुति किए जाते हुए—"जरते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] 'कर्तरि कर्मप्रत्ययः' (इन्द्रम्) परमात्मा को (सुवृक्तिभिः) सम्यक् दोषवर्जितस्तुतियों से "सुवृक्तिभिः-सुप्रवृक्ताभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः" [निरु० २।२४] (दिवे-दिवे) दिनदिन—प्रतिदिन (अभ्यनूषत) निरन्तर स्तुति करो ।

हे मेरी बड़ी–बड़ी पुकार वाणियों उक्तियों ! तुम मनुष्यों के धारक प्रशस्त धन वाले प्रशंसीय बढ़ाने वाले बहुत प्रकार से आमन्त्रण के योग्य अमर हमारे द्वारा स्तुत करने योग्य परमात्मा की प्रतिदिन दोषरहित भावनाओं से वार–वार स्तुति करो ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—कृष्ण आङ्गिरस (प्राणविद्या में सम्पन्न परमात्मा के प्रति आकर्षित जन)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीनूरषत ।
१ २ ३ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परिष्वजन्त जनयो यथापतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६॥

(स्वर्युवः) मोक्ष सुख चाहती हुई (मतयः) हे परमात्मा की उपासक प्रजाओ ! "प्रजा वै मतयः" [तै० आ० ५।६।८] (वः) 'यूयम्' 'विभक्तिव्यत्ययः' तुम (विश्वाः) सब (सध्रीचीः) सह-भाव को प्राप्त हुई (इन्द्रम्-उशतीः) परमात्मा को चाहती हुई (अच्छा-अनूषत) निरन्तर परमात्मा की स्तुति करो (जनयः-यथा पतिं परिष्वजन्त) स्त्रियाँ जैसे पति को आलिङ्गित करती हैं ऐसे परमात्मा को आलिङ्गित करो (मर्यं न शुन्ध्युं मघवानम्) अथवा जैसे पवित्र धनैश्वर्य वाले राजा जन को याचक लोग प्राप्त होते हैं (ऊतये) रक्षा के लिये ऐसे पास आओ।

मोक्षसुख को चाहते हुए सब उपासकजन सहभाव वाले हुए परमात्मा की कामना करते हुए निरन्तर उसकी स्तुति करें, जैसे स्त्रियाँ अपने पति को आलिङ्गित करती हैं ऐसे उसे आलिङ्गित करें या जैसे पवित्र ऐश्वर्यवान् राजा के प्रजाजन अपनी रक्षा के लिए प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—सव्यः (मोक्षैश्वर्य का अधिकारी)

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभित्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १र २र ३ १र २र
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्यं मेषम्) उस सुख के सिञ्चन करने वाले—"मिषु सेचने" [भ्वादि०] (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य—(ऋग्मियम्) स्तुतियों से तुलित करने योग्य—ऋचाओं-स्तुतियों से अर्चनीय—(वस्वः-अर्णवम्) भोगधन के सागर—(इन्द्रम्) परमात्मा को (गीर्भिः) स्तुतिवचनों से (अभिमदत) हर्षित करो (यस्य) जिसकी व्याप्तियाँ या कर्मशक्तियाँ (द्यावः-न) द्योतमान किरणों के समान (मानुषं विचरन्ति) मनुष्य हितकारी पृथिवी पर "मानुषः……मनुष्यहितः" [निरु० १३ (१४)।३७(५०)] प्राप्त हो रही है (भुजे) अपने पालनार्थ (मंहिष्ठं विप्रम्-अभि-अर्चत) पूजनीय विशेष तृप्ति करने वाले परमात्मा को—अर्चित करो।

परमात्मा भारी सुख का सीञ्चने वाला है बहुत प्रकार से आमन्त्रणीय स्तुतियों से तुलित करने योग्य जानने योग्य धनैश्वर्य का सागर है उस ऐसे इष्टदेव को स्तुतियों द्वारा अनुकूल बनाना चाहिए, उसकी व्याप्तियाँ या कर्मशक्तियाँ सूर्यकिरणों के समान मनुष्य के हितार्थ पृथिवी पर भी फैल रही हैं उस ऐसे इष्टदेव की अर्चना करना हमारा कर्तव्य है ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
त्यꣳ सु मेषं महया स्वर्विदꣳ शतं यस्य सुभुवः साकमीरते।
२ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
अत्यं न वाजꣳ हवनस्यदꣳ रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥

(त्यं सुमेषं स्वर्विदम्) उस उत्तम सुखसिञ्चन करने वाले तथा मोक्ष सुख प्राप्त कराने वाले परमात्मा को (सुमहय) उत्तम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से अर्चित कर "महयति-अर्चति कर्मा" [निघं० ३।१४] (यस्य) जिसकी (शतं सुभुवः) सैकड़ों सुभूतियाँ—कल्याण-विभूतियाँ उपासक के अन्दर (साकम्-ईरते) एक साथ प्राप्त होती है (रथं हवनस्यदम्) रथ के प्रति आमन्त्रण पर चल पड़ने वाले (वाजम्-अत्यं न) बलवान् घोड़े के समान (इन्द्रम्) परमात्मा को (अवसे) तृप्ति के लिए "अवरक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्ति ...." [भ्वादि०] (सुवृक्तिभिः) सुप्रवृत्तियों—सत्स्तुतियों द्वारा (आववृत्याम्) पुनः पुनः आवर्तित करूं—सेवन करूं।

परमात्मा सुखसेचक मोक्षानन्द का स्वामी उसे प्राप्त कराने वाला है उपासक के अन्दर जिसकी कल्याणविभूतियाँ एक साथ सञ्चार करने लगती हैं रथ के प्रति आमन्त्रण पर चल पड़ने वाले बलवान् घोड़े के समान को उत्तम आचरणों स्तुतियों के द्वारा अपनी तृप्ति के लिए अपने जीवन में पुनः पुनः धारण करूं ॥८॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अमृतान्न का अपने में भरण करने वाला)

देवता—द्यावापृथिवी—'इन्द्रसम्बद्धौ द्यावापृथिवी' (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध ऊपर नीचे के जगत्)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
१ २ ३ १र २र ० १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥

(वरुणस्य) वरने योग्य एवं वरने वाले—इन्द्र परमात्मा के "इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः" [गो० २।१।२२] (धर्मणा) धारण बल से वर्तमान (द्यावापृथिवी विष्कभिते) विश्व का उपरि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग प्रकाशात्मक और नीचे का भाग प्रकाश्यरूप दोनों शिल्प-रूप विरुद्धभाव से दृढ़ किए हैं जो कि (घृतवती) तेजधर्म वाले और रेतधर्म वाले हैं "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८] "रेतो वै घृतम्" [काठ० २६।७] (भुवनानाम्-अभिश्रिया) समान भूतों जड़ जङ्गमों का आश्रय है "भुवनं विचष्टे भूतान्यभिविपश्यति" [निरु० १०।४६] (उर्वी पृथ्वी) महती फैली हुई हैं (मधुदुघे) जल और अन्न को दोहने वाली "मधु-उदकनाम" [निघं० १।१२] "अन्नं वै भद्रं मधु" [तै० १।३।३।६] (सुपेशसा) सुन्दररूप वाले सुनहरे और हरियावल आदि युक्त "पेशो हिरण्यनाम" [निघं० १।२] "पेशो रूपनाम" [निघं० ३।७] (अजरे) जब तक सृष्टि तब तक स्थिर रहने वाले (भूरिरेतसा) बहुत अग्नि-तत्त्व वाले और सोमधर्म वाले "रेतो वा अग्निः" [मै० ३।२।१] "रेतो वै सोमः" [श० १।९।२।९]।

परमात्मा के धारणबल से विश्व का उपरिभाग द्युमण्डल और नीचे का भाग भूमण्डल कार्यरूप शिल्परूप प्रदेश परमात्मा ने जड़ जङ्गम के आश्रयभूत महान् प्रसारयुक्त आकाश में दृढ़ स्थापित किए हैं जिनमें से ऊपर नीचे के क्रम से एक ऊपर का भाग द्युमण्डल तेजधर्म वाला नीचे का रेतधर्म वाला क्रमशः जल और अन्न को दोहने वाले द्युमण्डल जल को नीचे प्रेरित करता है पृथिवी मण्डल अन्न—अदनीय वस्तु को प्रेरित करता है, सुन्दर-रूप वाले द्युमण्डल सुनहरी बनाता है भूमण्डल हरे आदि नाना रूपों में सजाता है, दोनों सृष्टि के पूर्ण समय तक रहने वाले तथा क्रमशः अत्यन्त अग्निस्वरूप और सोमस्वरूप हैं। अतः उस पर-मात्मा की उपासना करनी चाहिए जिसके ये दोनों उपयोगी कार्य या शिल्प हैं ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—मेधातिथिः (मेधा से परमात्मा में अतन प्रवेश करने वाला)

छन्दः—महापंक्तिः।

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव महान्तं त्वा महीनां
३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र
सम्राजं चर्षणीनाम्। देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा
२र
जनित्र्यजीजनत् ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! (यद्) जब तू (उभे रोदसी) ऊपर नीचे के दोनों द्युमण्डल और भूमण्डल को (आपप्राथ) अपनी उषा—ज्योति से पूरण करता है भरता है तब ऐसा लगता है (उषाः-इव) तेरी ज्योति 'इव' 'अत्र पदपूरणः' "परोक्षप्रिया इव हि देवाः" [गो० १।२।२१] "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १।११] (त्वा महीनां महान्तम्) तुझ महान से महान् को (भद्रा देवी) यह कल्याणकारिणी देवी (जनित्री) प्रकाश में करने वाली बनी हुई (चर्षणीनां सम्राजम्) मनुष्यों में सम्यक् राजमान को (अजीजनत्) प्रादुर्भूत कर रही है प्रदर्शित कर रही है (जनित्री-अजीजनत्) हाँ प्रादुर्भूत करने वाली प्रादुर्भूत कर रही है—प्रदर्शित कर रही है।

परमात्मन्! जब तू अपनी ज्योति से ऊपर नीचे के दोनों द्युमण्डल और भूमण्डल को भरपूर कर देता है तो वह कल्याण-कारिणी देवी मनुष्यों के अन्दर महान् से महान् सम्राट्—संसार में सम्यक् राजमानरूप में तुझे प्रकट—प्रदर्शित करने वाली प्रदर्शित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देती है अतः हम उपासक विश्व में व्याप्त तेरी ज्योति को अनुभव करें ॥ १० ॥

ऋषिः—कुत्सः (परमात्मा की स्तुति करने वाला †)

छन्दः—जगती ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तꣳ सख्याय हुवेमहि ॥११॥

(मन्दिने) स्तुति करने योग्य परमात्मा के लिए "मन्दी मन्दतेः स्तुतिकर्मणः" [निरु० ४।२४] (पितुमत्-वचः) प्यायन—प्रसन्नता कारक वचन "पितुः प्यायतेर्वा" [निघं० ९।२४] (प्रार्चत) प्रार्चित करो—भेंट समर्पित करो (यः) जो परमात्मा (ऋजिश्वना) सरलगति शक्ति से (कृष्णगर्भाः) पाप जिनके गर्भ में—अन्दर है—पापगर्भित वृत्तियों वासनाओं को (निरहन्) निर्हत कर देता है (वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तम्) उस सुखवर्षक ओज के प्रेरक प्राणवान् सबमें प्राणप्रद परमात्मा को (सख्याय) मित्रभाव के लिए (अवस्यवः) हम रक्षा चाहने वाले (हुवेमहि) आमन्त्रित करें।

परमात्मा हमारी पापगर्भित वृत्तियों को अपने सरल स्वभाव से नष्ट कर देता है यदि हम उस स्तुति करने योग्य के लिए प्रसन्नताकारक स्तुतिवचन अर्पित करें। उस ऐसे सुखवर्षक ओज

† "कुत्सः कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३।११]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रसारक प्राणसञ्चारक परमात्मदेव को मित्रता के लिए हम अपनी रक्षा चाहने वाले उपासक नित्य निरन्तर हृदय में आमन्त्रित करते रहें ॥ ११ ॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—नारदः (नरद्—सद्भाव का रदन न करने वाले का
शिष्य या नारा—नर सम्बन्धी जीवन विज्ञान दाता)

छन्दः—उष्णिक् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २२
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ १ ३ २ ३ १ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाꣳहि षः ॥१॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (सुतेषु सोमेषु) निष्पन्न हुए विविध उपासनारसों में—उपासनारसों के प्रस्तुत किए जाने पर (क्रतुम्) सङ्कल्प करने वाले कर्तव्यपरायण उपासक को "स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः" [श० ४।१।४।१] (उक्थ्यं पुनीषे) प्रशंसनीय पवित्र निर्मल बनाता है—समर्थ बनाता है (वृधस्य दक्षस्य) वर्धक आत्मबल के (विदे) प्राप्त होने के लिए मैं तेरी शरण में हूं (सः-महान् हि) वह तू महान् ही है ।

परमात्मा की विविध उपासनाओं के करने पर परमात्मा कामना प्राप्ति योग्य उपासक को सिद्ध कर देता है वृद्धिकारक अध्यात्मबल प्राप्त करने के लिए वह महान् शरण्य है ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी (प्रशस्त इन्द्रियों की सूक्त प्रशंसन वाला, व्यापने वाले प्रशस्त मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार को सूक्त शिवसङ्कल्प बनाने वाला)

१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
१ २ ३ १र २ ३ १र २र
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २ ॥

(तम्) उस (पुरुहूतम्) बहुत प्रकार से आमन्त्रित करने योग्य (पुरुष्टुत) बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य—(इन्द्रम्) परमात्मा को (उ) अवश्य (अभि प्र गायत) अभिलक्षित कर—गाओ (तविषं गीर्भिः-आविवासत) महान् परमात्मा को 'तविषः-महन्नाम' [निघं० ३।३] स्तुति वाणियों से अपने अन्दर परिचरित करो—बिठाओ ।

उपासको ! यदि तुम गाना गाओ तो बहुत प्रकार से आमन्त्रण करने योग्य एवं बहुत प्रकार से स्तुति करने योग्य परमात्मा का ही गाना गाओ अन्य का गाना तुम्हारे लिये अभीष्ट नहीं और वाणियों से प्रशंसा भी करो तो अपने अन्दर करो उसी महान् परमात्मा का प्रशंसन और धारण ध्यान करो अन्य का नहीं ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मदेव ! (ते) तेरे (पृत्सु सासहिम्) हमें प्राप्त विरोधी सम्पर्कों में दुर्वृत्तियों को दबाने वाले—तथा (वृषणम्) सुखवर्षक (लोककृत्नुम्) हमारे जीवन संसार को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने बनाने वाले (हरिश्रियम्) दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले ऋक्साम—स्तुति उपासना पर आश्रित 'ऋक्सामे वा इन्द्रस्य रही' [मै० ३-१०-६] (मदम्) अर्चनीय स्वरूप को "मदति—अर्चति-कर्मा" [निघं० ३।१४] (गृणीमसि) स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं।

हे ओजस्वी परमात्मन् ! विरोधी सम्पर्को दुर्वृत्तियों को दबाने वाले तथापि सुखवर्षक मेरे जीवनसंसार को बनाने वाले दुःखापहारी सुखाहरण करने वाले स्तुति उपासना के आश्रित तेरे अर्चनीय स्वरूप को प्रशंसित करते हैं स्तुत करते हैं—स्तुति में लाते हैं ॥३॥

ऋषिः—पर्वतः (पर्ववान् अभ्युदय और अपवर्ग पर्ववाले परमात्मा को अपने लिये प्रीतिमान् बनाने वाला उपासना साधन वाला)

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यत्) कि जो (सोमम्) सोमरस (विष्णवि) यज्ञ अध्यात्मसम्मेलन में सम्पन्न किया जाता है (यत्-वा घ) या जो भी सोम (आप्त्ये त्रिते) प्राप्तव्य तीर्णतम लोक त्रिसंख्यामित—मोक्ष में (यत्-वा) और जो भी (मरुत्सु) जीवन्मुक्त आत्माओं में "विशो वै मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२] (मन्दसे) तू चाहता है "मदि स्तुति मोद-स्वप्नकान्तिः" [भ्वादि०] (इन्दुभिः-सम्) उन मेरे सभी सोमों उपासनारसों से सङ्गत हो।

परमात्मन् ! तू अपने लिये अध्यात्म सम्मेलन में गानरूप सोम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राप्तव्य तीर्णतम सबसे ऊँचे तृतीयधाम मोक्ष में रहने वाले जीवन्मुक्तों में वर्तमान उपासनारस को चाहता है मेरे में वर्तमान इन सभी सोमों—उपासनारसों के साथ सङ्गत हो अर्थात् मुझे तीनों प्रकार के सोमों—उपासनारसों के समर्पित करने वाला बनादे मैं अध्यात्म सम्मेलन में भी गान रस तुझे दूँ, मोक्षधाम में भी अपना रस पूर्ण समर्पण करूं, और जीवन्मुक्तों की श्रेणि में आकर भी तेरी उपासना में अनन्य बनूं ॥ ४ ॥

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः (विशेष-संस्कृत इन्द्रिय घोड़े रखने में सम्पन्न—समर्थ और सबके प्रति समान मनोभाव वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३१ २ ३१ २ ३ १ २
एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
३ २३ ३ १र २र ३ १२
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्यात्म यज्ञ को प्राप्त एवं अपीडक उपासक ! तू (मधोः-अन्धसः) मधुर आध्यानीय उपासनारस के द्वारा "तृतीयार्थे पञ्चमी छान्दसी" (मदिन्तरम्) अत्यन्त प्रसन्न होने वाले—इन्द्र परमात्मा को "तरत् स मन्दी धावति" [ऋ० ९।५८।१] (इत्-उ-आसिञ्च) अवश्य ही समन्त पूर्ण रूप से सींच (एव हि) ऐसे ही (सदावृधः-वीरः) वह सदा बढ़ाने वाला प्रेरक परमात्मा (स्तवते) स्तुत किया जाता है ।

अध्यात्म यज्ञ के याजक उपासक परमात्मा को अपने मधुर श्रद्धा अनुराग भरे ध्यानोपासनारस से सींचा करें ऐसे ही उसे उन्नत करने वाले प्रगति देने वाले परमात्मा की स्तुति की जाया करती है ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १र २र
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१र २र ३ २
प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥६॥

(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (इन्दुम्-आसिञ्चत) उपासको ! रसीले सोम—उपासनारस को सींचो--प्रसारित करो "सोमो वा इन्दुः" [श० २।२।३।२३] (सोम्यं मधु पिबाति) वह सोम के मधु को पीवे या पीता है (महित्वना) अपने महत्त्व से (राधांसि) उपासकों के लिए सिद्ध धनों को (प्रचोदयते) प्रेरित करता है ।

परमात्मा को अपने उपासनारस से भर दो वह उन्हें पान करता है—स्वीकार करता है और वह सिद्ध धनों को प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एतोन्विन्द्रꣳ स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
३ १र २र ३ २उ ३ २
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (आ-इत-उ) आओ अवश्य आओ ! (नु) शीघ्र (स्तोम्यं नरम्-इन्द्रम्) स्तुत करने योग्य नेता परमात्मा को (स्तवाम) स्तुत करें (यः) जो परमात्मा (एकः-इत्) एकही—अकेला (विश्वाः कृष्टीः) सब कर्म—करने वाली प्रजाओं—मनुष्यों को "कृष्टय इति मनुष्यनाम कर्मवन्तो भवन्ति" [निरु०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०।२२] (अभ्यस्ति) अभिभूत करता है—स्वाधीन करता है कर्मफल प्रदान करने के लिए।

स्तुति योग्य अपने नेता परमात्मा की स्तुति हम किया करें वह कर्म करने वाले कर्मयोनि मनुष्यों का अकेला स्वामी कर्मफल दाता है उससे भिन्न की स्तुति न करें, स्तुति करना भी शुभकर्म है इस शुभकर्म का फल शुभ देगा ही ॥ ७ ॥

ऋषिः—नृमेधः (नायक—जीवन्मुक्त मेधा वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३२
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
३ ३२ ३ १२ ३ १२
ब्रह्म कृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८॥

(बृहते) महान्—(विप्राय) विशेष तृप्ति कर—(ब्रह्मकृते) ब्रह्मकृत—ब्रह्माण्ड के रचयिता—(विपश्चिते) पूर्ण विद्वान् वेद-रचक सर्वज्ञ—(पनस्यते) स्वस्तुति को चाहने वाले—मनुष्य द्वारा स्तुति करने योग्य—(इन्द्राय) परमात्मा के लिए (बृहत् साम गायत) बृहत्स्वर वाले उपासना भाव को प्रकट करो।

महान् विविध तृप्तिकारक ब्रह्माण्ड के रचक वेदस्वामी वेद-ज्ञान दाता स्तुति के योग्य परमात्मा का ऊंचे स्वर से ऊंचा गान करना चाहिए ॥ ८ ॥

ऋषिः—गौतमः (परमात्मा में अत्यधिक गति रखने वाला)

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यः-एकः-इत्) जो एक ही—उस जैसा अन्य नहीं, कि (दाशुषे मर्ताय) आत्मीयत्व के देने वाले—स्वात्मसमर्पण करने वाले जन—उपासक के लिए (वसु विदयते) धन को विशिष्टरूप से देता है या कर्मानुसार विभाग करता है (अङ्ग) हे प्रियजन वह (ईशानः-इन्द्रः) स्वामी परमात्मा (अप्रतिष्कुतः) उल्लङ्घनीय या प्रतिहिंसित या प्रतिस्खलित या प्रतीकार्य नहीं है। "अप्रतिष्कुतोऽप्रतिष्कृतोऽप्रतिस्खलितो वा" [निरु० ६।१६]।

केवल परमात्मा ही ऐसा उदार है जो आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिए—अलौकिक धन अपने अन्दर वसाने वाले विशिष्ट धन को विशेषरूप से देता है या विभक्त कर छाँट कर देता है और वह जगत् का स्वामी दृष्टि से ओझल करने योग्य या प्रतीकार करने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥

ऋषिः—विश्वमनाः (सबमें मन रखने वाला उदार—एकपक्ष वाला नहीं—समदर्शी जन)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥

(सखायः) हे उपासक बन्धुओ ! (वः) 'यूयम्' तुम और हम (वज्रिणे) ओजस्वी—(धृष्णवे) पापविचारधर्षणशील—(नृतमाय) ऊंचे नेता—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (ब्रह्म-आशिषामहे) ब्रह्म—मन समर्पित करते है "मनो ब्रह्मेति व्यजानात्" [तै० आ० ९।४।१०] अतः हम (ऊ षु) अवश्य (स्तुषे) उसे स्तुत करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्म के उपासको ! उस ओजस्वी परमात्मदेव को सदा—अपना मन समर्पण करते रहें वह हमारा सच्चा नेता विरोधी पापभाव का धर्षणशील हैं ॥ १० ॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—प्रगाथः (प्रकृष्ट वाणी—स्तुति वाला उपासक)

छन्दः—उष्णिक् ।

३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।

१र २र ३ १र २र
यद्धं॑सि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१॥

(शचीपते-इन्द्र) हे सर्वकर्मसमर्थ परमात्मन् ! "शची कर्मनाम" [निघं० २।१] (तत्-शवः) तेरे उस प्रसिद्ध धन—अध्यात्म धन मोक्षैश्वर्य को "शवः-धन नाम" [निघं० २।१०] (गृणे) प्रशंसित करता हूं (देवतातये) जो जीवन्मुक्त के लिये "सर्वदेवात् तातिल्" [अष्टा० ४।४।१४२] (ते-उपमाम्) तेरे समीप में "उपमे-अन्तिक नाम" [निघं० २।१६] रखता है तथा (यत्-वृत्रम्) जो पापबन्धन को (ओजसा) बल से (हसि) तू नष्ट करता है ।

सर्वकर्मसमर्थ परमात्मन् ! तू महान् न्यायकारी और दाता है कि तू यथायोग्य कर्मफल का प्रदान करता है मैं तेरे उस मोक्षैश्वर्य अध्यात्मधन की प्रशंसा करता हूं जिसे तू जीवन्मुक्त या मुक्तात्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अपने पास रखता है तथा उसके पापबन्धन को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (परमात्मा के अमृतान्न को अपने अन्दर भरण करने वाला उपासक)

२ ३ १र २र३ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
३ १र २र ३ १र २र
अयꣳ स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यस्य मदे) जिस सोम—उपासनारस के तृप्तियोग—प्रसन्नताप्रसङ्ग निमित्त "मद तृप्तियोगे" [चुरादि०] (दिवः-दासाय) अमृतधाम मोक्ष के दर्शक उपासक के लिए "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (त्यत्-शम्बरम्) उस 'शम्-आवरक' अर्थात् कल्याण के प्रति-बन्धक—पापबन्धन को (रन्धयन्) नष्ट करने के हेतु "लक्षण-हेत्वोः क्रियायाः" [अष्टा० ३।२।१२६] (सः-अयं सोमः-ते सुतः पिब) वह यह जो उपासनारस निष्पन्न किया इसे तू पान कर—स्वीकार कर—करता है ।

उपासनारस से तृप्त—प्रसन्न होकर परमात्मा मोक्षामृताकांक्षी—मोक्षधाम के दर्शक उपासक के लिए मोक्षानन्द के प्रतिरोधक पापबन्धन को नष्ट करने के लिए उपासक द्वारा निष्पन्न किए उपासनारस को स्वीकार किया करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—नृमेधः (मुमुक्षु मेधावाला जन)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १२
एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
३ २र ३ १ २ ३ १र २र ३ २
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥३॥

(प्रिय) हे प्यारे (सत्राजित्) तुरन्त एक साथ जयकर्ता "सत्रा सहार्थे" (अगोह्य) न छिपाने या न लुप्त करने योग्य (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (गिरिः-न) ऊंचे पर्वत के समान महान् है—ऊंचे स्थित होने वाला है (विश्वतः पृथुः) सबसे महान् है "पृथु महान्तम्" [निरु० १२।२४] (दिवः-पतिः) अमृत मोक्ष का स्वामी है (नः-आ-गधि) हमें आ मिल—हमें प्राप्त हो "गध्यति मिश्रीभावकर्मा" [निरु० ५।१५]

उपासक के प्रतिबन्धक को तुरन्त जीतने नष्ट करने वाले सदा प्रकाशमान—उपासक से न छिपने वाले—साक्षात् होने वाले प्यारे परमात्मन् ! तू ऊंचे पर्वत के समान महान् मोक्षधाम का स्वामी हमें मिल—प्राप्त हो—यह आकांक्षा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पर्वतः (पर्ववान्—परमात्मा के प्रति अपने को प्रीतिमान् बनाने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
२ ३ २ ३ २र २ ३ १ २
येनाऽहँसि न्यात्रिणं तमीमहे ॥४॥

(शविष्ठ-इन्द्र) बलवन् ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यः) जो (सोमपातमः) उपासनारस को अत्यन्त पीने वाले (मदः) हर्ष भाव चेता रहा है (येन) जिसके द्वारा (अत्रिणम्) पाप को "पाप्मानोऽत्रिणः" [ष० ३।१] (निहंसि) गुप्तरूप से नाश

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है (तम्-ईमहे) उस तुझ परमात्मा को मैं चाहता हूँ "ईमहे याच्ञाकर्मसु" [निघं० ३।१९] ।

ऐ बलवन् परमात्मन् ! जो तेरा अत्यन्त सोमपान करने वाला तर्पणीय मद है—चेताता है जिससे तू पाप को चेताता है उस ऐसे पाप को नष्ट करता है—कर उस तेरे बल को चाहता हूँ ॥ ४ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में परमात्मा को बिठाने वाला)

देवता—आदित्यः "इन्द्रसम्बद्ध आदित्यः" (ऐश्वर्यवान् परमात्मा से सम्बद्ध आदित्य)

३ १र २र ३ १उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
१ २ ३ १ २
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥५॥

(सुमहसः-आदित्यासः) हे सुमहान् परमात्मशक्तिप्रवाहो ! (नः) हमें (तुचे) अपत्य—पुत्र के लिये "तुक्-अपत्यनाम" [निघं० २।२] (तुनाय) पौत्र के लिये (तत् सु) वह अच्छे (द्राघीयः-आयुः) अतिदीर्घ आयु को (जीवसे) जीवन के लिये (कृणोतन) सम्पादित करो ।

परमात्मा के ऐश्वर्यप्रवाह सुमहान् हुए उपासक के जीने के लिये अतिदीर्घ आयु वाले पुत्र और पौत्र देते हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—विश्वमनाः (सबमें मन रखने वाला—निष्पक्ष उदारमना उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
१ ८ ३ १ २ ३ १ २
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥६॥

(वज्रहस्त) हे ओजोरूप हाथ वाले ! (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ हि) तू अवश्य ही उपासक की कृच्छ् आपत्तियों—आन्तरिक बाधाओं कामक्रोध आदि प्रवृत्तियों के परिवर्जन—त्यागसाधन या पृथक्करण स्थान को जानता है (अहः-अहः) दिनदिन—प्रतिदिन (शुन्ध्युः-परिपदाम्-इव) जैसे आदित्य—सूर्य "शुन्ध्युरादित्यो भवति शोधनात्" [निरु० ४।१६] परिपदों—सूर्य के परिपद प्रत्येक प्रकाश चरण साथ भागने वाले अनिष्टकारी तत्त्वों की भांति ।

सूर्य से प्रतिदिन उसके उदय के साथ भागने वाले अनिष्ट भागते जाते हैं ऐसे ही उपासक की कृच्छ् आपत्तियों का परिवर्जन उपासक को छोड़कर भाग जाते हैं ओजस्वी हाथों—शक्ति वाले से प्रहृत होकर अतः उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

ऋषिः—इरिम्बिठः (हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला)

देवता—आदित्याः 'इन्द्रसम्बद्धाः' (परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाले अध्यात्म तेज प्रवाह)

१र २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अपामीवामप स्त्रिधमाप सेघत दुर्मतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
आदित्यासो युयोतना नो अ ँ हसः ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(आदित्यासः) हे परमात्मतेज तरङ्गों ! तुम (अमीवाम्-अपसेधत) मुझ उपासक के अन्दर से रोग को दूर कर दो (स्रिधम्-अप) शोषण करने वाले शोक को "स्रिव गतिशोषणयोः" [दिवा०] 'ततो धक् प्रत्यय औणादिकः' (दुर्मतिम्-अप) दुर्मन्तव्य अन्यथा विचार को दूर करो (नः-अहंस-युयोतन) हमें पाप से पृथक् कर दो।

उपासक के अन्दर परमात्मा के तेज तरङ्ग उसके अन्दर से रोग को शोक को दुर्विचार को दूर भगा देते हैं तथा उपासकों के पापकृत्यों को पृथक् कर देते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाला उपासक)

छन्दः—त्रिपदा अनुष्टुप।

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

(हर्यश्व-इन्द्र) दुःखापहरण सुखाहरण हैं व्यापनधर्म दया और प्रसाद जिसके ऐसे हे परमात्मन् ! (सोमं पिब) उपासनारस का पान कर—स्वीकृत कर (यम्-अद्रिः) जिसको आदर करने वाला प्रशंसाकर्ता—स्तोता उपासक ने "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] (ते सुषाव) तेरे लिए अभिषुत किया है सम्पादित किया है यह सोम—उपासनारस (सोतुः-बाहुभ्याम्) रसनिष्पादक—उपासनारस सम्पादित करने वाले के स्नेह और अनुराग से "तस्मादयं बाहुमेद्यतोऽनुमेद्यति" [जै० २।४०७]. (सुयतः-न-अर्वा) सुव्यवस्थित—सुसिद्ध घोड़े के समान है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे दुःखापहरण सुखाहरण करने वाले दया और प्रसादरूप व्यापन धर्मों वाले परमात्मन् ! तू उपासनारस का पान करता है स्वीकार करता है जिसे तेरा आदर करने वाला प्रशंसक स्तुतिकर्ता उपासक तेरे लिए तैयार करता है जो कि उपासक के स्नेह और अनुराग द्वारा सुसिद्ध घोड़े के समान आकर्षक है ॥ ८ ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर अच्छा भरने वाला)

छन्दः—ककुप् ।

३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
३ १ २ ३ १ २
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (अभ्रातृव्यः) शत्रु-रहित (अना) नेता से रहित (अनापिः) माता-पिता आदि सम्बन्धी से रहित (जनुषा-सनात्-असि) जन्म से—जन्मदृष्टि से तू नित्य है अर्थात् जन्मधारण से भी रहित—नित्य है (युधा-इत्-आपित्वम्-इच्छसे) अपनी ओर गति करने वाले के साथ ही—उपासक के साथ ही "युध्यति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] बन्धुत्व को चाहता है ।

परमात्मा का कोई शत्रु नहीं, वह किसीसे शत्रुता नहीं रखता, उसका नेता नहीं स्वयंकार्यविधाता है न उसका कोई सम्बन्धी है,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म से—जन्म का साथी हो ऐसा कहा जावे तो वह नित्य है शाश्वत है जन्म नहीं लेता हाँ उसकी ओर गति करने वाले उपासक के साथ सम्बन्ध चाहता है उसे अपनाता है ॥ १ ॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मस्वरूप को अपने अन्दर भली भाँति भरण धारण करने सम्पन्न)

१ २ ३१ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥

(यः) जो (नः) हमारे लिए (वः) तुम्हारे लिये (पुरा) पुरातन—सनातन काल से (इदम्-इदं-वस्यः) इस इस—एक दूसरे से भिन्न-भिन्न वसु—वसने योग्य शरीर और भोग्य वस्तु (प्र-आनिनाय) प्राप्त कराता है (तम्-इदम्-उ) उस ऐश्वर्यवान् परमात्मा को अवश्य (ऊतये) रक्षा कृपा के लिये (सखायः) (सहयोगियों ! (स्तुषे) 'स्तुवीमहि' स्तुति करें ।

हे सहयोगी जनों ! जो परमात्मा तुम और हम उपासकों के लिये पुराकाल से यह यह एक दूसरे से भिन्न-भिन्न पुनः पुनः विशिष्ट वसने योग्य शरीर और भोग्य वस्तु प्राप्त कराता है हम सब रक्षा कृपा के लिये उसकी स्तुति करें ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धा मरुतः' (परमात्म सम्बन्धीज्ञान वैराग्य रश्मियाँ जो बन्धनकारण पापवासनाओं को मारने वाले हैं)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः।
३ १ २
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

(आ गन्त) हे परमात्मज्ञानवैराग्य रश्मियो ! तुम मेरे अन्दर आओ (प्रस्थावानः-मा रिषण्यत) तुम प्रस्थान करते हुए मुझे हिंसित मत करो—आकर मेरे अन्दर बैठ जाना—बैठकर प्रस्थान न करना, केवल हिंसित करना तो पापवासनाओं को हिंसित कर देना (समन्यवः-मा अपस्थात) मेरे पापवासनाओं से सक्रोध हो मेरे अन्दर से पृथक् न होओ, (दृढा-चित्-यमयिष्णवः) तुम तो कठिन पापों को भी यमन करने का शील रखने वाले हो।

उपासक के अन्दर जब परमात्मा की ज्ञानवैराग्यधाराएं आ जाती हैं, फिर उसे निकल कर पीडित नहीं करती हैं कदाचित् उपासक के अन्दर पापवासना हो भी उससे क्रोधित होकर पृथक् नहीं होती अपितु पृथक् होने का प्रसङ्ग ही क्या वह तो कठिन पापसंस्कारों पर भी अधिकार कर दूर भगा देती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आयाह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपते उर्वरापते।
१ २
सोम ँ सोमपते पिब ॥ ४ ॥

(अश्वपते) हे मेरे व्यापनशील मन के पालक (गोपते) मेरी इन्द्रियों के पालक (उर्वरापते) मेरी बहुत अरों—गतिक्रमों वाली देहशकटी के पालक (सोमपते) मेरे सोम्यभाव उपासनारस के पालक (इन्दवे-आयाहि) इस आर्द्र स्नेह भरे उपासनारस के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये आ (सोमं पिब-अयम्) उपासनारस का पान कर—स्वीकार कर यह जो तेरे लिये निष्पन्न किया ।

परमात्मन् ! तू मेरे मन का रक्षक है उसे स्थिर एवं पवित्र कर—रख, तू इन्द्रियों का रक्षक है इन्हें संयम में रख, तू बहुत गति वाली देह—गाडी का रक्षक है इसे अच्छे मार्ग में चला, तू सोम्यभावों उपासनारसों का रक्षक है उन्हें निरन्तर बनाए रख तू आर्द्र स्नेह भरे उपासनारस के लिए आ—उपासनारस का पान कर—स्वीकार कर यह तैय्यार है—यह समर्पित है ॥ ४ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २
त्वया ह स्विद् युजा वयं प्रतिश्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
३ १२ २२ ३ १ २
स ँ स्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

(वृषभ) हे सुखवर्षक परमात्मन् ! (त्वया युजा स्वित्-ह) निश्चित तुझ से युक्त होने वाले के साथ ही (श्वसन्तं प्रति ब्रुवीमहि) श्वास लेते हुए जैसे प्रबल पाप का प्रतिवाद करते हैं (गोमतः-जनस्य संस्थे) स्तुति वाणी वाले जन के संस्थान—ध्यान में बैठकर ।

स्तुति करने वाले उपासक के ध्यानासन पर बैठ ध्यान जमाकर तेरे से योग कर प्रबल पाप का भी प्रतिवाद प्रतीकार कर सकते हैं अतः परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—मरुतः 'इन्द्रसम्बद्धाः' (परमात्म से सम्बन्ध रखने वाले पापवासनाओं को मारने वाले ज्ञान ज्योति प्रवाह)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ ३क २र ३२३ १२
गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
३१२ ३१२ ३२
रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

(मरुतः) परमात्मज्योतिप्रवाह को (गावः-चित्) स्तुति वाणियाँ सारी (समन्यवः) समान आकांक्षा वाली (सबन्धवः) समान एक परमात्मा की ओर (सजात्येन) समान गुणत्व से (ककुभः-मिथः-रिहते) दिशाएं जैसे परस्पर एक दूसरे को मानो सङ्गत होती हैं ।

परमात्मा को या परमात्मा की ज्ञान ज्योतियों को चाहती हुई स्तुति—वाणियाँ समान गुण वाली होकर समान परमात्मा को या उसकी ज्योतियों को केन्द्र मानकर गति करती हुई परस्पर दिशाओं के समान समागम करने वाली होनी चाहिएं ॥ ६ ॥

ऋषिः—नृमेधः (जीवनमुक्त मेधा वाला)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्राभर ओजो नृम्ण ँ शतक्रतो विचर्षणे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) बहुत कर्मशक्ति वाले और (विचर्षणे) सर्वज्ञ (इन्द्र) परमात्मन् ! (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये—हमारे अन्दर (ओजः) आध्यात्मिक बल और (नृम्णम्) यशः—संयम सदाचार का यश (आभर) आभरित करता है (पृतनासह वीरम्-आ) हमसे विरोध करने वाली बाधक वृत्तियों को सहने वाले प्राण को भी आभरित करें "प्राणा वै वीराः" [श० १२।८ १।२२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अनन्त कर्मशक्ति वाले सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमात्मन् ! तू हमारे अन्दर आत्मिक बल और संयम सदाचार का यश भरपूर करदे तथा विरोधी बाधक वृत्तियों को सहने वाले प्राण को भी भरपूर करदे, मैं उपासना द्वारा तेरी शरण में आया हूँ ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।

३२ ३ १ २ ३१ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

(गिर्वणः-इन्द्र) स्तुतियों से वननीय सम्भजनीय परमात्मन् ! (अध हि) अब तो (कामे) कामना पूर्ति के निमित्त (त्वा-ईमहे) तुझे चाहते हैं "ईमहे याच्ञाकर्मा" [निघं० ३।१९] कि (उपससृग्महे) तुझ से उपसृष्ट हो जावें—वासित हो जावें, (उदा-इव) "उदानि" जल जैसे (उदभिः-ग्मन्ते) जलों से मिल जाते हैं ।

हे स्तुतियों से सेवनीय परमात्मन् ! कामनापूर्ति के निमित्त तुझे चाहते हैं तुझे चाहने से सब कुछ कामना पूरी हो जावेगी अतः तुझे चाहते हैं तुझे उपसृष्ट हो तुझ से मेल करें जलप्रवाह जैसे जलप्रवाहों से मिलते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—सौभरिः (परमात्मा को अपने अन्दर भरित करने वाला उपासक)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।

३ १र २र
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गोश्रीते) स्तुतिवाणियों से पके (मधौ) मधुर—(मदिरे) हर्षकर—(विचक्षणे) विशिष्ट वक्षणा आनन्दधारा जहाँ ऐसे उपासनास्थान में (सीदन्तः-ते वयः-यथा) बैठते हुए वे मधु-मखियाँ जैसे ऐसे हम बैठते हुए (इन्द्र) हे परमात्मन् ! (त्वाम्-नोनुमः) तुझे पुनः पुनः नमस्कार करते हैं।

स्तुतियों से पके मधुर आनन्दकर विशिष्ट उपासनाधारा वाले उपासना सदन में मधुमखियों की भांति बैठते हुए तुझ परमात्मा को पुनः पुनः प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः
१ २ ३ १ २
वज्रिञ् चित्रं हवामहे ॥१०॥

(अपूर्व्य वज्रिन्) पूर्व—पुरातनकाल में होने वाले श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ ओजस्विन् परमात्मन् ! (कत्-चित्-स्थूरं न भरन्तः) किसी कुठले को यवादि अन्न से जैसे भरते हैं "तत् स्थूर यवा-चितम् स्थूरि भवति क्षेमस्य रूपम्" [जै० २।२०३] वैसे उपासना से भरते हुए (वयम्-अवस्यवः) हम रक्षा चाहने वाले (त्वां चित्रं हवामहे) तुझ चयनीय दर्शनीय को आमन्त्रित करते हैं।

जैसे संसार में समय पर प्राणरक्षा चाहते हुए यव आदि अन्न से किसी कुठले को भरते हैं समय पर अन्न पाने के लिये वैसे दर्शनीय सर्वश्रेष्ठ ओजस्वी परमात्मा को हम रक्षा चाहने वाले उपासक उपासना से भरते हुए अवसर पर रक्षा करने वाले को आमन्त्रित करते हैं वह अवश्य रक्षा करेगा ॥ १० ॥

—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8167

सप्तम खण्ड

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गतिमान्)

छन्दः—पंक्तिः ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्य्यः ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु

३ १ २

स्वराज्यम् ॥ १ ॥

(इत्था) यह सत्य है "इत्था सत्यनाम" [निघं० ३।१०] गौर्यः) हमारी वाणियाँ (स्वादोः) स्वाद वाले—(विषूवतः) विशेष सवन निष्पादन वाले—(मधोः) मधुर ओ३म् नाम का (पिबन्ति) जब पान करती हैं मानो (वृष्णा-इन्द्रेण) सुखवर्षक परमात्मा के साथ (याः सयावरीः) जो समानगतिवाली हो (मन्दन्ति) हर्ष को प्राप्त होती हैं (स्वराज्यम्-अनु) स्वराज्य—आत्मा के स्वराज्य के अनुरूप (वस्वीः) बसने वाली हुई (शोभथाः) शोभा को प्राप्त होती हैं।

यह सत्य है वाणियाँ जब निरन्तर स्वाद वाले विशेष निष्पन्न किए मधुर ओ३म् जप का पान करती हैं तो उस सुखवर्षक परमात्मा के साथ समानगतिवाली हो हर्षित होती हैं और तब आत्मा के स्वराज्य के अनुसार बसने वाली शोभा युक्त होती हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

(इत्था हि) यह सत्य ही है (सोमः-मदः-इत्) उपासनारस हर्षकर या तृप्तिकर सिद्ध हो जाता है तो वह (वर्धनं ब्रह्म चकार) वृद्धिकारक ज्ञान को करता है (शविष्ठ वज्रिन्) हे अत्यन्त बलवन् ओजस्वी परमात्मन् ! तू (ओजसा) ओजोरूप आत्मबल से (पृथिव्याः) पृथिवी के विकार—पार्थिव शरीर से "पृथिवीं शरीरम्" [काठ० ११।८] "यच्छरीरं पुरुषस्य सा पृथिवी" [ऐ० आ० २।३।३] (अहिं निः शशा) आहन्ता—पाप को निकाल भगा (स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) आत्मस्वराज्य को लक्ष्य कर तेरी अर्चना करता हुआ प्रार्थना करता हूँ ।

यह सत्य है कि जब मेरा उपासनारस पूर्ण विकसित हो जावेगा तो वह वृद्धिकर ज्ञान उत्पन्न कर देगा और अत्यन्त बलवान् ओजस्वी परमात्मा भी अपने ओज से आत्मबल से मेरे शरीर के घातक पापदोष को निकाल भगा देगा, मुझे स्वराज्य के अनुरूप परमात्मा की अर्चना करते रहना चाहिए ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
२उ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥३॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नृभिः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (मदाय) आत्मतृप्ति के लिये "मद तृप्तियोगे" [चुरादि०] (शवसे) आत्मबल के लिये "शवस्-बलनाम" [निघं० २।९] (इन्द्रः) परमात्मा (वावृधे) उपासना द्वारा स्वात्मा में बढ़ाया जाता है—अधिकाधिक साक्षात् किया जाता है "कर्मणि कर्तृप्रत्ययो व्यत्ययेन" (तम्-इत्-ऊतिम्) निश्चय उस रक्षक परमात्मा को (महत्सु-आजिषु) बड़े काम क्रोधादि शत्रुओं संघर्षों में "आजौ संग्रामनाम" [निघं० २।१७] (अर्भे) वासनामात्र दोषसंघर्ष में "अर्भके अवृद्धे" [निरु० ४।१५) (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं (सः) वह (वाजेषु) समस्तबल-वाले प्रसङ्गों में (नः) हमें (प्र-अविषत्) प्रबल रखें।

मुमुक्षुजनों द्वारा अपनी तृप्ति आत्मबलप्राप्ति के लिये उपासना से परमात्मा साक्षात् किया जाता है, उस रक्षक देव को कामक्रोधादि के संघर्षों में और गुप्त वासनासंघर्ष में आमन्त्रित करते हैं स्मरण करते हैं वह अन्य समस्तबलप्रसङ्गों में उनकी प्रबल रक्षा करता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
इन्द्र तुभ्यमिदाद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यद्ध तं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

(अद्रिवः-वज्रिन्) हे आदरणीय ओजस्वी ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (तुभ्यम्-इत्) तेरे लिये—तेरा ही (अनुत्तं वीर्यम्) न हसित होने वाला बल है (यत्-ह) जो कि (तं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायिनं मृगम्) उस माया—प्रकृति वाले—प्राकृतिक घातक बन्धनरूप विषयमृग को "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" [श्वेता०] (मायया-अवधीः) प्रज्ञा से मार दिया—मार देता है (त्यत् तव) वह तेरा ही बल है (स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) स्वराज्य आत्मराज्य को लक्ष्य कर तेरी अर्चना करता हुआ मैं उपासना करता हूं।

हे आदरणीय ओजस्वी परमात्मन् ! तेरा बल न दबने वाला अचूक है जिससे मायिक प्राकृतिक मन मानस विषयकाम को तूने मार दिया—मार देता है—दिव्य बना दिया है अतः मैं आत्मराज्य को लक्ष्य कर तेरी उपासना करता हूँ ॥ ४ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यꣳसते ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
इन्द्र नृम्णꣳ हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

(इन्द्र) परमात्मन् ! तू (प्रेहि) मेरे अन्दर प्राप्त हो (अभीहि) मेरे अभिमुख हो—मुझे स्वीकार कर (धृष्णुहि) मुझे अध्यात्म में दृढ़ कर (ते वज्रः) तेरा ओज—आत्मतेज "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (न नियंसते) नियमित—सीमित नहीं हैं (ते शवः-नृम्णं हि) तेरा बल देवजनों मुमुक्षुओं के प्रति झुका हुआ—हितसाधक है, किन्तु (वृत्रं हनः) पापभाव को नष्ट करता है "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (अपः-जय) उसके कर्म पर अधिकार (स्वराज्यम्-अनु-अर्चन्) स्वराज्य—स्वातन्त्र्य को लक्ष्य करके अर्चना करता हुआ उपासना करता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा उपासक के अन्दर प्राप्त होता है और उसे स्वीकार करता है उसका ओज—आत्मिक तेज असीम है उसका बल उपासक के लिये हितसाधता है पापभाव को नष्ट करता है कर्म पर अधिकार कर यथावत् फल सुखरूप या दुःखरूप देता है, उपासक उसकी अर्चना करता हुआ स्वात्मराज्य को पाता है ॥५॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ ३ २उ ३ १र २र ३ १ २ ३
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र
१ २
वसौ दधः ॥ ६ ॥

(यद्-आजयः-उदीरते) जब देवासुरवृत्तियों के संग्राम संघर्ष मानव के अन्दर उठते हैं उभरते हैं (धृष्णवे धनं धीयते) तब हे परमात्मन् ! तेरी ओर से दृढ़—स्थिरचित्त उपासक के लिये प्रसाद-कर गुण "धनं कस्माद् धिनोतीति सतः" [निरु० ३।१०] धारण कराया जाता है (मदच्युता हरी युंक्ष्व) पापमद को च्युत करने वाले दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता तेरे दया और प्रसाद धर्मों को मुझ उपासक में युक्त कर (कं हनः कं वसौ दधः) किसी को—नास्तिक को नष्ट करता है और किसी को—आस्तिक उपासक को निजवास—निजशरण में धारण करता है अतः (इन्द्र-अस्मान् वसौ दधः) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् हम उपासकों को अपने वास—शरण में धारण कर—करता है।

उपासक के अन्दर जब देव असुर वृत्तियों के संग्राम होने लगते हैं तब परमात्मा के द्वारा उस स्थिरचित्तवाले उपासक के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये तृप्ति कर ज्ञान एवं शरणधन धारण कराता है तथा उसके दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता अपने दया और प्रसाद धर्मों को युक्त कर पापमद को नष्ट करता है नास्तिक को नष्ट करता है आस्तिक उपासक को समर्थ कर अपनी शरण में लेता है अतः परमात्मन् ! तू हम उपासकों को अपनी शरण में ले ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ २ १ ३
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते
१ २
हरी ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (ते हरी) तेरे दुःखापहरण और सुखाहरण धर्मों को (योज) तू युक्त करता है, तब (प्रियाः) उपासक तेरे प्रिय हैं (अक्षन्) तेरे अमृतभोग को भोगते हैं (अमीमदन्त) अतीव लाभ करते हैं (हि-अव-अधूषत) अपने सब दुःखों को छोड़ देते हैं (विप्राः) वे मेधावी जन (स्वभानवः) स्वज्ञान से दीप्त हुए समस्त दुःखों को छोड़ते हुए (नविष्ठया मती) अत्यन्त नवीन शुद्ध स्तुति से (अस्तोषत) तेरी स्तुति करते हैं ।

परमात्मन् ! तू अपने दया और प्रसाद धर्मों को जब उपासकों के अन्दर युक्त कर देता है तो वे अमृतभोग में तृप्त हुए समस्त दुःखों से छुटे हुए तेरी नवीन—प्रिय स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी ॥८॥

(मघवन्) हे ऐश्वर्यरूप मोक्षधनवन् ! तू (गिरः) स्तुति प्रार्थनाओं को (उ) अवश्य (सु) भली प्रकार (उप शृणुहि) स्वीकार कर (अतथा-इव मा) अन्यथारूप—उपेक्षा से नहीं (कदा नः) कब हमें (सुनृतावतः करः) अच्छी स्तुति वाले—सफल स्तुति वाले करता है (इत्) इतनी (अर्थयासे-इत्) प्रार्थना स्वीकार करता है ही (इन्द्र ते हरी नु योज) अतः परमात्मन् ! अपने दया और प्रसाद धर्म मेरे अन्दर युक्त कर दे ।

मोक्षैश्वर्यवान् परमात्मा हमारी स्तुतियों को स्वीकार करता है उनकी उपेक्षा नहीं करता है अपितु वास्तविकता से, परन्तु सफल-स्तुति वाले हमें कब बना देगा ? कभी तो बनाएगा, वह दुःखाप-हरणकर्ता और सुखाहरणकर्ता अपने दया और प्रसाद धर्मों को हमारे अन्दर युक्त कर देगा तब सब सुन्दर हो जावेगा ॥ ८ ॥

ऋषिः—त्रितः (परमात्मा में तीर्णतम—अत्यन्त प्रवेशशील उपासक)

देवता—विश्वेदेवाः—"इन्द्रसम्बद्धाः" (परमात्मा के दिव्य-गुण सृष्टिरचक)

३ १ २ ३ २ १र २र ३ १ २ ३ २
चन्द्रमा अप्स्वान्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य
२
रोदसी ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चन्द्रमाः) मेरा आह्लादक इन्द्र—परमात्मा "अथ यस्स प्रजानां जनाय ताः....अप्स्वन्तः, चन्द्रमा हैव सः" [जै० ३।३५१] "चन्द्रमा एव धाता च विधाता च" [गो० २।१।१०] (अप्सु-अन्तः) मेरे प्राणों के अन्दर रमा हुआ वसा हुआ है "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] (सुपर्णः) और वह सुपालक धर्मवाला पुरुष "पुरुषः सुपर्णः" [श० ७।४।२।५] (दिवि) मेरे मस्तिष्क में "अथ यत्कपालमासीत् सा द्यौरभवत्" [श० ६।१।२।३] (आधावते) समन्तरूप से प्राप्त है "धावति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (वः) 'ते' वे 'पुरुषव्यत्ययः' (हिरण्यनेमयः) सुनहरी नेमिवाले (विद्युतः) विशेष द्योतमान समस्त सूर्य आदि (अस्य) इस परमात्मा के (पदं न विन्दन्ति) स्वरूप को नहीं पा सकते हैं (ये रोदसी वित्तम्) मेरे लिए द्युलोक पृथिवी लोक प्राप्त हैं अर्थात् दोनों लोकों के शरीर के ऊपर नीचे वाले अङ्ग तथा उनके सुख जीवनरस और ज्ञान ज्योति सुखैश्वर्य भोग प्राप्त हैं।

मेरा आह्लादक प्रजापति परमात्मा मेरे प्राणों के अन्दर रम गया बस गया है और सुखपालक परमात्मा मेरे मस्तिष्क में भी समा गया है सुनहरी नेमिवाले विशेष द्योतमान—प्रकाशमान सूर्य आदि उसके स्वरूप के सम्मुख फीके हैं मुझे द्युलोक पृथिवी लोक प्राप्त हो गए—इन दोनों भाग या शरीर के उपरि अङ्ग मस्तिष्क के और निम्न अङ्ग प्राण संस्थान प्राप्त हो गए स्वाधीन हो गए इनके सुख ज्ञान ज्योति और जीवनरस प्राप्त हो गए ॥९॥

ऋषिः—अवस्युः (परमात्मप्राप्ति का इच्छुक)

देवता—अश्विनौ (ऐश्वर्यवान् परमात्मसम्बन्धी ज्योति और रस शक्ति दया और प्रसाद)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमँ रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभि र्भूषति प्रति माध्वी मम
३ १ २
श्रुतं हवम् ॥ १० ॥

(वाम्-अश्विनौ) परमात्मा के उन दोनों—जीवन ज्योति और जीवनरस देने वाले दया और प्रसाद व्यापन धर्मों ! (प्रियतमम्) अतिप्रिय—(वृषणम्) सुखवर्षक (वसुवाहनम्) मोक्षैश्वर्य के वहन करने वाले—(रथम्) शरीर रथ के (प्रति) प्रति वर्तमान हुए तुम दोनों को (स्तोता-ऋषिः) प्रशंसित करने वाला ऋषि (स्तोमेभिः) प्रशंसित वचनों से (प्रतिभूषति) उत्तम गुण युक्त करता है (माधवी मम हवं श्रुतम्) हे जीवन मधु के रस सम्पादन करने वाले मेरे पुकार को सुनो ।

परमात्मा से सम्बद्ध जीवनज्योति और जीवनरस के देने वाले दया और प्रसाद व्यापन धर्मों ! तुम दोनों अति प्रिय सुखवर्षक मोक्षैश्वर्य के वाहन शरीररथ के प्रति वहन करने वालों को उपासक विद्वान् प्रशंसा करता है तुम मेरे भाव को स्वीकार करो ॥ १० ॥

अष्टम खण्ड

ऋषिः—वसुश्रुतः (सबमें वसने वाले परमात्मा का श्रवण जिसने किया)

देवता—अग्निः (प्रकाशस्वरूप परमात्मा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्त देवाजरम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य
१ २
आ भर ॥ १ ॥

(अग्ने देव) परमात्मदेव ! (ते) 'त्वाम्' तुझ (द्युमन्तम्) प्रकाशमान (अजरम्) अजर—जरारहित को (आ-इधीमहि) अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं (ते) तेरी (यत्-ह) जो ही (स्या पनीयसी समित्) वह अत्यन्त प्रशंसनीय दीप्ति (द्यवि दीदयति) द्युमण्डल में—अमृत मोक्षधाम में प्रदीप्त हो रही है "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] उस मोक्षधाम का (इषम्) अमृतभोग (स्तोतृभ्यः-आभर) उपासकों के लिए आभरित कर—यहाँ इस लोक में मेरे हृदय में भर दे ।

अजर प्रकाशमान परमात्मदेव को अपने हृदय में ध्यान द्वारा प्रकाशित करना चाहिए जो उसकी प्रशंसनीय दीप्ति या ज्योति मोक्षधाम में प्रदीप्त हो रही है सो वहाँ अमृतभोग को स्तोता उपासकों के लिए इस लोक में—इस जीवन में आभरित कर देता है यह उसकी महती कृपा है ॥ १ ॥

ऋषिः—विमदः (परमात्मा में विशेष हर्ष को प्राप्त उपासक)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ २र ३ १२
अग्नि न स्ववृक्तिभि र्होतारं त्वा वृणीमहे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ १२
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥

(अग्नि त्वा होतारं न) परमात्मन् ! अग्नि के समान तुझ होता को—मेरे उपासनारस के आदाता—स्वीकारकर्ता को (स्ववृक्तिभिः) अपने दोषवर्जनप्रवृत्तियों द्वारा (आ वृणीमहे) समन्तरूप से वरते हैं (शीरम्) सर्वत्र शयनशील—व्यापक (पावकशोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (यज्ञेषु) अध्यात्म यज्ञों में (स्तीर्णबर्हिषम्) विस्तृतप्रजा—प्रजायमान प्राणि वनस्पति जिससे हैं ऐसे को "बर्हिः प्रजाः" [जै० १।८६] (विमदे) विशेष आनन्द के निमित्त (विवक्षसे) महत्त्व युक्त प्रशंसित करते हैं ।

अपने को दोषों से रहित कर सद्वृत्तियों से अग्नि के समान परमात्मा को आमन्त्रित करते हैं और व्यापक पवित्र दीप्ति वाले को अध्यात्मयज्ञों में विस्तृत प्रजाओं—प्राणी वनस्पतियों वाले को विशेष आनन्द के निमित्त महत्त्व युक्त प्रशंसित करते हैं ॥२॥

ऋषिः—सत्यश्रवाः (सत्यस्वरूप परमात्मा ही जिसका धन है)

देवता—उषाः (परमात्मा की व्याप्त दीप्ति-ज्योति)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

(उषः) हे अन्तरात्मा में प्रकाशित परमात्मज्योति ! तू (नः) हमें (अद्य) इस जन्म में (महे राये) महान् मोक्षैश्वर्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये (दिवित्मती) 'दिवि-एति-दिवित् तद्वती' मोक्षधाम में जाने वाली ले जाने वाली प्रवृत्ति वाली दीप्ति—ज्योति हुई (बोधय) बोधित कर (यथाचित्) जिस ही प्रकार (नः) हमें (अबोधयः) बोधित कर चुकी पूर्व—पुरातन जन्म—पूर्वकल्प में पूर्व मुक्ति समय में वैसे अब भी बोधित कर (सत्यश्रवसि) सत्यस्वरूप परमात्मा को सुनाने वाली (वाय्ये) "वार्य्ये रेफलोपश्छान्दसः" अवश्य वरणीय (सुजाते) सुप्रसिद्ध—(अश्वसूनृते) व्यापक परमेश्वर की वाणी जिसमें है ऐसी परमात्मदीप्ति ।

हे मुझ उपासक के अन्दर भासित हुई परमात्मज्योति तू सत्यस्वरूप परमात्मा को सुनाने वाली—दर्शाने वाली वरण करने योग्य सुप्रसिद्ध व्यापक परमात्मा की वाणी जिसमें है ऐसी मोक्षधाम गति प्रवृत्ति रखने वाली होकर मोक्षैश्वर्य के लिए हमें बोधित कर जिस ही प्रकार—जैसे ही हमें पूर्व—पुरातन जन्म में पूर्व मोक्षार्थ बोधित कर चुकी है, सो इस जन्म में भी बोधित कर पुनः मोक्ष पाने के लिए ॥ ३ ॥

ऋषिः— विमदः (परमात्मा में विशेष हर्ष को प्राप्त उपासक)

देवता—सोमः (शान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा †)

३ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१र २र
भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे
१ २
विवक्षसे ॥ ४ ॥

† "सोमो वै देवानां जनिता" [जैं० ३।१७४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम परमात्मन् ! (नः) हमारे (मनः) मन को (दक्षम्) आत्मबल को "दक्षो बलम्" [निघं० २।९] (उत) 'अपि'— और (क्रतुम्) प्रज्ञा को "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] (भद्रम्-अपि वातय) भद्र—भद्ररूप में अवश्य चला "अपि निश्चये" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (अथ) हाँ (ते-अन्धसः सख्ये) तुझ आध्यानीय—समन्त ध्यातव्य सोम परमात्मा के सखिभाव—मित्रभाव में तथा (मदे) हर्ष में (विवः) विकसित होऊं—हर्षाऊं (रणय:-गावः-न यवसे) जैसे घास के लिये गौव्वें रमण करतीं—प्रसन्न होती हैं ऐसे (विवक्षसे) महत्त्व को प्राप्त है ।

हे शान्तरूप परमात्मन् ! तू महत्त्व को पा रहा है, अतः तू हमारे मनोबल—आत्मबल को और प्रज्ञा को निश्चित भद्र—कल्याणरूप कर दें तुझ ध्यान में आने योग्य के मित्रभाव में और हर्ष में हम विकसित हों, गौव्वें जैसे घास के लिए हर्षित होती हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा में अत्यन्त गति करने—वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
३ २ ३ १ २ ३१ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवाँ दधे हस्तयोर्वज्र-
३ २
मायसम् ॥ ५ ॥

(महान्-भीमः-शवः) महान् भयंकर बलवान् होता हुआ परमात्मा (क्रत्वा) प्रज्ञा एवं कर्म द्वारा "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३।९] "क्रतुः कर्मनाम" [निघं० २।१] (अनुष्वधम्) स्वधा—उपासनारस के अनुसार "स्वधायै त्वा रसाय त्वेत्येवैतदाह" [श० ५।४।३।७] (आवावृत्ते) उपासक के प्रति समन्तरूप से वर्ता करता है (ऋष्वः शिप्री हरिवान्) वह महान् शुभस्वरूप एवं व्यापक परमात्मा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता दया और प्रसाद धर्मों वाला (उपाकयोः-हस्तयोः) उपक्रान्त—उपगत प्राण अपानों में (श्रियः-निदधे) विविध शोभाओं को निहित करता है और (आयसं वज्रम्) सुनहरी ओज—तेज "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२] ओज को धारण कराता है "अयस् हिरण्यनाम" [निघं० १।२]

परमात्मा बड़ा भयंकर होता हुआ भी उपासक के प्रति उपासनारस के समर्पण से प्रज्ञा और कर्म द्वारा प्राप्त होता है उसके समीप रहने से प्राण अपान शोभा और ओज को धारण कराता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३१२ २२३ २३१२ ३१२
स घा तं वृषण ँ्रथमधि तिष्ठति गोविदम् ।
१२ २२ ३२ ३१२ ३ १२ ३ २ ३क २२ ३
य पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते
१ २
हरी ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् ! (सः) वह तेरा उपासक आत्मा (घ) हाँ (तं वृषणं गोविदम् रथम्) उस सुखवर्षक स्तुतिवाणियों से प्राप्त होने वाले रथ—रमण स्थान मोक्ष रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठना चाहता है "लिङर्थे लेट् [अष्टा० ३।४।७] अब इस शरीर रथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर नहीं (यः) जो उपासक (हारियोजनं पात्रम्) तेरे दया प्रसाद रूप दुःखापहरण और सुखाहरण करने वाले जिसमें निरन्तर तेरे द्वारा युक्त किए हुए हैं ऐसे नितान्त पालक रक्षक (पूर्ण चिकेतति) पूर्णरूप से जानता है कि बस कल्याण स्थान यही है, अतः (ते हरी) तेरे दया और प्रसाद को (नु योज) मुझ उपासक में शीघ्र युक्त कर।

जीवन्मुक्त उपासक इस शरीररथ में रहना नहीं चाहता किन्तु वह तो उस स्तुतियों द्वारा प्राप्त हुए सुख-शान्ति-वर्षक मोक्ष रमण-स्थान रथ में बैठना चाहता है जिसमें परमात्मा के दुःखापहरण सुखाहरण धर्म दया और प्रसाद युक्त रहते हैं ऐसे नितान्त पालक रक्षक पर जिसे वह पूर्णरूप से अपने कल्याण का कारण, जानता है अतः शीघ्र ही उन दया और प्रसाद को मुझ उपासक में युक्त कर ॥ ६ ॥

ऋषिः—वसुश्रुतः (वसाने वाले अनन्त परमात्मा का श्रवण जिसने कर लिया)

देवता—अग्निः (अग्रणायक परमात्मा)

३ १र २र ३ २उ ३२ ३ १ २र ३१२
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
२ ३१२ ३२३ ३ १ ३ ३ २३१२ ३२ ३
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इष ँ स्तोतृभ्य
१ २
आ भर ॥ ७ ॥

(यः-वसु) जो सबको वसाने वाला है (तम्-अग्निम्) उस अग्रणायक को (मन्ये) अर्चित करूं—उसकी अर्चना करूं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (यम्-अस्तं धेनवः-यन्ति) जिसे अस्त—गृह—आश्रय "अस्तं गृहनाम" [निघं० ३।४] हमारी स्तुतिवाणियाँ प्राप्त होती हैं (अस्तम्-अर्वन्तः-आशवः) जिस घर—आश्रय को हमारे जप ध्यान करते हुए प्राप्त होते हैं "वायुर्वा आशुवृत" [श० ८।४।१।९] (अस्तं नित्यासः-वाजिनः) उस घर—आश्रय को नित्य—शरीर में निरन्तर बल वाले वेग वाले मेरे मन बुद्धि चित्त अहङ्कार प्राप्त होते हैं (स्तोतृभ्यः) ऐसे वाणियों प्राणों और मन आदि अन्तःकरणों द्वारा स्तुति करने वालों के लिये (इषम्-आभर) एषणीय सुख को आभरित कर।

मैं उस अपने अन्दर वसने वाले अग्रणायक परमात्मा की अर्चना कर—करता रहूँ जिसे मेरी वाणियाँ 'स्तुति द्वारा' अपना आश्रय बनाती हैं मेरे चलते हुए प्राण 'प्राणायाम द्वारा' अपना आश्रय बनाते हैं जिसे मेरे निरन्तर वेगवान् मन आदि 'मनन चिन्तन आदि द्वारा' अपना आश्रय बनाते हैं, इन तीनों साधनों द्वारा स्तुति करने वाले हम उपासकों के लिये परमात्मा एषणीय अपना शान्त सुख आभरित करता है॥ ७॥

ऋषिः—अहोमुक्—वामदेव्यः (पाप से छुटा हुआ निष्पाप वननीय सेवनीय देव का उपासक)

देवता—विश्वे देवाः (समस्त दिव्य गुण वाले प्रमुख देव)

छन्दः—उपरिष्टाद् बृहती।

२उ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
न तमꣳ हो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः॥ ८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यम्) जिसको (सजोषसः) समान भाव से सेवित उपासित (अर्यमा) नियन्ता (मित्रः) प्रेरक स्नेही (वरुणः) त्राणकर्ता परमात्मा (द्विषः-अति) काम क्रोधादि शत्रुओं को अतिक्रमण कर (नयति) ले जाता है (तं मर्त्यम्) उस मनुष्य को (अंहस्) पाप (दुरितम्) दुःख (न-अष्ट) नहीं प्राप्त होता है।

नियन्ता प्रेरक स्नेही त्राणकर्ता परमात्मा जिसे सेवित करता है अपनी शरण में ले लेता है उस मनुष्य को पाप और पापकर्म का फल नहीं प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

नवम खण्ड

ऋषिः—ऋणत्रसदस्यू ऋषी (ऋणत्रास को क्षीण करने वाले
जप और स्वाध्यायकर्ता)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दप्रद उपासनारस)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र
परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥

(सोम) हे शान्त उपासनारस ! (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (स्वादुः) स्वादरूप में (परिप्रधन्व) समन्तरूप से प्रगतिकर "धन्वति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] तथा (मित्राय) मित्रभूत परमात्मा के लिए (पूष्णे) पोषणकर्ता परमात्मा के लिए (भगाय) धनभाजक के लिए प्रगति कर।

२३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा उपासनारस ऐश्वर्यवान् तथा मित्रभूत पोषणकर्ता परमात्मा के लिए तथा भग ऐश्वर्य विभाजक परमात्मा के लिये बहुत प्रक्षरित हो ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—त्रिपदा अनुष्टुप, पिपीलिकामध्या ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
३ २ ३ १ ३ १ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥

हे मेरे उपासनारस तू (वाजसातये) अमृत—अन्नभोग—प्राप्ति के लिये (उ सु) अवश्य सुन्दररूप में (परिप्रधन्व) परिपूर्ण प्रगति कर (सक्षणिः) तू शहनशील हुआ (वृत्राणि परि) पापभावों को परे कर (द्विषः-तरध्यै) द्वेषभावनाओं-विरोधी विचारों के पार करने को (ऋणयाः-नः-ईरसे) ऋणभार ले जाने वहन करने चुकाने वाला तू हमें प्रेरित करता है।

उपासनारस अमृतभोग प्राप्ति के लिये भलीभाँति प्रगति करता है शान्तरूप सहनशील समस्त पापभावों को परे करता है द्वेष प्रवृत्तियों को तरने पार करने के लिए ऊपर भाररूप ऋण अन्यों के द्वारा उपकारों को चुकाने वाला बन हमें प्रेरित करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवताः—पूर्ववत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—द्विपदा पंक्ति

१२ ३ १ २ ३ २
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ३ ॥

(सोम) हे मेरे उपासनारस ! तू (महान्-समुद्रः) महान् समुन्दनशील हुआ (देवानां पिता) मेरी इन्द्रियों का पालक—अन्यथा विषयों में जाने से बचाने वाला (विश्वा धाम-अभि-) मेरे समस्त जीवनकेन्द्रों के प्रति (पवस्व) चालू रह ।

उपासनारस महान् तरावट करने वाला हो समस्त इन्द्रियों को अन्यथा चेष्टा से बचाने वाला समस्त जीवनकेन्द्रों में पहुँचकर जीवन और शान्ति देने वाला है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

छन्द—पूर्ववत् ।

१२ ३२उ ३ २ ३ २
पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न ।
३ २ ३ १र २र
निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥

(सोम) हे मेरे उपासनारस ! तू (महे दक्षाय पवस्व) महान् बल—आत्मबल के लिये चालू हो—प्रवाहित रह (अश्वः-न) जैसे घोड़ा (निक्तः-वाजी) स्वरूप में सधा हुआ बलवान् हुआ (धनाय) धनप्राप्ति के लिए होता है एवं अमृत धन प्राप्ति के लिए सोम—उपासनारस हो ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासनारस सधे घोड़े के समान बलवान् हो प्रवाहित रहे अमृत धन प्राप्त करने के लिए ॥ ४ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ ५ ॥

(इन्दुः) आर्द्र—स्नेहपूर्ण उपासनारस (अपाम्-उपस्थे) जलों के उपस्थान—तट पर (चारुः) सुन्दर प्रिय (कविः) क्रान्त—चलता हुआ (मदाय) हर्ष के लिए (भगाय) परमात्मा के भग-स्वरूप के लिये (पविष्ट) चलता रहे ।

जलप्रवाहों के तट पर उपासनारस सुन्दर एवं चलता हुआ हर्ष—प्राप्ति तथा परमात्मा के ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—द्विपदा अनुष्टुप पिपीलिका मध्या ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अनु हि त्वा सुत ँ सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सोम) हे उपासनारस ! (त्वा-सुतम्-अनु हि) तेरे निष्पन्न सेवन के साथ ही (सम्मदामसि) हम सम्यक् तृप्त होते हैं (महे-अर्यराज्ये) बडे स्वामी परमात्मा के राज्य में—मोक्ष में (पवमान) हे पवित्रकारक ! (वाजान्) अपने हर्ष बलों को (अभि) लक्षित कर (प्रगाहसे) प्रगति कर रहा है।

हे उपासनारस तुझ निष्पन्न के साथ हम सम्यक् तृप्त हों और महान् परम राज्य के निमित्त मोक्षार्थ प्रगति करें ॥ ६ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

देवता—मरुतः (वासनामारक परमात्मा के व्याप्त गुण धर्म)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः।

क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥

(रुद्रस्य) विश्व में पूर्ण पुरुष परमात्मा के "रुद्रो वै पुरुषः" [जै० ३।१९३] (मर्य्याः) मनुष्य हितकारी (अथ) तथा (स्वश्वाः) सुष्ठु संयत इन्द्रियें घोडे जिनसे हो जाते हैं ऐसे (सनीडाः) समानस्थानवाले (व्यक्ताः) भासित—भासमान (नरः) नायक सञ्चालक (के-ईम्) कौन ही हैं ?—सुखप्रद हैं।

परमात्मा के व्यापन धर्म मनुष्यों के हितकर बन्धन वासनाओं को मारने वाले इन्द्रियों में संयमशक्ति देने वाले परस्पर एकाङ्ग एकक्रम में रहने वाले चलने वाले मोक्ष की ओर ले जाने वाले विश्व में या अन्तःकरण में भासमान कुछ या सुख देने वाले व्यापन-धर्म है ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)

देवता—अग्निः (प्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पदपंक्तिः ।

१ ३१३ २३१उ ३ २३२ ३१ २३१२
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्र ँ हृदिस्पृशम् ।
३१ ३३ १२
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (अद्य) आज शीघ्र ही—अभी (तम्) उस प्रसिद्ध तुझ—(अश्वं न) घोड़े की भाँति संसारवहनकर्ता—(हृदिस्पृशम्) हृदयङ्गम को (क्रतुं न भद्रम्) तथा यज्ञ के समान कल्याणकर भजनीय को "यज्ञः-क्रतुः" [मै० १।४।१४] (ओहैः-स्तोमैः) समन्तरूप से ऊहने वाले—स्मरणीय स्तुतिसमूहों से (ते-ऋध्याम) हम तेरे उपासक अपने अन्दर साधे—धारण करें।

घोड़े के समान संसारवहनकर्ता और यज्ञ के समान कल्याणकारी भजनीय हृदयङ्गम परमात्मा को स्मरणीय स्तुति मन्त्रों से अपने हृदय में साधे धारण करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देव जिसका है)

देवता—वाजिनः (परमात्मा के अमृतान्नवाले धर्म)

छन्दः—पुर उष्णिक् ।

३१२ ३१२ २२ ३१२ ३१२ ३१२३
आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम् ।
३ १ २
स्वर्गा ँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मर्त्याः) मनुष्यों के हितसाधक (वाजिनः) अमृतअन्न—मोक्षानन्द वाले जीवन्मुक्त "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (वाजम्-आविः-आग्मन्) अमृत अन्न—मोक्षानन्द को साक्षात् प्राप्त हो जाते हैं (अर्वन्तः) हे 'अर्' ज्ञान वाले उपासको ! तुम भी (देवस्य सवितुः) उस उत्पादक परमदेव परमात्मा के (सवं स्वर्गम्) ऐश्वर्य सुख को (जयत) प्राप्त करो।

मनुष्यहित साधक अमृत मोक्षानन्द के अधिकारी जीवन्मुक्त आत्माएं अमृतभोग को साक्षात् प्राप्त हो जाया करते हैं अतः ज्ञानवान् उपासको ! तुम भी उत्पादक परमात्मा के ऐश्वर्यसुख को प्राप्त करो ॥ ९ ॥

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वरज्ञान में कुशल वक्ता जन)

देवताः—पावमानः सोमः (चालू उपासनारस)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो।
३ १र २र ३ १ २ ३ २
महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥ १० ॥

(सोम) हे उपासनारस ! तू (महान् द्युम्नी) महान् यशस्वी "द्युम्नी यशस्वी" "द्युम्नं द्योतते यशो वा" [निरु० ५।५] (अवीनाम्-अनुपूर्व्यः) रक्षक भूमियों के क्रम से (सुधारः-पवस्व) अच्छी धारारूप में प्रवाहित हो।

महान् उपासनारस हमारी भूमियों के अनुसार यश वाला उत्तम धाराओं वाला होकर प्रवाहित हो ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशम खण्ड

ऋषिः—ऐश्वरयो धिष्ण्याः (ईश्वर ज्ञान में कुशल वक्ता जन)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वतोदावन् विश्वतो न आभर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥

(विश्वतः-दावन्) हे सब ओर से देने वाले परमात्मन् ! तू (नः) हमारे लिये (विश्वतः) सब ओर से (आभर) आभरित कर—भरपूर दे (यम्) जिस अभीष्ट को (त्वा शविष्ठम्-ईमहे) तुझ अत्यन्त धनवान् से "शवः-धननाम" [निघं० २।१०] हम माँगते हैं "ईमहे याच्ञाकर्म" [निघं० ३।१९]

परमात्मन् ! तू बड़ा धनवान् और सब ओर से देने वाला है सब ओर से हमारे लिए अभीष्ट को भरपूर दें जिसे हम तुझसे माँगते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

(एषः-ब्रह्मा) यह ब्रह्मा—अध्यात्मयज्ञ का ब्रह्मा है (यः-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्वियः-इन्द्रः-नाम) जो ऋतु – समय समय पर उपासनीय इन्द्र नाम (श्रुतः) प्रसिद्ध है (गृणे) उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

मैं इन्द्र नाम से प्रसिद्ध परमात्मा की स्तुति करता हूँ वह मेरे अध्यात्मयज्ञ का ब्रह्मा समय पर काम आने वाला है ॥ २ ॥

ऋषिः—त्रसदस्युः (निज उद्वेग—अशान्ति का त्तीण करने वाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

३ २ ३ ३१ २ ३१२ ३ २र २र ३१२३ २ ३१ २
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३॥

(ब्रह्माणः) ब्रह्मविद्या में कुशल विद्वान् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (महयन्तः) पूजन करने के हेतु (अर्कैः) अर्चन-मन्त्रों से (अवर्धयन्) बढ़ाता है अपने अन्दर प्रवृद्ध करता है (अहिं हन्तवैः-उ) पापभाव को हनन करने के लिए।

ब्रह्म को जानने वाले जन ऐश्वर्यवान् परमात्मा की अर्चना करने के हेतु हम अर्चनामन्त्रों से अपने अन्दर बढ़ बढ़कर सात्तात् करने वाले हैं अपने अन्दर पाप का हनन करने के लिये नहीं ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

३१२ ३ २३ १२ ३२ ३ १२ ३२ २
अनवस्ते रथमश्वाय तत्तुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरुहूत) हे बहुत आमन्त्रण करने योग्य परमात्मन् ! (अनवः) जीवन—दीर्घ जीवन धारण करने वाले उपासक जन "अनवः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (ते-अश्वाय) तुझ व्यापनशील एवं प्रापणशील परमात्मा के लिये (रथं तक्षुः) रमणस्थान हृदय को श्रद्धा से सम्पन्न करते हैं तथा (त्वष्टा) शीघ्र प्राप्त होने वाले जीवन्मुक्त ने "त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ताः" [निरु० ८।१४] (द्युमन्तं वज्रम्) 'ततक्ष' तुझे अपना प्रकाशमान रथ—रमणस्थान बना लिया "वज्रो वै रथः" [तै० सं० ५।४।११।२]।

हे बहुत आमन्त्रणीय परमात्मन् ! आश्चर्य है दीर्घ जीवन धारण करने वाले उपासक जन तुझ व्यापनशील एवं प्रापणशील के लिए अपने हृदय को रमण स्थान श्रद्धा से सम्पन्न करते हैं और शीघ्र प्राप्तिशील जीवन्मुक्त तुझे अपना प्रकाशमान रथ—रमण स्थान बनाया करता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—पूर्ववत् ।

२ ३२ ३१ १ ३ २ ३ १२ २२ ३ १
शं पदं मघꣳ रयीषिणे न काममव्रतो ।
२ ३ १ २ ३ २
हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥

(रयीषिणे) उपासनाद्वारा वैश्वानर—परमात्मा को चाहने वाले या प्राप्त होने वाले के लिए "एष वै रयिर्वैश्वानरः" [श० १०।६।१।५] (शं पदं मघम्) कल्याणकर पद और कल्याणकर धन—मोक्ष सुख है "मघं धननाम" [निघं० २।१०] (अव्रतः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रतहीन—सत्यसङ्कल्पहीन जन (कामं न हिनोति) अभीष्ट परमात्मा को नहीं प्राप्त करता है "हिन्वन्ति-आप्नुवन्ति" [निरु० १।२०] (रयिं न स्पृशत्) उस परमात्मा को वह छू सकता भी नहीं है।

उपासनाद्वारा परमात्मा को चाहने वाले या प्राप्त होने वाले के लिये शान्त कल्याणकर मोक्षपद और कल्याणकर मोक्षधन हैं किन्तु सत्यसङ्कल्प आदि से रहित के लिये कभी नहीं हैं वह तो स्पर्श भी नहीं कर सकता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—विश्वे देवाः (सब दिव्यगुण वाले देव)

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६॥

(गावः) परमात्मा के प्रति स्तुतिवाणियाँ (सदा शुचयः) सदा पवित्र—पापसङ्कल्प और और दम्भ से रहित हों (विश्वधायसः-देवाः) सबको धारण करने वाले मुमुक्षुजन (अरेपसः) पापरहित हों।

परमात्मा की स्तुतियाँ किसी का अहित करने वाली न हों दम्भ से भी रहित हों, मुमुक्षुजन सबके हितधारक और निष्पाप होते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—सम्पातः (परमात्मा से मेल करने वाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता—उषाः (परमात्मज्योति)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३ १ २ २ २
आयाहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥७॥

(वनसा सह) कान्ततेज के साथ (आयाहि) हे परमात्मज्योति आ—प्राप्त हो (गावः-वर्तनिं सचन्ते) हमारी स्तुतियां अब अध्यात्म मार्ग के लक्ष्य को समवेत करती हैं (यत्) जबकि (ऊधभिः) अनेक दिन रात्रियों के साथ "ऊधः-रात्रिनाम" [निघं० १।७] या रात्रि समान स्नेह भावनाओं के साथ।

परामात्मज्योति कमनीय तेज के साथ उपासक के हृदय में आती है अनेक दिन रात्रियों के सेवन द्वारा या जब हम उपासकों की स्तुतियां अध्यात्म मार्ग के लक्ष्य को प्राप्त होती हैं रात्रिसमान स्नेह भावनाओं से संयुक्त होती हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

१ २ ३ १ २ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥

(इन्द्र) हे परमात्मन् (मधुमति प्रक्षे) मधुर प्रक्षरण प्रास्रवण—स्तुतिवाणियों के अन्तस्थान मोक्षधाम में "एष उ ह वै वाचोऽन्तो यत् प्रक्षः प्रास्रवणः-यत्रो ह वै वाचोऽन्तः" [जै० २।२८८] (उपक्षियन्तः) निवास करते हुए (रयिं पुष्येम) मोक्षधन—मोक्षसुख को पुष्ट करें (धीमहे) तेरा ध्यान करें।

(हे परमात्मन् ! स्तुतियों के आधार तेरे मधुर प्रास्रवण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में हम निवास—करते हुए मोक्षधन—भोग को अपने अन्दर पुष्ट करें सम्भाले प्राप्त करलें अतः तेरा ध्यान करते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १र २र ३ २उ ३ १र २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आस्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥

(स्वर्काः-मरुतः) शोभन मन्त्र—मन वाले या स्तोम—स्तुति समूहवाले "अर्को मन्त्रो भवति" [निरु० ५।४] "अर्कैः-रर्चनीयैः स्तोमैः" [निरु० ६।२३] दिव्य विद्वान् मुमुक्षुजन या अध्यात्मयाजी जन "मरुतो देवविश" [श० २।५।१।१२] (अर्कम्-अर्चन्ति) अर्चनीय परमात्मदेव को अर्चित करते हैं "अर्को देवो भवति" [निरु० ५।४] (सः श्रुतः-युवाः-इन्द्रः) वह प्रसिद्ध सदायुवा—अजर परमात्मा (आस्तोभति) इनको स्तोभित करता है—अपने साथ संयुक्त करता है ।

शोभन मनन वाले शोभन स्तुतिसमूह वाले या मुमुक्षुजन या आत्मयाजीजन परमात्मा की अर्चना करते हैं, वह प्रसिद्ध अजर परमात्मा भी उन्हें आलिङ्गित करता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं
३ २ १
जुजोषते ॥ १० ॥

(वः) 'यूयम्-विभक्तिव्यत्ययः' हे मरुतो—मुमुक्षुजनो ! तुम (वृत्रहन्तमाय) अत्यन्त पापनाशक—(विप्राय) प्रजापति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापालक—"प्रजापतिर्वै विप्रः" [श० ६।१।१।१६] (इन्द्राय) परमात्मा के लिये (गाथं प्रगायत) गान करने योग्य भजन कीर्तन स्तवन को भली प्रकार गाओ (यं जुजोषते) जिसको वह प्रसन्न—पसन्द करता है।

मुमुक्षुजनों आत्मयाजी लोगों को अत्यन्त पापनाशक प्रजापालक परमात्मा के लिये गाने योग्य भजन कीर्तन स्तवन इस प्रकार करना चाहिए जिससे वह परमात्मा प्रसन्न होता है ॥१०॥

एकादश खण्ड

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः।

१ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः ॥१॥

(चिकितिः) ज्ञानवान् (हव्यवाड्-न) हव्य वहन करने वाली भौतिक अग्नि की भान्ति (सुमद्रथम्) स्वयं रथरूप—अपने में रममाण करने वाला "सुमत् स्वयमित्यर्थः" [निरु० ६।२२] (अग्निः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा (अचेति) उपासकों के हृदय में चेतता है—साक्षात् होता।

ज्ञानवान् सर्वज्ञ स्वयं में रमण करने वाला प्रकाशस्वरूप परमात्मा हव्यवहनकर्ता भौतिक अग्नि की भांति उपासकों के हृदय में साक्षात् होता है ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—बन्धुः (परमात्मा के स्नेह में बन्धने वाला)

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥२॥

(अग्ने) हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (त्वं नः) तू हमारा (अन्तमः) अन्तिकतम—अत्यन्त समीपी "अन्तमानाम्-अन्तिकतमानाम्" [निघं० २।१६] (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) कल्याणकर (वरूथ्यः) हृदयगृहवासी "वरूथं गृहनाम" [निघं० ३।४] (भुवः) हो जाता है।

प्रकाशस्वरूप परमात्मा हमारा अत्यन्तसमीपी अन्तर्यामी रक्षक कल्याणकर एवं हृदयगृहवासी है। उसकी उपासना करनी चाहिए ॥ २ ॥

ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च (परमात्मा के स्नेह में बन्धा अच्छा बन्धा विशेषगाढ बँधा हुआ उपासक)

छन्दः—पञ्चदशाक्षरा गायत्री।

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३॥

(अग्निः) ज्ञानप्रकशस्वरूप परमात्मा (भगः-न चित्रः) सूर्य के समान चित्र—चायनीय—दर्शनीय—आत्मा में साक्षात् होने योग्य है "भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता" [ऋ० ७।४१।२] (महोनां रत्नं दधाति) महनीय—प्रशंसनीय जनों—मुमुक्षुओं के—के लिये रमणीय अध्यात्म सुखों को धारण करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा मुमुक्षुजनों के हृदय में सूर्यसमान साक्षात् दर्शनीय होकर रमणीय सुखों को धारण करता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३२ ३ १र २र १ ३ ३ २
विश्वस्य प्रस्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥४॥

(विश्वस्य प्रस्तोभ) हे विश्व के स्तम्भक—सम्भालने वाले परमात्मन् ! "ष्टुभु स्तम्भने" [भ्वादि०] "प्र पूर्वकात् ष्टुभधातोः-अच् प्रत्ययः कर्तरि" (पुरः-वा) तू विश्व—जगत् से पूर्व भी था 'वा समुच्चयार्थे' (यदि वा नूनम्-इह सन्) 'यदि च' यद्यपि इस जगत् में निश्चित वर्तमान है ।

हे विश्व के स्तम्भक—सम्भालने वाले परमात्मन् ! जबकि वर्तमान जगत् में तू निश्चित स्थिर है—अमर है तो इस जगत् से पूर्व भी तो तू था, तू नित्यनिरन्तर अजर अमर है ॥ ४ ॥

ऋषिः—संवर्तः (अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों को मेल से सेवन करने वाला उपासक)

देवता—उषाः (परमात्मज्योति)

छन्दः—द्विपदा पंक्तिः ।

३ २उ ३ १ ३ १ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २
उषा अप स्वसुष्टमः संवर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥५॥

(उषाः) कमनीय परमात्मज्योति "उषाः-वष्टेः कान्तिकर्मणः" [निरु० १२।७] (स्वसुः) सुगमतया आत्माओं को भोगों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग बन्धनों में फेंकने वाली प्रकृति के "स्वसा-सु असा स्वेषु-सीदतीति वा" [निरु० ११।३२] (तमः-अपवर्तयति) अन्धकार—जडभाव—मृत्युभाव को "तमो मृत्युः" [काठ० १०।६] दूर कर देती है—नष्ट कर देती है, पुनः उपासक आत्मा के अन्दर (सुजातता) सुजाततया—सुप्रसिद्धरूपता से (वर्तनिं संवर्तगति) अपने ज्योतिःस्वरूप की तरङ्ग को सञ्चालित कर देती है।

परमात्मज्योति उपासक मुमुक्षुओं के अन्दर से भोगों या भोग-बन्धन में फेंकने वाली प्रकृति के मृत्युरूप जडभाव को नष्ट कर देती है और उनके अन्दर स्वप्रकाशतरङ्ग को सञ्चालित कर देती है ॥ ५ ॥

ऋषिः—भौवन आप्त्यः (विश्वविज्ञान में सम्पन्न स्वयं आप्त जन)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥

(इमा भुवना) इन वर्तमान भोग्यवस्तुओं को "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम्" [यजु० ३४।४] (इन्द्रः-च) हम उपासक और परमात्मा (च) तथा (विश्वे देवाः) सारे प्राण—इन्द्रयाँ "प्राणा वै विश्वे देवाः" । तै० सं० ५।२।२।१] (नु कं सीषधेम) शीघ्र "नु क्षिप्रे" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] सुखरूप साधें।

हम परमात्मा के उपासक होजावें तो इन वर्तमान भोग्य-वस्तुओं को परमात्मा हमारे लिये सुख बना देता है, हम उपासक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उन्हें सुखरूप में बनाने में समर्थ हो जाते हैं, हमारी इन्द्रियां भी संयम से सेवन कर सच्चा सुख ले सकती हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—कवष ऐलूषः (उदक—जल को बान्धने वाला पृथिवी पर वास कराने—वसाने वाला शरीर के जीवनरस और प्राणों पर अधिकार कर देहपुरी में वसने वाला उपासक जन)

२ ३१२ १२ ३३ ३ १ २३२ ३१२
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ॥७॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (यथा) जैसे (विस्रुतयः) विविध स्रवण करने वाली नदियां अपने अपने मार्ग से पृथिवी को सींचती हैं, ऐसे ही (त्वत्) तुझसे (रातयः) तेरी दानधाराएं हमें (यन्तु) प्राप्त हों।

परमात्मन् ! इसमें संदेह नहीं जब हम तेरे उपासक बन जाते हैं तो हम उपासकों की ओर तेरी दानधाराएं ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे मार्ग से वहती हुई विविध जलधाराएं पृथिवी पर प्राप्त होती हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने लिए भरण करने वाला उपासक)

३१ ३२र ३१२ ३ १२ ३१२ ३१२
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८॥

(अया) इस स्तुति से (दवहितं वाजं सनेम) मुमुक्षुजनों के हितकर अमृतान्नभोग को हम सेवन करें "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (सुवीराः शतहिमाः-मदेम) अच्छे प्राणों वाले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्राणा वै दश वीराः" [श० १२।८।१।३२] सौ हेमन्त ऋतु तक हर्षित रहें।

श्रद्धापूर्वक परमात्मा की स्तुतिद्वारा मुमुक्षुओं के हितकर अमृतभोग को सेवन करें और सौ वर्षों तक अच्छे पुष्ट प्राणों वाले होते हुए हर्षित रहें ॥ ८ ॥

ऋषिः—आत्रेयः (तीनों तापों से पृथक् परमानन्द का सेवन करने वाला)

देवता—विश्वे देवाः।

३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्जा मित्रो वरुणः विपन्वते डाः पीवरीमिषं कृणुही न
इन्द्र ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू (मित्रः) स्नेहीरूप (वरुण) वरनेवाला होता हुआ तीनों रूपों वाले (ऊर्जा) अपने आर्द्र आनन्दरस से (इडाः) संसार के सुखभोगों को "इडा वा इदं सर्वम्" [मै० ४।२।२] (पिन्वत) सींचो (नः) हमारे लिये (पीवरीम्-इषं कृणुहि) पुष्ट—पुष्कल एषणीय मोक्षसुख को कर—प्रदान कर।

स्नेह करने वाला वरनेवाला ऐश्वर्यवाला परमात्मा संसार के सब भोगसुखों को अपने आर्द्र आनन्दरस से सींच दे परिपूर्ण कर दे और पुष्कल इच्छित मोक्षसुख से भी हमें सम्पन्न कर दे ॥ ९ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ७
इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (विश्वस्य) सब संसार और मोक्ष पर स्वामित्व करता है।

संसार के ऐन्द्रियिक भोगों में सुख और मोक्ष में परमानन्द को भरने वाला परमात्मा दोनों भोग और अपवर्ग का स्वामी है उसकी उपासना करनी चाहिए ॥ १० ॥

द्वादश खण्ड

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः।

७ २ २ १र २र ३ २ २ १ २र ३
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्
१ २ २ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महिकर्म कर्तवे
३ ३ २ १र २र ३२ ३ १र २र ३ १
महामुरुं सैनं सश्चद देवो देवं सत्य इन्दुः सत्य-
१
मिन्द्रम् ॥ १ ॥

(त्रिकद्रुकेषु) तीनों—परम मध्यम अवम पृथिवियों में "इयं पृथिवी वै कद्रूः" [तै० सं० ६।१।६।१] "परमस्यां पृथिव्यां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यमस्यामवमस्यामुत" [ऋ० १।१०८।१०] लोकत्रय में—त्रिलोकी में (महिषः) महान् इन्द्र परमात्मा "महिषो महन्नाम" [निघं० ३।३] (तुविशुष्मः) बहुत बलवान् "तुवि बहुनाम" [निघं० ३।१] "शुष्मं बलनाम" [निघं० २।९] (विष्णुना यथावशं सुतम्) ओज से—आत्मभाव से यथाश्रद्ध—श्रद्धानुसार निष्पादित "ओजो विष्णुः" [काठ० २१।१] (यवाशिरम्) पापद्वेष प्रवृत्ति को पृथक् करने वाली भावनाओं से युक्त "यव यवयास्य दुघा द्वेषांसि" [तै० आ० ६।९।२] "आशीराश्रयणात्" [निरु० ६।८] (सोमम्) उपासनारस को (अपिबत्) पान करता है—स्वीकार करता है (तृम्पत्) तृप्त होता है—कृपा करता है "तृप तृप्तौ" कृपा करता है (सः-ईम्) वह परमात्मा (महि कर्म करतवे) अभीष्ट कर्म—कृपा या सुखप्रदान कर्म करने के लिये "इषित कर्म क्रियते" [तै० सं० ६।४।६२] (ममाद) प्रसन्न होजाता है (स 'सः') वह (सत्यः-इन्दुः-देवः) सच्चा या नित्य इन्दुमान्—सोमवान्—उपासनारस वाला "मतुब्लोपश्छान्दसः" देवस्वरूप में आया मुमुक्षु—जीवन्मुक्त बना उपासक (महाम्-उरुम्) महान् अनन्त (एनं सत्यम्-इन्द्रं देवम्) इस सत्यस्वरूप या नित्य ऐश्वर्यवान् परमात्मदेव को (सश्चत्) प्राप्त हो जाता है—समागम करता है "सश्चति गतिकर्मा" [निघं० २।१४]

लोकत्रय या त्रिलोकी में विराजमान महान् तथा बलवानों से भी बलवान् परमात्मा उपासक के आत्मभाव से निष्पन्न, श्रद्धापूर्वक पापद्वेषविनाशनभावनायुक्त उपासनारस को स्वीकार करता और कृपा एवं सुखप्रदानकर्म करने को प्रसन्न हो जाता है तब यह उपासनारस का समर्पणकर्ता सत्यदेव—मुमुक्षु जीवन्मुक्त बनकर उस महान् अनन्त नित्य परमात्मदेव को प्राप्त होता है समागम करता है ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—गौराङ्गिरसः (अग्निविद्या में कुशल परमात्म स्तोता †)

देवता—सूर्यः (ज्योतिः प्रेरक परमात्मा)

छन्दः—अतिजगती ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ उ २ १ २
अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
३ १ २ ३ २
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

(अयम्) यह सर्वत्र सरणशील प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सहस्रमानः-दृशः) सर्वमानव मननशील मानने वाले जन जिसके हैं ऐसा "सर्वं वै सहस्रम्" [कौ० ११।७] दर्शनीय (कवीनां मतिः) मेधावी ऋषियों का भी मननीय माननीय ऋषि अन्तर्यामी "कविः मतिः-मेधाविनाम" [निघं० ३।१५] (ज्योतिः-विधर्म) ज्योतिःस्वरूप है धर्म का विधानकर्ता है "विधर्म भवति धर्मस्य विधृत्यै" [तां० १५।५।३१] (ब्रध्नः) महान्देव "ब्रध्नः-महन्नाम" [निघं० ३।३] (समीचीः) सम्यक् प्राप्त होने वाली—(अरेपसः) निर्दोष—(सचेतसः) सर्वविधान करने वाली—(उषसः) अज्ञानदग्ध करने वाली ज्ञानरश्मियों को (समैरयत्) वेद द्वारा प्रेरित करता है, तथा (स्वसरे) हृदयगृह में (मन्युमन्तः-चिताः-गोः 'गाः') कान्तिवाली ज्ञानरश्मियों को प्रेरित करता है।

---

† "अङ्गिरा उ ह्यग्निः" [श० १।४।१।२५]

"गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा सब मननशील मानने वाले जनों का दर्शनीय, मेधावी ऋषियों का भी मननीय परमर्षि अन्तर्यामी यथार्थ नियम विधाता उपासनीय है, वह सम्यक् प्राप्त होने वाली निर्दोष सचेत करने वाली ज्ञानरश्मियों को वेद द्वारा उपासक के हृदय में प्रेरित करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—परुच्छेपः (परु—पर्व—अवसर पर परमात्मा का स्पर्श—अनुभव करने वाला उसकी स्तुतिकथन प्रवचन में भी पर्व बनाने वाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३
एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति-
२ ३ १ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २ ३ २उ
रस्ता राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा-
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
पुत्रासो न पितरं वाजसातये माहिꣳ ष्ठं वाजसातये ॥३॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (परावतः-न) दूरदेश से जैसे आना होता है ऐसे (नः-उप-आयाहि) हमारे पास आ—प्राप्त हो (अयं सत्पतिः) यह सज्जनों का पालक विद्वान् "सत्पतिः-अग्निः सता पतिः" [श० ८।६।३।२०] (विदथानि-इव-अच्छा) लाभों—उपहारों को प्राप्त करने जैसे आता है "विदथानि वेदनानि" [निरु० ६।७] "अच्छाभेराप्तुम्" [निरु० ५।२८] या (सत्पतिः-राजा-इव) सज्जनों के पालक राजा की भांति (अस्ता) घर को—राजप्रसाद को "अस्तं गृहनाम" [निघं० ३।४] 'आकारा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशश्छान्दसः' (त्वा-आहवामहे) तुझे आमन्त्रित करते हैं (सुतेषु प्रयस्वन्तः) उपासनारस निष्पन्न होने पर उपासनारसरूप अन्न भेंट वाले हम उपासक (पुत्रासः-न पितरं वाजसातये) पुत्र जैसे पिता को पुकारते हैं अन्नभोजन प्राप्ति के लिये, ऐसे (मंहिष्ठं वाजसातये) हम तुझ अत्यन्तदानी को अमृतअन्न मोक्षानन्द भोग की प्राप्ति के लिये बुलाते हैं।

परमात्मा दूरदेश से जैसे आता हो ऐसे हमारे पास आता हो—हमें प्राप्त होता है, हम से उपासनारस भेंट लेने के लिये, जैसे अग्रणेता विद्वान् हमसे उपहार प्राप्त करने आता है या सज्जन-पालक राजा अपने राजप्रासाद को प्राप्त होता है ऐसे वह हमारे हृदय को प्राप्त होता है, जबकि हम निष्पन्न उपासनारस होने पर उन उपासनारस वाले होकर उसे आमन्त्रित करते हैं या जैसे पुत्र अन्नप्राप्ति के लिये पिता को पुकारते हैं वैसे हम भी अमृत अन्न-भोग—मोक्षानन्द की प्राप्ति के लिये महान् दानी को पुकारते हैं॥३॥

ऋषिः—रेभाः (स्तुतिकर्ता †)

छन्दः—अतिजगती ।

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा दधानमप्रतिष्कुतꣳ
१ २ ३ १ २ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
श्रवाꣳसि भूरि। मꣳहिष्ठो गीर्भिराच यज्ञियो ववर्त राये
३ १ २ ३ १ २ ३ २
नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥४॥

(तम्) उस (मघवानम्) ऐश्वर्य वाले—(उग्रम्) ओजस्वी—(सत्रा भूरि श्रवांसि दधानम्) सच्चे—स्थिर बहुत यशकार्यों को धारण करने कराने वाले "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९]

† "रेभः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अप्रतिष्कुतम्) अप्रतिस्खलित—न हिंसित होने वाले, न प्रतीकार करने योग्य (इन्द्रम्) परमात्मा को (जोहवीमि) पुनः पुनः आमन्त्रित करता हूँ। (च) और जो (मंहिष्ठः) ज्येष्ठ श्रेष्ठ (यज्ञियः) सङ्गमनीय (गीर्भिः) स्तुतियों से (राये) मोक्षैश्वर्य के लिये (आवर्तते) हमारी ओर प्रवृत्त होता है (वज्री) वह ओजस्वी (नः) हमारे लिये (विश्वा सुपथा कृणोतु) सब अच्छे मार्गवाले आचरण कर दे।

हम उस मोक्षैश्वर्यवाले प्रतापी स्थायी बहुत यशस्कर कार्यों को धारण करने वाले, न दबने वाले न प्रतीकार करने योग्य परमात्मा को पुनः पुनः आमन्त्रित करते रहें तथा जो ज्येष्ठ श्रेष्ठ समागम करने स्तुतियों से मोक्षैश्वर्य के लिये हमारी ओर प्रवृत्त होता है वह ओजस्वी परमात्मा हमारे लिये सब, अच्छे मार्ग वाले आचरण करदे ॥ ४ ॥

ऋषिः—परुच्छेपः (अवसर अवसर पर परमात्मा का स्पर्श—अनुभव करनेवाला तथा स्तुतिवचन में पर्व बनाने वाला उपासक)

देवता—विश्वे देवाः (विशेष गुणवाले परमात्मस्वरूप)

छन्दः—अत्यष्टिः।

२ ३ १२ ३२ ३ २ ३१ २३ १ २र ३ १
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं
२ ३१ २ ३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
वृणीमहे इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा
३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३२उ ३ २
सन्दाय नव्यसे अध प्र नूनमुपयन्ति धीतयो देवा अच्छा न
३ १ २
धीतयः ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरः-अग्निं धिया दधे) सब से पूर्व मैं अग्रणायक परमात्मा को धारणा बुद्धि से धारण करूं—करता हूं (नु त्यत्-दिव्यं शर्द्धः-आवृणीमहे) शीघ्र सदा दिव्य बल को "शर्धः-बलनाम" [निघं० २।३] अपने अन्दर समालें (इन्द्रवायू वृणीमहे) ऐश्वर्यवान् एवं गतिप्रद—जीवनप्रद परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें (यत्-उ) जिससे कि परमात्मा में (विवस्ते) विशेष रूप से बसने वाले मनुष्य के लिये "विवस्वतेः-मनुष्यनाम" [निघं० २।३] (क्राणा) उपकार करने वाले (नाभा सन्दाय) हमारे आत्मा के अन्दर "मध्यं वै नाभिर्मध्यमभयम्" [श० १।२।२।२३] उस अपने बल को देकर—समर्पण कर (अध) अनन्तर (नव्यसे) अत्यन्त नवीन अध्यात्म जीवन प्राप्ति के लिये (नूनम्) निश्चय "नूनं निश्चये" [अव्ययार्थ निबन्धनम्] (धीतयः) कर्मप्रवृत्तियां ध्यान-क्रियाएं "धितिभिः कर्मभिः" [निरु० २।२४] (प्रयन्ति) प्राप्त होती हैं (धीतयः-देवान्-अच्छ-न-उपयन्ति) वे ध्यान क्रियाएं अग्नि, इन्द्र, वायु नाम वाले परमात्मरूपों को प्राप्त करने जैसे उनको पहुंचती हैं (श्रौषट्-अस्तु) बस हमारी ध्यान क्रियाओं का श्रुति सहन—सुनाई हो—होजाती है।

हम प्रथम अग्नि—अग्रणायक ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा को बुद्धि से—निदिध्यासन रीति से धारण करें—अध्यात्मबल अपने अन्दर समाविष्ट करें फिर इन्द्र—ऐश्वर्यवान् एवं वायु—जीवनप्रद परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें जो परमात्मा विशेषरूप से बसने वाले मनुष्य के लिये उपकार करने वाला है वह आत्मा के अन्दर बल सम्यक् प्रदानकर अत्यन्त नवीन आध्यात्मिक जीवन के लिये निश्चय ध्यानक्रियाएं प्राप्त होती हैं चालू होती हैं, वे अग्नि, इन्द्र, वायु, देवधर्मों को प्राप्त होते हैं बस इस प्रकार हमारी ध्यान क्रियाओं की सुनाई हो जाती है ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—एवया मरुत् ('एवं गमनशीलं याति प्राप्नोतीति-एवया मरुत्' गमनशील को प्राप्त होनेवाला—अति प्रगतिशील वासनाओं को मार देने वाला उपासक)

देवता—मरुतः (अज्ञान वासनाओं को मारने वाले परमात्म-गुण)

छन्दः—अतिजगती ।

१ ३ ३२ ३१ ३ ३ १ २ ३१२ ३१ २ ३ १ २
प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवया मरुत् ।
१२ २२३ १२ २२ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ १ २ ३
प्र शर्द्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय
१ २
शवसे ॥ ६ ॥

(मरुत्वते) अज्ञानवासनामारक गुणवाले—(एवयामरुत्) गतिशीलता से अज्ञानवासनामारक—"सुपां सुलुक्...." [अष्टा० ७।३।३०] चतुर्थ्या लुक् (प्रशर्द्धाय) प्रकृष्ट महान्—(प्रयज्यवे) प्रकृष्ट सृष्टियज्ञ करनेवाले—(सुखादये) सुष्ठुखाद—महान् भोजन वाले—(भन्ददिष्टये) अर्चना इष्टि जिसकी है ऐसे—"भदन्ते-अर्चनाकर्मा" [निघं० ३।१४] (महे शवसे) महान् प्रभावक—(विष्णव) व्यापक परमात्मा के लिये (वः) हमारी 'पुरुषव्यत्ययः' (गिरिजाः) वाणी में होने वाली (मतयः) स्तुतियां (प्रयन्तु) प्राप्त हों ।

अज्ञान वासनाओं को मारदेने वाले गुणों व्याप्तियों वाले प्रकृष्ट महान् समष्टि के याजक सुभोग प्रदाता बलवान् अर्चना ही इष्टि जिसकी है ऐसे महान् व्यापक परमात्मा के लिये पापनाशनार्थ हमारी निरन्तर स्तुतियां प्राप्त होती रहें ॥ ६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः (पापों में न झुकने वाला अवसर पर ज्ञानस्पर्श में अत्यन्त समर्थ)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

३ २ ३ १२ १२ ३१उ ३ ३ २ ३ १२
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयुग्व-
३ २ ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १
भिः । सुरो न सयुग्वभिः । धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो
२ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ २ १ २ ३
अरुषो हरिः । विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिः
१ २
ऋक्वभिः ॥ ७ ॥

(अनया रुचा) इस रुचिर—(हरिण्या) आहरण करने वाली—हृदय में ले आने वाली स्तुति से (पुनानः) आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा "पवते गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (विश्वा द्वेषांसि) उपासक की सारी द्वेष भावनाओं (सयुग्भिः) साथ युक्त शक्तियों से (तरति) तरजाता है—नष्ट करता है (सूरः-न सयुग्भिः) जैसे सूर्य साथ अपनी रश्मियों से अन्धकार को संसार से हटाता है—नष्ट करता है (पृष्ठस्य धारा रोचते) तब परमात्मा से स्पृष्ट—स्पर्श—सम्पर्क को प्राप्त हुए "पृष्ठं स्पृशतेः" [निरु० ४।३] हृदयस्थ उपासक आत्मा की "आत्मा वै पृष्ठानि" [कौ० २५।१२] चेतनाशक्ति प्रकाशमान होजाती है (अरुषः-हरिः) प्रकाशमान दुःखापहरणकर्ता परमात्मा (यत्-विश्वा रूपा-ऋक्वभिः) यतः स्तुतियों से उपासक आत्मा के सब रूपों—रुचियों को "रूपं रोचतेः" [निरु० ३।१३] या निरूपणीय भावनाओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशाओं कामनाओं को (परियासि) परिप्राप्त होता है—परिपूर्ण करता है (सप्तास्येभिः-ऋक्वभिः) जैसे ज्योतियों वाली "ज्योतिस्तद्क्" [जै० १।७६] सात आस्य—मुख—जिह्वा—ज्वालारूप किरणों से सब वस्तुओं को 'परिप्राप्त होता है'।

हृदय में ले जाने वाली स्तुति से आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा उपासक की सारी द्वेषभावनाओं को अपनी व्यापिनी दिव्य शक्तियों से नष्ट कर देता है जैसे सूर्य अपनी किरणों से संसार के अन्धकार को नष्ट कर देता है, परमात्मा से सम्पर्क—समागम को प्राप्त हुए उपासक आत्मा की चेतनशक्ति प्रकाशमान हो जाती है प्रकाशमान परमात्मा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता स्तुतियोंद्वारा उपासक की रुचिकर भावना कामनाओं आशाओं को परिप्राप्त होता है जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब वस्तुओं को परिप्राप्त होता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—नकुलः (सांसारिक कुल—बंश विकास में न पड़ा अपितु आत्मविकास का इच्छुक संयमी उपासक)

देवता—सविता (उत्पादक प्रेरक परमात्मा)

छन्दः—अति शक्वरी।

३ २र ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ
३ २ २ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र ३
रत्नधामभिप्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदि द्युतत्
१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ओएयोः) द्युलोक पृथिवीलोक के "ओएयौ द्यावापृथिवी नाम" [निघं० ३०।३०] (सवितारम्) उत्पादक परमात्मा को (अभि-अर्चामि) श्रद्धा से अभिगत—प्राप्त होकर अर्चित करता हूँ तथा (त्यम्) उस—(कविक्रतुम) क्रान्तप्रज्ञ—सर्वज्ञान समर्थ प्रज्ञा-वान् (सत्यसवम्) यथार्थ ऐश्वर्य वाले—सच्चेशासनकर्ता—(रत्नधाम्) रमणीय पदार्थों के धारक—(प्रियम्) अभीष्टदेव—(मतिम्) मननशक्तिमान् परमात्मा को (अभि०) अभ्यर्चित करता हूं (यस्य) जिसकी (अमतिः) आत्मयी स्वाधारमति "अमति रमामयी मतिरात्ममयी" [निरु० ६।१२] (ऊर्ध्वा) ऊंची (भाः) ज्योतिरूप (आदिद्युतत्) दीप्त हो रही है, अतः उसके (सवीमनि) प्रसव—प्रशासन में सब जगत् प्रवर्तमान है, वह (हिरण्यपाणिः) सौवर्णहस्त दिव्य हाथों वाला—दिव्यग्रहण-शक्ति वाला (सुक्रतुः) सुकर्मा—कुशलकर्मकर्ता (कृपा) स्व-सामर्थ्य से (स्वः) सुखमय—मोक्षधाम को (अमिमीत) निर्माण करता है—सम्पन्न करता है।

परमात्मा द्युलोक पृथिवीलोक का उत्पादक क्रान्तप्रज्ञ सर्व-ज्ञान समर्थ यथार्थ शासनकर्ता रमणीय पदार्थों का धारक अभीष्ट देव मननशक्ति-सम्पन्न है तथा उसकी स्वाधार मतिज्योतिमयी ऊंची है दीप्त हो रही है उसके शासन में सब जगत् प्रवर्तमान है, वह दिव्य ग्रहणशक्तिमान् कुशलकर्मकर्ता स्वसामर्थ्य से सुखमय मोक्षधाम को सम्पन्न करता है उसकी रुचि से अर्चन करता हूँ ॥ ८ ॥

ऋषिः—परुच्छेपः (परु—पर्व—अवसर अवसर पर पर-मात्मा का स्पर्श—अनुभव करने वाली, स्तुति कथन में भी पर्व बनाने वाला)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—अत्यष्टिः ।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १
अग्निँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुँ सहसो जात-
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
वेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो
३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
देवाच्याकृपा घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य
३ १ २
सर्पिषः ॥ ६ ॥

(होतारं दास्वन्तम्-अग्निं मन्ये) आदान—ग्रहण स्वीकार करने वाले दान करने वाले अग्रणेता परमात्मा को मैं अर्चित करूं—अर्चना में लाऊं "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (वसोः सहसः सुनुम्) अध्यात्मयज्ञ के "यज्ञोवै वसुः" [श० १।७।१।२] साहस को उत्पन्न करने वाले (जातवेदसम्) सब उत्पन्नमात्र के ज्ञाता परमात्मा को अर्चित करूं। (विप्रं न जात-वेदसम्) जात विद्या—कृतविद्या मेधावी की भांति—जैसे कृतविद्या विद्वान् सत्कार योग्य होता है ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा तो महान् सत्कारणीय है। (यः) जो (स्वध्वरः-देवः) उत्तम अध्यात्मात्म यज्ञ का इष्टदेव (ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा) ऊंची सब दिव्यगुणों से युक्त सामर्थ्य से (घृतस्य विभ्राष्टिम्-अनु) अध्यात्मयाजक के तेज की दीप्ति के अनुसार (शुक्रशोचिषः) शुभ तेज वाले समन्त-रूप से (आजुह्वानस्य) स्वीकार करने वाले परमात्मा के (सर्पिषः) सर्पणशील आनन्द की प्राप्ति होती है।

मुझे स्वीकार करने वाले दाता अध्यात्मयज्ञ के साहस को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न करने वाले उत्पन्नमात्र के ज्ञाता अग्रणेता परमात्मा की मैं अर्चना करता हूँ जो सत्करणीय कृतविद्या मेधावी के समान है। अपितु जो उत्तम अध्यात्मयज्ञ के इष्टदेव हैं उसकी ऊंची दिव्य-गुणवाली सामर्थ्य से उपासक के अध्यात्मयज्ञ को तेज की दीप्ति के अनुरूप—अनुसार शुभ तेज वाले तथा समन्तरूप स्वीकार करने वाले परमात्मा के सर्पणशील आनन्द की प्राप्ति उपासक में होती है ॥ ९ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी हर्षालु उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अति शक्वरी।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तव त्यं नर्यं नृतोप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असुरिणन्नपः।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
भुवो विश्वमभ्य देवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (तव नृतः) तुझ नेता को "नृ नये" [भ्वादि० क्रयादि०] 'छान्दसं ह्रस्वं मत्त्वा क्विपि तुक् षष्ठ्याम्' (त्यत्-नेयम्-अपः) वह देव जन के हितकर कर्म (प्रथमं पूर्व्यम्) प्रथित पुरातन है जो दिवि "त्रिपादस्यामृतं-दिवि" [ऋ० १०।९३।३] अमृत मोक्षधाम में देवजनों को अधि-कार दिया है (प्रवाच्यं कृतम्) यह प्रशंसनीय किया है (यः) 'यस्त्वम्' जो तू (देवस्य) देवजन को (शवसा) अपने बल से (असु) प्राण को (प्रारिणाः) प्रकृष्टरूप में चलाता है (अपः-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिणन्) अध्यात्मकर्म कराता हुआ (विश्वम्-अदेवम्-ओजसा-अभिभुवः) समस्त अदेवभाव को बल से दबा दिया (शतक्रतुः) तुझ असंख्य ज्ञानकर्मवान् परमात्मा ने (ऊर्ज विदेत्) बल प्राप्त करा दिया (इषं विदेत्) कमनीय अभीष्ट अमृत मोक्ष प्राप्त करा दिया।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तुझ नेता का वह देवजनहितकर कर्म प्रसिद्ध पुरातन अमृत मोक्षधाम में देवजनों को अधिकार दिया जाना प्रशंसनीय है जो तू देवजन के प्राण अपने बल से प्रकृष्टरूप में चलाता है अध्यात्मकर्म कराता हुआ सारे अदेवभाव को बल से दबा देता है असंख्यकर्मोंवाले परमात्मा अध्यात्मबल प्राप्त करा देता और उपासक में कमनीय अभीष्ट अमृत मोक्ष दिलाता है ॥ १० ॥

❀ ऐन्द्र पर्व या काण्ड समाप्त ❀

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवमान पर्व, काण्ड

पञ्चम अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी को नहीं अपितु मोक्षधाम को चाहने वाला उपासक जन)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २र
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद् भूम्या ददे ।
३२उ ३ २ ३ १ २
उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

(ते-अन्धसः) तुझ आध्यानीय—उपासनीय पवमान सोम—आनन्दधारा में आते हुए शान्त परमात्मा का (जातम्) प्रसिद्ध-रूप (उच्चा) ऊंचा—उत्कृष्ट है, जो (दिवि सत्) अमृत मोक्ष-धाम में होते हुए को "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (भूमि-आददे) भूमि—पृथिवी पर जन्मा हुआ पार्थिव शरीर में आया हुआ "ताद्धितेन् कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति" [निरु० २।५] "सुपां सुलुक्·····" [अष्टा० ७।१।३९१] 'सप्तम्याश्च लुक्' में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरबन्धन से मुक्त हो मोक्षधाम में पहुंच कर ग्रहण करता हूँ प्राप्त कर लेता हूँ (उग्रं शर्म महि श्रवः) जो कि उच्च सुख बहुत प्रशंसनीय है।

मोक्ष में परमात्मा का ऊंचा स्वरूप साक्षात् होने वाला है उसकी आकांक्षा उपासक में होनी चाहिए, उपासक की प्रवृत्ति या रुचि पृथिवीलोक के भोगों में नहीं रहती वह तो ऊँचे सुख और प्रशंसनीय दर्शनामृत की चाह रखता है ॥ १ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दाः (मीठी इच्छा वाला या मधुपरायण शान्त परमात्मा)

२ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (सुतः) ध्यानद्वारा निष्पन्न किया—ध्याया हुआ (स्वादिष्ठया) अति स्वादवाली— (मदिष्ठया) अति हर्ष देने वाली—(धारया) धारणा से (पवस्व) प्राप्त हो (इन्द्राय पातवे) उपासक आत्मा के पान—आनन्द धारण करने के लिये।

उपासक के पान—अन्दर धारण करने के लिये ध्यानद्वारा निष्पन्न या ध्याया हुआ परमात्मा अतिस्वाद वाली अतिहर्ष वाली धारणा से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

ऋषिः—भृगुर्वारुणिः (वरुणव्यवहार : कुशल तेजस्वी उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥

(वृषा मत्सरः) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् तू आनन्द-वर्षक और हर्षालु हुआ (मरुत्वते च) प्राणवाले उपासक के लिये "प्राणो वै मरुतः" [ऐ० ३।१६] (धारया पवस्व) धारणा से प्राप्त हो (ओजसा विश्वा दधानः) अपने ओज से प्रताप से सब दिव्यगुणों और सुखों को धारण कराता हुआ आ ।

आनन्द और हर्ष की वृष्टि करने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा प्राणवान् उपासक के लिये आनन्दधारा में आता है तथा उपासक के अन्दर अपने प्रताप से आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु अमृतरूप मोक्ष-धाम का चाहने वाला उपासक)

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
३ १ २ ३ २
दवावीरघशꣳसहा ॥ ४ ॥

(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरा (यः-वरेण्यः-मदः) जो हर्ष—आनन्दोल्लास वरणीय—धारण करने योग्य (देवावीः) देवधर्मों का रक्षक है और (अघशंसहा) पाप प्रशंसक विचारों का नाशक है (तेन-अन्धसा) उस आध्यानीय—चिन्तनीय—पुनः पुनः निदिध्यासन में लाने योग्य के द्वारा (पवस्व) हमारे हृदय में प्रवाहित हो—प्राप्त हो ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे सङ्ग से जो वरणीय हर्षोंल्लास प्राप्त हो वह देवधर्मों दिव्यगुणों का रक्षक वर्धक है तथा पापप्रशंसक विचारों का नाशक है, उस ऐसे तुझको पुनः पुनः ध्यान में लावें ॥ ४ ॥

ऋषिः—त्रितः (तीन को लेकर उपासना करने वाला उपासक)

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिस्रो वाच उदीरत गावो मिमन्ति धेनवः ।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

(तिस्रः-वाचः) तीन वाणियां 'अ, उ, म्' 'ओ३म्' में वर्तमान जब (उदीरते) उच्चरित होती हैं (धेनवः-गावः-मिमन्ति)-दूध देने वाली गौओं की भांति मीठी बोली बोलती हैं (कनिक्रदत् हरिः-एति) कल्याण करता हुआ मधुर ध्वनि करता हुआ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्राप्त होता है "भद्रः सोमः पवमानो वृषा हरिः" [काठ०] ।

उपासक के द्वारा 'अ, उ, म्' 'ओ३म्' तीन मात्रासमूह या तीनों मात्राएं उच्चरित हुई दुधारी गौओं के रूप में शब्द करती हैं तो कल्याणकर शान्त परमात्मा मधुर ध्वनि करता हुआ उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—कश्यपः (शासन में आने योग्य, मन से शान्तस्वरूप परमात्मा के आनन्दरस का पानकर्ता उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमा सदम् ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे आर्द्रभाव—कृपाभाव से पूर्ण सोम—आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुमान्—अत्यन्त मधुर आनन्द से पूर्ण हुआ (मरुत्वते-इन्द्राय पवस्व) प्राणवाले आत्मा—उपासक के लिये प्राप्त हो, जो कि (अर्कस्य योनिम्) अर्चन—स्तवन के गृह—स्तुतिसदन में "अर्कैरर्चनीयै स्तोमैः" [निरु० ६।२३] "योनिः-गृहम्" [निघं० ३।४] (आसदम्) समन्तरूप से बैठने को ।

आर्द्रसपूर्ण अत्यन्त मधुर एवं आनन्दस्वरूप परमात्मन् ! तू मुझ प्राणधारी आत्मा के लिये आनन्दधारारूप में प्राप्त हो, जो मैं अर्चनगृह—स्तुतिसदन—हृदय में बैठा हुआ तेरा अर्चन स्तवन कर रहा हूँ कारण कि मैं प्राणधारी हूँ प्राणस्थान हृदय में ही तेरा स्तवन कर सकता हूँ, परमात्मन् तू तो अनन्त है मैं एकदेशी हूँ परन्तु तू मेरे हृदयदेश में भी तो है अतः मेरे अन्दर अन्तर्यामिरूप से प्राप्त होकर मेरे स्तवन को स्वीकार कर ॥ ६ ॥

ऋषिः—जमदग्निः† (प्रज्वलित—साक्षात् परमात्माग्नि वाला उपासक)

१ २ ३ १२ २२ ३ १२ २२ ३ २
असाव्य२ंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ १
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥

† "जमदग्नयः प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा" [निरु० ७।२४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अंशुः) सोम—प्रजापति परमात्मा जो अध्यात्मयाजी के लिये शम्—कल्याणकारी होता है "प्रजापतिर्वा एष यदंशुः" [श० ४।६।१।१] "अंशुः-अननाय शं भवतीति" [निरु० २।५] (अप्सु दक्षः) प्राणों में प्रगतिप्रद "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] (गिरिष्ठाः) स्तुति के साधन सामगान में स्थित—स्तुतिगान से साक्षात् होने वाला "तेन गारेण साम्ना गरान् गीर्णानपाध्नत त एवेमे गिरयोऽभवन्" [जै० १।२२३] (असावि) हृदय में प्रकट किया। वह आनन्दधारा में आने वाला परमात्मा (श्येनः-न योनिम्-आसदत्) प्रशंसनीय गति वाले घोड़े के समान—"श्येनः शंसनीयं गच्छति" [निरु० २।२४] "श्येनः-अश्वः" [निघं० १।१४] अपने गृह में प्राप्त हो जाता है—हृदय-सदन में प्राप्त हो जाता है।

जीवन को शान्ति देने वाला प्रजास्वामी सोम उत्पादक परमात्मा आनन्दप्रद प्राणों में प्रगतिप्रद स्तुति में स्थित स्तुतियों से साक्षात् किया हुआ सुन्दर गतिवाले घोड़े की भांति हृदयसदन में आ बैठता है—आ जाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—दृढच्युत आगस्त्यः (पाप के त्याग करने वालों में कुशल कठिन पापियों को च्युत करने वाला उपासक)

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥

(हरे) हे दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम परमात्मन्! तू (दक्षसाधनः) स्वबल साधन वाला है, तुझे अन्य किसी के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल की अपेक्षा नहीं, ऐसा होता हुआ (मदः) हर्षकर हो (देवेभ्यः) जीवन्मुक्तों के लिये (मरुद्भ्यः) मुमुक्षु उपासकों के लिये "मरुतो देवविशः" [श० २।५।१।१२] (वा) और (आयवे) साधारण उपासक जन के लिये "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २।३] (पीतये) तृप्ति हो इसलिये (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त हो।

दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता स्वबल साधन वाला हर्षप्रद परमात्मा जीवन्मुक्तों मुमुक्षुओं साधारण उपासकजनों के लिये आनन्दधारा में प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—कश्यपोऽसितः, देवलोवा (कश्यप—पश्यक सर्वज्ञ परमात्मा से प्रकाशित कृष्ण अन्तःकरण वाला देव-धर्म को लेने वाला उपासक)

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

(गिरिष्ठाः) वाणी—स्तुति में स्थित (स्वानः) निष्पादित (सोमः) उत्पादक प्रेरक परमात्मा (पवित्रे) पवित्र अन्तःकरण में (परि-अक्षरत्) सब ओर से झिरता है (मदेषु) अर्चना करने योग्यों में "मदति-अर्चनाकर्मा" [निघं० ३।१४] (सर्वधा-असि) सबका धारक है—सब अर्चनीय दिव्यगुणों को धारण करने वाला है।

उत्पादक प्रेरक परमात्मा पवित्र अन्तःकरण में सब ओर आनन्दधारारूप से झिरता है, अर्चनाओं में सबके गुणों का धारक सर्वश्रेष्ठ गुणवाला है ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३ २ ३ १ ३ १ २र ३क २र ३ २
परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।
१ २ ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

(कविः) क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ (कविक्रतुः) मेधावी उपासकों में क्रियाशील (नप्त्योः-हित) द्यावापृथिवीमय विश्व में या द्युलोक से पृथिवी लोक तक में "नप्त्यौ द्यावा पृथिवीनाम" [निघं० ३।३०] निहित—व्याप्त या वर्तमान उत्पादक प्रेरक शान्त रसरूप परमात्मा (दिवः) अमृतधाम—मोक्षधाम के (प्रिया वयांसि) प्रिय पक्षियो ! मोक्षकी उडान भरने वाले पक्षियो या पक्षियों के समान (स्वानैः) 'स्वनान्' 'विभक्ति व्यत्ययः' अपने अन्दर निष्पन्न करने वाले उपासकों को (परियाति) परिप्राप्त होता है।

क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ परमात्मा मेधावी उपासकों को क्रियाशील करने वाला द्युलोक से पृथिवीलोक तक समस्त विश्व में व्यापक वर्तमान हो अमृतधाम मोक्ष की ओर उडान भरने पक्षी बन या पक्षी के समान हृदय में साक्षात् करने वाले उपासक को परिप्राप्त होता है ॥ १० ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला उपासक)

१र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्।
३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मदच्युतः) हर्ष चुवाने—वर्षाने वाला (सुताः) उपासित (सोमासः) शान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (नः-मघोनाम्) हम अध्यात्मयज्ञ वाले उपासकों के "यज्ञेन मघवान् भवति" [तै० सं० ४।४।८।१] (श्रवसे) श्रवणीय यश के लिये जीवन्मुक्तप्रसिद्ध के लिये "श्रवः श्रवणीयं यशः" [निरु० ११।९] (विदथे प्राक्रमुः) आनन्दानुभवस्थान—मोक्ष—में प्राप्त कराते हैं।

उपासित हुआ—ध्याया हुआ आनन्दवर्षक परमात्मा हम अध्यात्म यज्ञ करने वाले उपासकों के श्रवणीय यश प्रसिद्धि को मुक्त हो आनन्दानुभव स्थान मोक्ष में प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

ऋषिः—त्रित्रः (मेधा से तीर्णतम)

१२   २र   ३ २   ३ १ २   ३ १ २
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयंत ऊर्मयः ।
१ २   ३ १ २
वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

(विपश्चितः सोमासः) सर्वज्ञशान्त आनन्दस्वरूप परमात्मा (अपः-ऊर्मयः प्र-नयन्त) 'अपः-अपाम् 'विभक्तिव्यत्ययः' जलों की लहरें बहने वाली वस्तुओं को तटकी ओर जैसे लेजाती हैं 'लुप्तोमावाचकालङ्कारः' ऐसे हम उपासकों को अपने मोक्षधाम की ओर लेजाता (महिषाः-वनानि-इव) अथवा महान् अग्नि पिण्ड "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३।३] "अग्निर्वै महिषः" [श० ७। ३।१।२३] जलों को जैसे ऊपर लेजाता है भापरूप सूक्ष्म बनाकर "वनम्-उदकनाम" [निघं० १।१२] ऐसे उपासकों को अमृतरूप बनाकर मोक्ष में लेजाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वज्ञ परमात्मा उपासकों को अपने अमृतधाम की ओर ले जाता है जैसे जल नदियों की तरङ्गें वस्तुओं को तट की ओर पहुंचाती हैं या जैसे अग्निपिण्ड सूर्य जलों को सूक्ष्मकर उन्नत करता है ऐसे परमात्मा उपासकों को अमृत बना उन्नत करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—असहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु मोक्ष का इच्छुक उपासक)

१२ ३ १२ ३२ ३१ २ ३ ३ १२
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसे जने ।
३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे आर्द्र—रसीले परमात्मन् ! तू (वृषा) सुखवर्षक (सुतः) हृदय में साक्षात् हुआ (नः) हमें (जने) इस मानव जन्म में (यशसः कृधि) यशस्वी—जीवनमुक्त करदे—बनादे (विश्वाः-द्विषः) सारी द्वेषभावनाओं को—मोक्ष के विरोधी विचारों को (अपजहि) पृथक् करदे ।

हे रसीले परमात्मन् ! तू सुखवर्षक हृदय में साक्षात् हुआ इस मानव जन्म में हमें यशस्वी मोक्षभागी बनादे विरोधी भावनाओं को दूर करदे ॥ ३ ॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक)

२ ३ १ २ ३१२ ३१२
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१२ ३ ३१२
पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! तू

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृषा हि-असि) सुखवर्षक ही है (भानुना द्युमन्तम्) तेज से तेजस्वी—(त्वा स्वर्दृशम्) तुझ नितान्त सुखदर्शक को (हवामहे) बुलाते हैं।

हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन्! तू नितान्त सुखों की वर्षा करने वाला है तुझे अपने तेज से तेजस्वी सुखदर्शक को हम आमन्त्रित करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा †—सावधान उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः।
३ १र २र ३ १ २
सृजदश्व ँ रथीरिव ॥ ५ ॥

(चेतनः) चेतानेवाला (प्रियः) स्नेही (कवीनां मतिः) मेधावी उपासकों का स्तुत्य (इन्दुः) परमात्मा (रथीः-इव-अश्वम्) रथस्वामी जैसे घोड़े को (असृजत्) अच्छा बनाता है—साधता है, ऐसे मुझ उपासक को अच्छा बना या उपासना माग पर चला।

चेतानेवाला स्नेही मेधावी उपासकों का स्तुति योग्य परमात्मा उपासक को जैसे रथस्वामी घोड़े को साधता है चलाता है ऐसे साधता—सिद्ध बनाता उपासना मार्ग पर चलाता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
असृजत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।
३ १ ३ ३ १र २र
शुक्रासो वीरया शवः ६ ॥

---

† "कश्यपः पश्यको भवति" [तै० आ० १।८।८]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाजिनः) बलवान्—(शुक्रासः) शुभ्र—(आशवः) व्यापक—व्यापने वाले—(सोमासः) आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मन् ! 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' (गव्या) हमारी इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा से "अश्वो वै बृहद् वयः" [श० ३।२।६।१५] (वीरया) प्राणों की इच्छा से "प्राणा वै दशवीराः" [श० १२।८।१।२२] (प्रासृक्षत) हमें प्राप्त हो "सृक्ष गतौ" [भ्वादि०]

हे बलवान् शुभ्र विभु आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू हमारी इन्द्रियों के साधने की इच्छा से हमारी बड़ी अवस्था को सम्पन्न करने की इच्छा से हमारे प्राणों के साधने की इच्छा से मुझ उपासक को प्राप्त हो ॥ ६ ॥

ऋषिः—निध्रुविः काश्यपः (ज्ञानी आचार्य का शिष्य परमात्मा में निरन्तर ध्रुव—स्थिर रहने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पवस्व देव आयुषगिन्द्र गच्छतु ते मदः ।

३ १र २र ३ १ २
वायुमारोह धर्मणा ॥ ७ ॥

(देव) हे आनन्दधारा में आने वाले शान्त परमात्मन् ! तू (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त होता रहे (ते मदः) तेरा हर्षप्रद स्वरूप (इन्द्रम्) जीवात्मा को (आयुषक्-गच्छतु) आनुषक् 'वर्णव्यत्ययः' निरन्तर या अनुषक्त अनुकूल होकर या आयु का साथी बनकर प्राप्त हो (धर्मणा) अपने व्यापन धर्म से (वायुम्-आरोह) उपासक के आयु को प्राप्त कर "आयुर्वा एष यद् वायुः" [ऐ० आ० २।४।३]।

परमात्मदेव ! तू आनन्दधारा में बहता हुआ आ । तेरा हर्ष-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रद स्वरूप उपासक आत्मा को निरन्तर या अनुकूलरूप में या जीवन का साथी बनकर अपने व्यापनधर्म से उसके आयु को आगे बढ़ा।

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं अपितु मोक्ष का इच्छुक)

१ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ २
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।
१ २ ३१ ३२
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

(पवमानः) आनन्दधारा में आते हुए शान्त परमात्मा ने (बृहत्-वैश्वानरं ज्योतिः) उपासक के अन्दर उसके महान् वैश्वानर आत्म-ज्योति को "आत्मा वै श्वानरः" [तै० स० ५।६।६।३] (अजीजनत्) प्रत्यक्ष कराया (दिवः) आकाश मण्डल के (चित्रं तन्यतुं न) अद्भुत वाणी का विस्तार करने वाली विद्युत् की भांति को "तन्यतुस्तनित्री वाचः" [निरु० १२।३१]।

आनन्दधारा में आता हुआ शान्त परमात्मा उपासक के अन्दर उसकी आत्मज्योति को साक्षात् कराता है उसे अपने आत्मा का प्रत्यक्ष कराता है जैसे योगदर्शन में कहा है "ततश्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च [योग० १।२९] मेघमण्डल की विचित्र विद्युत् ज्योति के समान ॥ ८ ॥

ऋषिः—असितः काश्यपः (ज्ञानवान् से प्रकाशित अन्तःकरण वाला उपासक)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परिस्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वानासः-इन्दवः) साक्षात् निष्पन्न हुआ शान्त परमात्मा (बर्हणा गिरा) महती स्तुति से (मदाय) हर्ष के लिए (मधोः-परि-अर्षति) मधुरूपधारा से परिप्राप्त होती है योगाभ्यास द्वारा साक्षात् किए आनन्दधारा से शान्त परमात्मा बड़ी स्तुति से हर्ष के लिए उपासक के अन्दर प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

२ ३ १ २ ३ २र २र ३ १र २र ३ २
परिप्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधिश्रितः ।
३ १र २र ३ १ २
कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

(कारुं पुरुस्पृहं विभ्रत्) बहुत इच्छुक स्तोता को "कारुः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६॥] पुष्ट करने के हेतु (कविः) क्रान्तदर्शी सर्वत्र सोम शान्त परमात्मा (सिन्धोः) स्यन्दमान हृदय के (ऊर्मौ-अधिश्रितः) तरङ्ग पर आश्रित हुआ उपासनाद्वारा (परि-प्रासिष्यदत्) मानो उपासक के अन्दर नस नस में फैल रहा है।

सर्वत्र सोम परमात्मा उपासक को पुष्ट करने के हेतु उसके निरन्तर स्यन्दनशील हृदय की लहर पर—गति पर उपासनाद्वारा आश्रित हुआ मानो समस्त शरीर में वह रहा व्याप रहा है—नस नस में फैल रहा है ॥ १० ॥

—

तृतीय खण्ड

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं दिव्—अमृत धाम मोक्ष को चाहने वाला)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

(गोभिः) स्तुतियों से (सुजातम्-अप्तुरम्) सम्यक् साक्षात् व्याप्तिमान् "अप्तुरमिति ह्यस्या आप्त्याः श्रेयांसम्" [जै० १।९०] (भङ्गम्) पापभञ्जक (परिष्कृतम्) आत्मा के परिष्कार करने वाले (इन्दुम्) आर्द्र आनन्दरसभरे परमात्मा को (देवाः-उ-उपायासिषुः) मुमुक्षु उपासक प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु उपासकजन स्तुतियोंद्वारा पापनाशक तथा आत्मा का परिष्कार—अध्यात्मसंस्कार करने वाले व्याप्तिमान् आनन्दरसभरे परमात्मा को हृदय में सम्यक् साक्षात् करते हैं ॥ १ ॥

ऋषिः—बृहन्मतिः (महती स्तुति वाला उपासक)

३ १ २ ३ ३उ ३ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥

(विचर्षणिः) द्रष्टा—सर्वद्रष्टा "विचर्षणिः पश्यतिकर्मसु" [निघं० ३।१२] (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ शान्तस्वरूप परमात्मा (विश्वाः-मृधः) समस्त पापभावनाओं को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८] (अभि-अक्रमीत्) दबा देता है नष्ट कर देता है (धीतिभिः) ध्यानक्रियाओं से (विप्रं शुम्भन्ति) विशेष कामनापूरक परमात्मा को पूजते हैं।

उपासक को पवित्र करता हुआ सर्वद्रष्टा परमात्मा उपासक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समस्त पापभावनाओं को दूर करता है, उस कामनापूरक परमात्मा को उपासक ध्यानक्रियाओं से पूजते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित—प्रकाशित—प्रत्यक्ष कर लिया परमात्मा अग्नि जिसने ऐसा उपासक)

३ २ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
आविशन् कलशꣳ सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
३ १ २
इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

(सुतः) अभिनिष्पन्न हुआ (इन्दुः) आर्द्र—आनन्दरस-भरा शान्तस्वरूप परमात्मा (कलशम्-आविशन्) हृदयकलश को उपासक के हृदय को प्राप्त हुआ (विश्वाः श्रियः) सारी सम्पदाओं को (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (अभि-अर्षति) प्रेरित करता है (धीयते) जबकि उपासक के द्वारा वह ध्याया जाता है ।

उपासनाद्वारा निष्पन्न शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय में जब ध्याया जाता है तो वह समस्त अध्यात्म सम्पदाओं को प्रेरित करता हुआ उपासक को साक्षात् प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—प्रभूवसुः (प्रधान शक्तियों में वसने वाला ज्ञान करने में समर्थ उपासक)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
१ २ ३ १ २
कर्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

(यथा रथ्यः) जैसे रथ में जोड़ने योग्य घोड़ा (असर्जि)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधा जाता है वैसे (चम्वोः) ज्ञान और कर्म में या वैराग्य और अभ्यास में, सिद्ध हुआ परमात्मा (कर्मन् पवित्रे सुतः) आकर्षणस्थान हृदय में साक्षात् वह (वाजी-नि-अक्रमीत्) अमृत अन्नभोग वाला परमात्मा प्राप्त होता है।

जैसे रथ में जोडने योग्य घोड़ा उपयुक्त साधनों से साधा जाता है ऐसे अमृत अन्नभोगवाला परमात्मा ज्ञान और कर्म में या वैराग्य और अभ्यास में सिद्ध हुआ आकर्षणस्थान हृदय में साक्षात् प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मेध्यातिथिः (सङ्गमनीय परमात्मामें गमन करने वाला उपासक)

२क ३ १ २ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र यद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २उ ३र २
घ्नन्तः कृष्णामपत्वचम् ॥ ५ ॥

(कृष्णां त्वचम्) पापवासना को "पाप्मा वै कृष्णा त्वक्" [जै० ३।६०] (अपघ्नन्तः) नष्ट करते हुए (अयासः) सोम परमात्मा की आनन्दधाराएं (यत् प्र-अक्रमुः) जब उपासक को प्रक्रान्त करती हैं—प्राप्त होती हैं (भूर्णयः-त्वेषाः-गावः-न) भरण-पोषण करने वाली दीप्तियां—सूर्यरश्मियां जैसे अन्धकार को नष्ट करती हुई आती हैं।

पापवासनाओं को नष्ट करती हुई परमात्मा की आनन्द-धाराएं उपासक को प्राप्त होती हैं जैसे पुष्टि करने वाली सूर्य-किरणें अन्धकार को नष्ट करती हुई आती हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त ध्रुव स्थिर रहने वाला उपासक)

३ १ २ ३ १२ २ १ २ ३२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः।
३ १२ २२ ३ १ २
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (क्रतुवित्) प्रज्ञा प्राप्त कराने वाला (मत्सरः) हर्षकर बना हुआ (मृधः) पाप-भावनाओं को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८] (घ्नन्) नष्ट करता हुआ (पवसे) आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है (अदेवयुं जनम्) देवयु—इष्टदेव—परमात्मा को चाहने वाला नहीं ऐसे नास्तिक जन को (आनुदस्व) दूर कर।

शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू प्रज्ञा प्राप्त कराने वाला हर्ष लाने वाला पापभावनाओं को नष्ट करता हुआ प्राप्त होता है और नास्तिक जीवन से हमको दूर रखता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
अया पवस्व धारया यथा सूर्यमरोचयः।
३ १२ २२ ३ २
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

(हिन्वानः) सोम—परमात्मन् ! जगत् को प्रेरणा देता हुआ तू (यथा धारया) जिस शक्ति से (सूर्यम्-अरोचयः) सूर्य को प्रकाशित करता है—चमकाता है (अया) इस-उस धारा—शक्ति से (मानुषीः-अपः) मनुष्यों के अन्दर वर्तमान प्राणों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इन्द्रियों को—रसरक्त को "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] "इन्द्रियं वा आपः" [काठ० ३२।२] (पवस्व) प्राप्त हो।

जगत् को प्रेरणा देता हुआ परमात्मा जिस अपनी व्याप्त धारा या शक्ति से सूर्य को प्रकाशित करता है उससे मनुष्य-सम्बन्धी प्राणों इन्द्रियों और रसरक्त को प्रगति देने के हेतु प्राप्त हो ॥ ७ ॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं किन्तु मोक्षधाम का इच्छुक)

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे।
५ १ २ ३ २ ३ २
वव्रिवाꣳसं महीरपः ॥ ८ ॥

(सः-पवस्व) हे सोम शान्तस्वरूप परमात्मन्! वह तू अपनी शक्तिधारारूप में प्राप्त हो (यः) जो तू (वृत्राय हन्तवे) पाप के हननार्थ "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (इन्द्रम्-आविथ) जीवात्मा की रक्षा करता है! (महीः-अपाः-वव्रिवांसम्) महती—अनेक महत्त्वपूर्ण व्यापनप्रवृत्तियों को रोकने वाले पापभाव को मारने के लिये प्राप्त हो।

सोमरूप परमात्मन्! तू अपनी शक्तिधारा में प्राप्त हो जिससे तू जीवात्मा की रक्षा करता है महती श्रेष्ठ व्यापन प्रवृत्तियों को रोकने वाले पापभाव के हननार्थ प्राप्त हो ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २
अया वीती परिस्रव यस्त इन्द्रो मदेष्वा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २ ३ १ २र
अवाहन् नवतीर्नव ॥ ९ ॥

(इन्द्रो) हे आर्द्र आनन्दरसधारावाले परमात्मन् ! तू (अया वीती) इस व्याप्ति से (परिस्रव) सब ओर स्रवित हो कि (मदेषु) हर्षों में (यः-ते) जो तेरा हर्ष समन्तरूप से प्रसिद्ध है वह (नवतीः-नव) गतिप्रवृत्तियाँ "नवते गतिकर्मा" [निघं० २१।१४] नौ—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार और पाँच ज्ञानेन्द्रियों में होने वाली है उन्हें (अवाहन्) निरुद्ध कर देता है—उपासक को मुमुक्षु बना देता है। ऐसा तू प्राप्त हो।

आनन्दरस भरे परमात्मन् ! तू इस व्याप्ति से ऐसे सब ओर से प्राप्त हो समस्त हर्षों—आनन्दों में तेरा हर्ष आनन्द प्रसिद्ध है वह उपासक की नेत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन बुद्धि चित्त अहङ्कार चार अन्तःकरणों की नौ गति प्रवृत्तियों को दबा दे—निरुद्ध करदे—उपासक योगी से अलग कर जीवन्मुक्त बना दे ॥ ९ ॥

ऋषिः—उक्थ्यः (वाक्—स्तुति करने में कुशल प्रशस्त उपासक †)

१ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
परि द्युक्षँ सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
३ १ २ ३ २ ३ २
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥

(अन्धसा) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू आध्यान से—समन्त ध्यानोपासना द्वारा (स्वानः) निष्पन्न हुआ (नः)

† "उक्थ्यः प्रशस्यः" [निघं० ३।८]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे लिये (द्युत्तं रयिम्) दिव्—द्युलोक—मोक्षधाम "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] अमृतस्वरूप धन को (परि) सर्वतो भाव से (सनत्) देता हुआ "षणु दाने" [तनादि०] 'शतृप्रत्ययान्तं सुलुकिरूपं छान्दसम्' (वाजम्) बल—आत्मबल को (भरत्) सर्वभाव से भरता हुआ (पवित्रे) प्राणापानस्थान हृदय में "प्राणापानौ पवित्रे" [तै० ३।३।४।४] (आ-अर्ष) समन्तरूप से प्राप्त हो।

हे मेरे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू पूरे ध्यानोपासनद्वारा साक्षात् हुआ हमारे लिये मोक्षधामरूप अमृतधन को सर्वभाव से देता हुआ और उसके उपभोगार्थ आत्मबल को पूर्णरूप से भरता हुआ प्राण अपान के स्थान हृदय में समन्तरूप से प्राप्त हो ।।१०।।

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—मेध्यातिथिः (सङ्गमनीय परमात्मा में निरन्तर गतिशील प्रवेशशील उपासक)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २
अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः।
१र २र
सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥

(महान् वृषा हरिः) महान् कामवर्षक तथा दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता सोम शान्तस्वरूप परमात्मा (मित्रः-न दर्शतः) मित्र के समान दर्शनीय (अचिक्रदत्) बुलाता है—सम्भाषण करता है "क्रदि आह्वाने रोदने च" [भ्वादि०] 'अह्वाने नमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावश्छान्दसः' (सूर्येण सन्दिद्युते) सूर्य के समान 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' सम्यक् प्रकाशित होता है "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्" [यजु० ३१।१८]।

महान् कामनापूरक दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता शान्तस्वरूप मित्र की भांति दर्शनीय परमात्मा को आमन्त्रित करता हूँ, जो सूर्य के समान प्रकाशमान है ॥ १ ॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक)

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
३ १ २ ३ १२
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥

(ते) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरे (मयोभुवम्) सुखको भावित करने वाले—(वह्निम्) जीवनवाहक—(पुरुस्पृहम्) बहुत चाहने योग्य—(आ) और "एतस्मिन्नेवार्थे 'समुच्चयार्थे' आ—इत्याकारः" [निरु० १।५] (पान्तम्) रक्षा करनेवाले—(दक्षम्) बल को (अद्य) इस जीवन में (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं—समन्तरूप से वरते हैं—अपनाते हैं।

परमात्मन् ! तेरे सुखोद्भावक जीवनवाहक बहुत कमनीय और रक्षक बल को इसी जीवन में समन्तरूप से भरते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—उचथ्यः (परमात्मा में समवेत होने वाला)

१ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २
अध्वर्यो आद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आनय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अध्वर्यो) हे अध्यात्म यज्ञ के याजक ! तू (अद्रिभिः सुतं सोमम्) श्लोककर्ता—स्तुति करने वालों के द्वारा "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] "श्लोकः—वाङ् नाम" [निघं० १।११] निष्पादित—भावित शान्त परमात्मा को (पवित्रे) प्राणापानस्थान हृदय में (आनय) ले आ—बिठा (इन्द्राय पातवे) वहां विराजमान हो आत्मा के पानार्थ (पुनाहि) तू अपने अन्दर प्रवाहित कर।

हे अध्यात्म यज्ञ के याजक प्रेरक महानुभाव तू स्तुतिकर्ता विद्वानों द्वारा निष्पादित—भावित शान्त परमात्मा को हृदय में बिठा वहां उपासक आत्मा को पान कराने के लिये प्रवाहित कर ॥ ३ ॥

ऋषिः—अवत्सारः (रक्षा करते हुए परमात्मा—परमात्मा के अनुसार चलने वाला आस्तिक जन)

३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १र २र
तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
३ २ ३ १ २ ३
तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

(धारा सुतस्य) स्तुतिवाणीद्वारा स्तुत हुए (अन्धसः) आध्यानीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा का (सः-मन्दी) वह स्तुतिकर्ता (तरत्) पाप को तरता है (धावति) ऊर्ध्वगति को जाता है—प्राप्त होता है (तरत् सः-मन्दी धावति) निश्चय वह स्तुतिकर्ता ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है "तरति स पापं सर्वं मन्दी य स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वांगतिम्" [निरु० १३।६]

समन्तरूप से ध्यान करने योग्य सोमरूप शान्त परमात्मा की स्तुति से स्तुतिकर्ता पाप को तरता हुआ ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है निश्चित्त पाप को तर जाता है ऊंची गति को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—निध्रुविः (परमात्मा में नितान्त स्थिर रहने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ पवस्व सहस्रिण ँ रयि ँ सोम सुवीर्यम् ।
३ १र २र
अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (सहस्रिणं सुवीर्यं रयिम्) परमपुरुषार्थ या परमस्थान या परमपद जिसके आश्रय में हो ऐसे "परमं सहस्रम्" [तां० १६।९।२] शोभन आत्मबलवाले मोक्षधन को (आपवस्व) समन्तरूप से प्रसारित कर—प्रदान कर (अस्मे) हमारे में (श्रवांसि धारय) इहलोकसिद्धि के लिये सब श्रवणीय यशस्वी—यशस्कर भोग और साधन धारण करा ।

शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरी शरण में आने पर तेरा उपासक बन जाने पर तू परमपद वाले शोभनबल एवं आत्मबलवाले मोक्षरूप अमृतधन को देता है और संसार में भी यशस्कर भोग एवं साधन प्रदान करता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
३ १ २ ३ २
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥

(प्रत्नासः-आयवः) देव—जीवन्मुक्त जन "देवा व प्रत्नम्" [काठ० ७।४] "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २।३] (रुचे) अमृतत्व के लिये "अमृतत्वं वै रुक्" [श० ९।४।२।१४] (सूर्यं जनन्त) सरणशील आनन्दधारा में प्रवहणशील सोम शान्त पर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्मा को अपने अन्दर जब साक्षात् करते हैं तब (नवीयः पदम्) अत्यन्त स्तुत्य पद मोक्ष को (अनु-अक्रमुः) अनुगत होते हैं—प्राप्त होते हैं।

देवजन—जीवन्मुक्त श्रेणी के महानुभाव अमृतत्व की प्राप्ति के लिये आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम—शान्त परमात्मा को साक्षात् करते ही अत्यन्त स्तुत्य मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं॥६॥

ऋषिः—भृगुः (तेजस्वी उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।
३ २ ३ २ ३ २
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥

(सोम) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (द्युमत्तमः) अत्यन्त द्योतनवान्—दीप्तिमान् हुआ "द्युमान् द्योतनवान्" [निरु० ६।१९] (वनेषु रोरुवत्) वननीय सम्भजनीय विषयों के निमित्त उत्तम उपदेश करने के हेतु (द्रोणानि-अभि-अर्ष) द्रोणकलशों—मूर्धा के अवकाशों को "मूर्धा द्रोणकलशाः" [मै० ४।५।९] प्राप्त हो (योनौ-आसीदन्) हृदय घर में विराजमान हो "योनिः-गृहनाम" [निघं० ३।४]।

हे आनन्दधारा में आने वाले शान्त प्यारे परमात्मन् ! तू अत्यन्त द्योतमान हुआ वननीय मधुर बातों के निमित्त उत्तम उपदेश देने के हेतु मस्तिष्कावकाशों में प्राप्त हो और हृदयगृह में स्थिररूप से विराजमान हो ॥ ७ ॥

ऋषिः—कश्यपः (द्रष्टा—परमात्मज्ञानी उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (वृषा द्युमान्) कामनावर्षक वीर्यवान् सामर्थ्यवान् है "द्युमत्तमेति वीर्यवत्तमेत्येतत्" [श० ६।२।१।३२] (असि) है (देव) हे दिव्यगुण परमात्मन् ! तू (वृषा वृषव्रतः) सुखवर्षक धर्मव्रत—धर्म्यकर्म—यथार्थकर्म वाला है (वृषा धर्माणि दध्रिषे) स्वयं धर्मस्वरूप होता हुआ धर्मों—नियमों को धारण करता है।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू कामनावर्षक सामर्थ्यवान् है हे दिव्यगुणवाले परमात्मन् ! तू सुखवर्षक धर्मव्रत—धर्म कर्म वाला स्वयं धर्मरूप हुआ धर्मों नियमों को धारण करता है उन्हें चलाता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १२ २र
इन्दो रुचाभिगा इहि ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे आर्द्र भाव वाले रसीले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (मनीषिभिः) स्तुति उपासना करनेवाले मेधावीजनों द्वारा "मनीषा मनस ईषया स्तुत्या प्रज्ञया वा" [निरु० ९।१०] "मनीषी मेधावी"—[निघं० ३।१५] (मृज्यमानः) प्राप्त होने में योग्य होता हुआ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (इषे धारया पवस्व) इष्ट—परमसुख प्राप्ति के लिये ध्यानधारा द्वारा प्राप्त हो (रुचा) अमृत से (गाः-अभि) स्तुतियों वाणियों को लक्ष्यकर उनके साथ (इहि) प्राप्त हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे आर्द्र रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू स्तुति करनेवाले उपासकों द्वारा प्राप्त होने योग्य हमें इष्ट सुख प्राप्ति के लिये ध्यान-धारणा से प्राप्त हो तथा अमृत धर्म से स्तुतियों के अनुरूप प्राप्त हों ॥ ९ ॥

ऋषिः—असितः काश्यपः (द्रष्टा—ज्ञानी से सम्बद्ध अज्ञान-मुक्त उपासक)

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २
मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
३ १२ ३ २
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥ १० ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (वृषा) सुखवर्षक (देवयुः) पूर्ववर्ती जीवन्मुक्तों को चाहने वाला, तथा (अस्मयुः) इस समय के हम उपासकों को चाहने वाला (मन्द्रया धारया पवस्व) आनन्दकर धारा से प्राप्त हो (वारेभिः-अव्याः) पाप-वासना वारण करने वाले गुणधर्मकर्मों से हमारी रक्षा कर ।

सुखवर्षक सोमरूप शान्त परमात्मा पुरातन जीवन्मुक्तों को चाहता हुआ तथा नूतन हम उपासकों को चाहता हुआ आनन्दप्रद धारा से प्राप्त हो और पापवासना निवारक गुणधर्मकर्मों से हमारी रक्षाकर ॥ १० ॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी अध्यात्मवक्ता)

३ १ ३ ३ १ २ ३२उ ३क २
अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।
३ १२ २२
मन्दान इद् वृषायसे ॥ ११ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (महान् सन्) महान् होता हुआ (अया सुकृत्यया) इस उपासना से (अभ्य-वर्धथाः) हमें बढ़ा (मन्दानः) स्तूयमान—अर्च्यमान हुआ "मदि स्तुति...." [भ्वादि०] "मन्दते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययः' (इत्) ही (वृषायसे) सुखवर्षक मेघसमान हो जाता है ।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! क्या कहना तू महान् होता हुआ हमारी इस स्तुति उपासना से हमें बढ़ाता है, हमारे द्वारा स्तुत किया जाता हुआ ही सुखवर्षक मेघसमान बन जाता है, धन्य हो आपकी आर्द्रता उदारता को ।। ११ ।।

ऋषिः—जमदग्निः (प्रज्वलित प्रसिद्ध ज्ञानाग्नि वाला)

३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
अयं विचर्षणि र्हितः पवमानः स चेतति ।

३ १र २र ३ २
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥

(अयं विचर्षणिः पवमानः) यह द्रष्टा—सर्वद्रष्टा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला सोमरूप शान्त परमात्मा (हितः) अन्तर्हित हुआ (आप्यं बृहत्) प्राप्त करने योग्य अध्यात्मबल को "ओजो वै वीर्यं बृहत्" [काठक० ३७।८] (हिन्वानः) प्रेरित करता हुआ (सः) वह (चेतति) 'चेतयति-अन्तर्गतणिजर्थः' चेताता है ।

यह सर्वद्रष्टा आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा सबके अन्दर वर्तमान हुआ प्राप्त करने योग्य अध्यात्म-बल को प्रेरित करता हुआ चेताता है—सावधान करता है ।। १२ ।।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—अयास्यः (यास्य—प्रयत्नसाध्यभोग-प्रवृत्तिरहित वैराग्यवान् उपासक)

१ २ ३१र २र ३ १र २र
प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न विभ्रदर्षसि ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥

(इन्दो) हे आर्द्र रसीले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (नः) हमारे (महे) महान्—(तुने) समृद्धि के लिये "तु वृद्धौ" [अदादि०] 'ततो नुक् छान्दसः-उणादिर्वा बाहुलकात्' (ऊर्मिं न) तरङ्गसमान आनन्दधारा को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (देवान्-अभि) जीवन्मुक्तों की ओर (अयास्यः) आयास न रखता हुआ—स्वभावतः (प्र-अर्षसि) प्राप्त होता है ।

आर्द्र—रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरा क्या कहना ? तू तो हमारे महान् वैभव के लिये अपनी आनन्दधारा को तरङ्ग समान धारण करते हुए देवों—जीवन्मुक्तों की ओर अनायास ले जारहा है पहुँचा रहा है—जीवन्मुक्त बना रहा है, यह तेरी महती कृपा है ॥ १३ ॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं किन्तु मोक्षधाम का इच्छुक उपासक)

१ १ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥

(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (मृधः-अपघ्नन्) पापभावनाओं को "पाप्मा वै मृधः" [श० ६।३।३।८] मारता हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

(अराव्णः-अप०) असद् भावनाओं को "अराव्णो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति" [तां० ६।१०।७] नष्ट करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्) जीवात्मा—उपासक आत्मा के संस्कृतशुद्धस्वरूप को "यद्वै निष्कृतं तत् संस्कृतम्" [ऐ० आ० १।१।४] प्राप्त कराता हुआ (पवते) आनन्दधारा में आता है।

शान्तस्वरूप परमात्मा पापभावनाओं को मारता हुआ तथा असद् विचारों को नष्ट करता हुआ उपासक आत्मा के शुद्धस्वरूप को प्राप्त कराता हुआ आनन्दधारा में आता है ॥ १४ ॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—'भरद्वाजः कश्यपः, गोतमः, अत्रिः, विश्वामित्रः, जमदग्निः, वसिष्ठः' इति सप्तर्षयः (सम्पूर्ण खण्ड के ये भरद्वाज आदि सात ऋषि हैं अर्थ पीछे आ चुके हैं)

छन्दः—बृहती ।

३ १ ३ २ १ २ ३ १र २र
पुनानः सोम धारयापो वसनो अर्षसि ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (पुनानः) मुझको शोधता हुआ—पवित्र करता हुआ, तथा (धारया) ध्यान धारणा से (अपः-वसानः) मेरे प्राणों को "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] आच्छादित—आवृत करता हुआ—रक्षित करता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ (अर्षसि) प्राप्त होता है (रत्नधा) रमणीय भोगों का धारण करने वाला (ऋतस्य योनिम्-आसीदसि) अध्यात्मयज्ञ में "यज्ञो वा ऋतस्य योनिः" [श० १।३।४।१६] आविराजता है (हिरण्ययः-उत्सः-देवः) तू ही सुनहरा अमृतकूप, देव अमृतधाम मोक्षधाम है "असौ वै द्युलोक उत्सो देवः" [जै० १।१२१] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू मुझ उपासक को पवित्र करता हुआ तथा मेरे प्राणों को ध्यानधारणा से सुरक्षित करता हुआ प्राप्त होता है। तू रमणीय भोगों को धारण करने वाला मेरे अध्यात्मयज्ञ में विराजमान होता है तू ही मोक्षधाम या सुनहरी अमृत कूप है ॥ १ ॥

ऋषिः—ऋषयः पूर्वोक्ताः।

२ ३ १ २ ३ २क ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
३ १र २र ३ २ २उ ३ २ ३ ३ ३ १ २
दधन्वाꣳयो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

(यः सोमः-उत्तमं हविः) जो शान्तस्वरूप परमात्मा अध्यात्म-यज्ञ का उत्कृष्ट हवि है या उपासक के आत्मा का आत्मा है या प्राणसमान आधार है "आत्मा वै हविः" [काठ० ८।५] "प्राणो हविः" [मै० १।९।१] (सुतम्) हृदय में इसे निष्पन्न साक्षात् किया करे (इतः) हृदय से (परिषिञ्चत) जीवन में सर्वत्र सिञ्चो—आत्मसात् करो (अद्रिभिः) आदरणीय योगाभ्यासों के द्वारा "अद्रय आदरणीयाः" [निरु० ९।६] (अप्सु-अन्तरा) प्राणों के अन्दर (सोमं सुषाव) शान्तस्वरूप परमात्मा को निष्पन्न करता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ साक्षात् करता हूँ (दधन्वान्) उसे परमात्मा अपने अन्दर धारण करता है (यः-नर्यः) जो नर—श्रेष्ठजन का हितकर है।

जो शान्तस्वरूप परमात्मा अध्यात्मयज्ञ का उत्कृष्ट हवि या उपासक के आत्मा का आत्मा या प्राण है उसे हृदय में साक्षात् कर हृदय से जीवन में सर्वत्र आत्मसात् करो, आदरणीय सत्कार से सेवनीय योगाभ्यासों के द्वारा प्राणों के अन्दर शान्तस्वरूप परमात्मा को जो साक्षात् करता है उसे परमात्मा अपने अन्दर धारण करता है जो कि ऐसे श्रेष्ठ नर का हितकर है ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्वोक्ता ऋषयः।

१ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ ३ ॥

(अद्रिभिः) आदरणीय—सत्करणीय—सत्कार सेवित "तपसा, ब्रह्मचर्येण विद्यया श्रद्धया सेवितः सत्कारवान् भवति" [योग० १।१४ व्यासः] योगाभ्यासों के द्वारा (अव्यया वाराणि-तिरः) अनिवार्य दोषवारण साधनों—यम नियम को मध्य में सेवित करके (सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (स्वानः) निष्पन्न—साक्षात् करणीय है, जो कि (हरिः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (चम्वोः) द्यावापृथिवीमय द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त जगत् में "चम्वौ द्यावापृथिवीनाम्" [निघं० ३।३०] (आविशत्) समन्त-रूप से प्रविष्ट है (जनः-न पुरि) जैसे जन जायमान प्राणी देह-पुरी में आविष्ट होता है। वह तू (वनेषु सदः-दध्रिषे) वननीय मर्म स्थान में विशेषतः हृदयसदन को धारता है।

२७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर सत्कार से तप ब्रह्मचर्य विद्या श्रद्धा से किए योगाभ्यासों के द्वारा और अनिवार्थ दोषनिवारक अहिंसा आदि व्रतों को मध्य में करके शान्तस्वरूप परमात्मा निष्पन्न—साक्षात् किया हुआ जो कि दुःखापहर्ता सुखाहर्ता द्यावापृथिवीमय—द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त समस्त जगत् में ऐसे आविष्ट हो रहा है जैसे जन्यमान जीवात्मा देहपुरी में आविष्ट होता है। वह वननीय मर्मस्थलों हृदय आदि को अपना सदन बना रहा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्वोक्ता ऋषयः।

१ २ ३१ २ ३ २ ३१ २ ३ १२
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।

३ १र २र ३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ २
अꣳशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू (देववीतये) मुमुक्षुजनों की तृप्ति के लिये आनन्द से पूर्ण है (सिन्धुः-न-अर्णसा प्रपिप्ये) जैसे सिन्धु जल से पूर्ण होता है (अंशोः पयसा) तुझ सोम—शान्त रसीले परमात्मा के आनन्दरस से "रसो वै पयः" [श० ४।४।४।८] (मदिरः-न जागृविः) उपासक आनन्दवान् तथा सचेत सावधान विकासवान् हो जाता है (मधुश्चुतं कोशम्) तू मधु चुवाने वाले हृदय कोश को अभिप्राप्त हो जाता है।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! वाह रे तू मुमुक्षुजनों की तृप्ति के लिये आनन्दप्रपूर्ण है जैसे नद—महाजलाशय जल से भरा हुआ प्रपूर्ण होता है। तुझ सोमस्वरूप के रस से उपासक आनन्द-वान् और सावधान प्रज्ञानवान् हो जाता है और उसके तू मधु चुआने वाले हृदय कोश को प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि:—पूर्वोक्ता ऋषय: ।

१ २ ३२ ३ २ ३२ ३ २ ३१२
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥

(उ) हाँ (सोम:) शान्तस्वरूप परमात्मा (सोतृभि:) अध्यात्मसवन करने वालों से (अवीनां स्नुभि:) चित्तरक्षण करने वाली योगस्थलियों के "इयं पृथिवी वा अविरियं हीमा: सर्वा: प्रजा अवति" [श० ६।१।२।२३] प्रवाहों के द्वारा (स्वान:) सम्पादित हुआ—साक्षात् हुआ (अश्वया-इव हरिता) अश्वगति जैसी गति से दु:खापहरण सुखाहरण वाली—(धारया) ध्यान धारणा से (अधियाति) अधिगत होता है—आत्मा में भावित होता (मन्द्रया धारया याति) स्तुतिरूप ध्यानधारणा से प्राप्त होता है।

हाँ शान्तस्वरूप परमात्मा आध्यात्मिक सवन यज्ञ करने वालों से रक्षण करने वाली योगस्थलियों के प्रवाहों द्वारा साक्षात् हुआ अश्वगति जैसी गति से दु:खापहरण सुखाहरण करने वाली स्तुति ध्यानधारणा से अधिगत आत्मा में भावित होता है—प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

ऋषि:—पूर्वोक्ता ऋषय: ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २
पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्दो सोम) हे आर्द्र—रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (अहम्) मैं (तव सख्ये) तेरे सखापन—तेरी मित्रता में (दिवे दिवे रारण) दिनों दिन रमण करता हूँ "नाहमिद्राणि रारण-नाहमिन्द्राणि रमे" [निरु० ११।३९] (बभ्रो) हे शुभ्र—निर्मल सोम परमात्मदेव ! "बभ्रुर्भवति ब्रह्मणो रूपम्" [मै० २।५।७] "सोमो वै बभ्रुः" [श० ७।२।४।२६] (माम्-अव) मुझे अव-मानित करके—मुझे दबाने वाले (पुरूणि निचरन्ति) बहुतेरे विघ्नकारी कामक्रोध आदि दुर्वृत्त छिपे पड़े हैं (तान् परि धीन्-अति-इहि) उन्हें परिधिमुक्त न होने देने वाले बन्धन में रखने वाले घेरे को, अतिक्रान्त करा—पार करा या नष्ट कर ।

हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तेरी मित्रता में दिनों दिन रमण करता रहूँ, हे शुभ्र निर्मल—दोषरहित परमात्मन् ! मेरा अवमान करने वाले मुझे दबाने वाले बहुत विघ्नरूप कामक्रोध आदि दुर्वृत्त छिपे पड़े हैं उनके घेरों को मुक्त न होने देने वाले बन्धनरूपों को दूर कर दे या नष्ट कर दे ।। ६ ।।

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

३ १ २ ३१र २र
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

(सुहस्त्य) 'दीर्घाकारश्छान्दसः' सु—शोभन हस्त्य—हस्त-कर्म करने—संसाररचनकर्म करने में कौशल जिसका है ऐसे (पवमान) आनन्दधारा में आते हुए परमात्मन् ! तू (समुद्रे) हृदयाकाश में (मृज्यमानः) प्राप्त होता हुआ "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (वाचम्-इन्वसि) हमारी स्तुति प्रार्थना को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्त होता है—स्वीकार करता है "इन्वति व्याप्तिकर्मा" [निघं० २।१८] (पिशङ्गं पुरुस्पृहं बहुलं रयिम्) सुनहरे अतिकमनीय बहुत आनन्दैश्वर्य को (अभ्यर्षसि) अभिप्राप्त करता है।

हे जगद्रचनरूप शिल्पकुशल तथा आनन्दधारा में आने वाले परमात्मन् ! तू हृदय में प्राप्त होता हुआ हमारी स्तुति प्रार्थना को स्वीकार करता है, स्वीकार करने के उपलक्ष्य में हमें दिव्य अतिकमनीय बहुत आनन्दैश्वर्य को सम्यक् प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः।

३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयव, पवन्ते मद्यं मदम्।
३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

(आयवः) प्राप्त होने वाला (मनीषिणः) अन्तर्यामी (मत्सरासः) आनन्दरूप (मदच्युतः) हर्ष चुआने—आनन्द वर्षाने वाला (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा 'सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्' (समुद्रस्य-अधिविष्टपे) प्राणों और रक्त को सम्यक् शरीर में फेंकने वाले हृदय के विष्टप—गुहा ब्रह्मस्थान में "विष्टप एव·······यस्मिन्नेतद् ब्रह्म" [जै० १।१४३] (मद्यं मदम्) हर्षकर आनन्द कर (पवन्ते) 'पवते' प्रवाहित करता है।

प्राप्त होने वाला अन्तर्यामी आनन्दरूप आनन्द वर्षाने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा हृदय के गुहारूप—गह्वर स्थान में हर्षाने योग्य आनन्द को प्रवाहित करता है ॥ ८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—काश्यपः ।

३ १ २ ३ १ २ ३१ ३ २ ३ १२ ३२
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।

१र २र ३ १ २ ३ १ २
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥

(अङ्गिरस्तम सोम) हे प्राणतम—अतीवप्राणस्वरूप "प्राणो वा अङ्गिराः" [श० ६।१।२।२८] शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (त्वम्) तू (पुनानः) हमें पवित्र करने वाला (प्रियः) स्नेही (वारैः) रक्षणकर्मों से (परि-अव्याः) हमारी सब ओर से रक्षा कर, तथा (विप्रः-अभवः) विशेष कामनापूरक हो (नः) हमारे (यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ को (मध्वा मिमिक्ष) अपने मधुर रस से सींचने की इच्छा कर—सींच ।

अतिप्राणरूप शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू हमें पवित्र करने वाला स्नेही रक्षणकर्मों से सब ओर से हमारी रक्षा कर तथा विशेष कामनापूरक हो, हमारे अध्यात्मयज्ञ को अपने मधुर रस से सींचता रह ॥ ९ ॥

ऋषिः—जमदग्निः ।

१ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।

३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥

(सुतः-मदः-सहस्रधारः सोमः) हृदय में निष्पन्न—साक्षात्कृत असंख्यधारा वाला—बहुत स्तुतिवाणीवाला हर्षकर शान्तस्वरूप परमात्मा (मरुत्वते-इन्द्राय) प्राणशक्तिसम्पन्न उपासक आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये (पवते) गति करता है (अव्यम्-अत्यर्षति) रक्षणीय योगभूमि में को प्राप्त होता है (ईम्) हां (तम्) उसे (आयवः-मृजन्ति) पुनः मनुष्य "आयवः-मनुष्याः" [निघं० २।३] प्राप्त करते हैं "मार्ष्टि गतिकर्मा" [निघं० २।१४]।

निष्पन्न—हृदय में साक्षात् हुआ बहुत स्तुति वाला शान्तस्वरूप परमात्मा प्राणवान्—प्राणशक्तिमान् उपासक के लिये गति करता है—बहता है रक्षणीय योगभूमि में को प्राप्त होता है, हां उसे फिर मनुष्य प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

ऋषिः—वसिष्ठः।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या।
१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २
त्वꣳ समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वं समुद्रः) तू आनन्द का सागर है—प्रेरक है तथा (देवेभ्यः) मुमुक्षुओं के लिये (प्रथमे विर्धमन्) प्रथमधर्म की विधृति में देवधर्म की विशेष प्राप्ति के निमित्त "विधर्मे भवति धर्मस्य विधृत्यै" [तां० १५।५।२१] (मत्सरः) हर्षकर, तथा (वाजसातमः) अमृत अन्नभोग—मोक्ष में प्रापणीय आनन्द का अत्यन्तदाता (विश्वानि वार्या) समस्त वारण करने योग्यों को (अभि) अभिभव अभिभूत कर।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू आनन्द का प्रेरक है मुमुक्षुओं के लिये प्रमुख धर्म देवधर्म की विशेषधृति में आनन्दप्रद और अमृतभोग का अत्यन्तदाता है समस्त हटाने योग्य को अभिभूत करने—दबाने वाला एवं आनन्द का समुद्र है ॥ ११ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ २ ३२ ३ १ २
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
३ १ २ ३ १ ३ २ १२ २२ ३ २ ३ १ २२
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२॥

(मरुत्वन्तः) मुमुक्षुजन वाला—मुमुक्षुजनों का अधिकप्रिय "सर्वत्र बहुवचनमादरार्थम्" (मत्सराः) हर्षप्रद (पवमानाः) आनन्दरूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा (धारया) ध्यान धारणा-द्वारा (पवित्रम्) पवित्र प्राणाधार हृदय को (अति-असृक्षत) अत्यन्त सृष्ट करता है, पुनः, (हयाः-इन्द्रियाः) इन्द्र—आत्मा के जुष्ट आत्मा के द्वारा सेवन किए जाने योग्य हय—घोड़े हैं उन्हें तथा (मेधाम्) उत्तम बुद्धि को (प्रयांसि) विविध अन्नों—दिव्य-भोगों को अभिसृष्ट करता सुखद बनाता है ।

मुमुक्षुजनों का अधिकप्रिय हर्षकर आनन्दरूप में प्राप्त होता हुआ परमात्मा ध्यान धारणा द्वारा प्राणाधार पवित्र हृदय को अत्यन्त सृष्ट करता है पुनः इन्द्र—आत्मा के जुष्ट आत्मा के द्वारा सेवन किए जाने योग्य हय—घोड़े हैं उन्हें तथा मेधा—उत्तम बुद्धि और विशेष अन्नों—दिव्यभोगों को अभिसृष्ट करता सुखद बनाता है जब तक संसार में हैं ॥ १२ ॥

षष्ठ खण्ड

ऋषिः—उशनाः (मुक्ति पाने की कामना करने वाला)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२ २२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्हि रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥

(तु) हे सोम—शान्तस्वरूप परमात्मन् ! अवश्य "तु अवधारणे" (अव्ययार्थ-निबन्धनम्) (प्रद्रव) मेरी ओर आनन्दधारा में प्रद्रवित हो—बहता हुआ आ (कोशं परिनिषीद) मेरे अन्तःकोष्ठरूप हृदय में परिपूर्ण होकर विराजमान हो जा—बैठ जा (नृभिः पुनानः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] ध्यानद्वारा प्राप्त करने योग्य होता हुआ 'कर्मणि कर्तृप्रत्ययश्छान्दसः' (वाजम्-अभ्यर्ष) अमृत अन्न—अमृत भोग को "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] प्रेरित कर (वाजिनम्-अश्वं त्वा मर्जयन्तः) अति बलवान् घोड़े के समान तुझको स्तुतियों से अपनी ओर प्रेरित करते हुए "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२।४३] (रशनाभिः) तेरी व्याप्त आनन्दधाराओं से "अशेरश च युच्" [उणा० २।७६] या अपनी व्यापने वाली उपासनक्रियारूप अङ्गुलियों अङ्गुलिसङ्केतों से "रशनाः-अङ्गुलिनाम" [निघं० २।५] या उपासना शक्तियों से "ऊर्ग् वै रशना" [तै० ६।६।४।५] (बर्हिः-अच्छ नयन्ति) हृदयाकाश की ओर "बर्हिः-अन्तरिक्षम्" [निघं० १।३] लेते हैं।

हाँ अवश्य हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! मेरी ओर आनन्दधारारूप में प्रद्रवित हो वह मेरे हृदयकोश में परिनिष्ठित हो उसे परिपूर्ण कर विराज, मुमुक्षुजनों द्वारा प्राप्त होने वाला तू अमृतभोग को प्रेरित कर अतिबलवान् घोड़े के समान तुझको स्तुतियों से अपनी ओर प्रेरित करते हुए तेरी व्याप्तधाराओं से या उपासनक्रियारूप अङ्गुलियों अङ्गुलिसङ्केतों से या उपासनाशक्तियों से हृदय आकाश की ओर लेते हैं ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—वृषगणो वासिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाले से सम्बद्ध सुखवर्षक स्तुति वाला †)

१२ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ १ २
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥

(उशना-इव देवः) उपासकों की कल्याणकामना करने वाला सोमरूप शान्त परमात्मदेव "इवोऽपि दृश्यते पदपूरणः" [निरु० १।११] (काव्यं प्रब्रुवाणः) वेदरूप काव्य या कलास्वरूप गुण का प्रवचन करता हुआ (देवानां जनिमा विवक्ति) दिव्य पदार्थों की उत्पत्ति आदि को या जीवन्मुक्त बनने के साधनों को खोलकर वर्णन करता है, वह (महिव्रतः) महाकर्मशक्तिवाला (शुचिबन्धुः) पवित्रजन का बन्धु (पावकः) स्वयं पवित्र और अन्य को पवित्र करने वाला (वराहः-रेभन् पदा-अभ्येति) वह अमृत आहार कराने वाला "वराहो··· वराहारः" [निरु० ५।४] कल्याण प्रवचन करता हुआ स्वरूप से अभिगत होता है।

उपासकों की कल्याणकामना करने वाला सोमरूप शान्त परमात्मा अपने ज्ञानगुणमयरूप और कलामयस्वरूप का प्रवचन करता हुआ उपासक के सम्मुख आता है तथा दिव्य पदार्थों की उत्पत्ति आदि को एवं मोक्षाधिकारी या जीवन्मुक्त बनने के साधनों को खोलकर वर्णन करता है, वह ऐसा महती कर्मशक्ति-वाला पवित्रजन का बन्धु—अपने साथ बान्धने वाला स्वयं पवित्र उपासक को पवित्र करने वाला अपना अमृत आहारभोग देने वाला कल्याण का उपदेश देता हुआ अपने स्वरूप से अभिगत सम्यक्

† "गणा वाङ्नाम" [निघं० १।११]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होता है—उपासक के अन्दर अपना स्वरूप साक्षात् कराता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्ति से सम्पन्न काम आदि को नष्ट करने वाला उपासक)

३ १र २र ३ १ २ २र ३१ २ ३ १र २र ३ २
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वाव-
३ २
शानाः ॥ ३ ॥

(वह्निः) अध्यात्मयज्ञ का वहनकर्ता उपासक (तिस्रः-वाचः) तीन वाणियाँ—'अ, उ, म्' को (प्र-ईरयति) जपरूप में प्रेरित करता है (ऋतस्य) उस अध्यात्मयज्ञ की (धीतिम्) धारणा क्रिया को (ब्रह्मणः-मनीषाम्) ब्रह्म—परमात्मा की स्तुति को प्रेरित करता है (गावः-गोपतिं पृच्छमानाः-यन्ति) जैसे गौएं गोस्वामी गौओं के पालक को अर्चित करती हुईं "पृच्छति-अर्चति-कर्मा" [निघं० ३।१४] उसे प्राप्त होती हैं, ऐसे (मतयः-वाव-शानाः सोमं यन्ति) स्तुतियां भी "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] बोलती हुई सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होती हैं।

अध्यात्मयज्ञ का कर्ता उपासक 'अ-उ-म्' ओ३म् की तीन वाणियों को प्रेरित करता है—जप करता है और साथ उस अध्यात्मयज्ञ की धारणा क्रिया ब्रह्म की स्तुति को भी प्रेरित करता है—अर्थभावन को प्रेरित करता है, इस प्रकार ओम् का जप और उसका अर्थभावन करता है। एवं तीनों 'अ, उ, म्' वाणियाँ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तस्वरूप परमात्मा को ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे गौएं गोस्वामी को प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ ३ १ ३ ३ १ २
अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ १ २ ३ १ ३ १ २
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥

(अस्य) इस शान्तस्वरूप परमात्मा के (प्रेषा हेमना) प्रेरक तेजोधर्म से—उपासक के अन्दर वर्तमान होने से (पूयमानः-देवः) यह साक्षात् किया जाता हुआ सोमदेव—शान्तस्वरूप परमात्मा (देवेभिः) इन्द्रियों के साथ "यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा 'इन्द्रियाणि' असन् वशे" [तै० आ० ३।१३।२] (रसं समपृक्त) अपने आनन्दरस को सम्पृक्त कर देता है (सुतः पवित्रं रेभन् पर्येति) वह निष्पन्न साक्षात् हुआ हृदयपात्र में परिपूर्ण हो जाता भर जाता है (होता) तब अध्यात्मयज्ञ का होता उपासक (पशुमन्ति-मिता सद्म-इव) गौ आदि पशुओं वाले 'मिता-मितानि'—पूर्ण—दुग्धघृत कामनापूर्ण 'सद्म-सद्मानि' घरों को जैसे गोस्वामी प्राप्त होते हैं ऐसे अपने इन्द्रियों वाले शरीर घर को प्राप्त हो जाता है ।

उपासक के अन्दर जब शान्तस्वरूप परमात्मा की प्रेरणात्मक तेजोमय झलक आती है तो उसके द्वारा शान्तस्वरूप परमात्मदेव साक्षात् हो उपासक की इन्द्रियों तक में भी केवल भोग की प्रवृत्ति ही नहीं किन्तु अपने अमृत आनन्दरस की धारा भी सम्यक् प्रवाहित कर देता है और उपासक के हृदयपात्र को तो अपने आनन्दरस से परिपूर्ण कर ही देता है तब उपासक ऐसा अनुभव करता है जैसे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी या पशुस्वामी अपने प्रशस्य गौ आदि वाले घरों काम-पूरक—दुग्धघृत भरे पात्र प्राप्त किये होता है ऐसे अपने आनन्द-रस भरी इन्द्रियों वाले देह घर को पाता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—प्रतर्दनः (पापाज्ञाननाशक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
३ १२ २र ३ १र २र ३ २ २ ३ १र २र
जनिताग्ने र्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥

(सोमः पवते) शान्तस्वरूप परमात्मा आनन्दधारारूप में उपासकों को प्राप्त होता है, वह (मतीनां जनिता) उपासकों के अन्दर मतियों—बुद्धियों का जनयिता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु (दिवः-जनिता) द्युलोक का जनयिता है (पृथिव्याः-जनिता) पृथिवीलोक का भी जनयिता (अग्नेः-जनिता) अग्नि का भी जनयिता (सूर्यस्य जनिता) सूर्य का जनयिता (इन्द्रस्य जनिता) विद्युत् का जनयिता है (उत) और (विष्णोः-जनिता) व्यापक आकाश वायु-सहित का जनयिता है।

शान्तस्वरूप परमात्मा उपासकों में मतियों बुद्धियों को उत्पन्न करता ही है उपासनाद्वारा, परन्तु समस्त जड़ देवों द्युलोक पृथिवी-लोक अग्नि सूर्य विद्युत् आकाशवायु को भी उत्पन्न करता है ॥५॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्विरत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वाणीः) 'वाण्यः' स्तुति प्रार्थना उपासनारूप वाणियां (त्रिपृष्ठम्) तीन पृष्ठ स्पर्शस्थानों वाले—वाक्-मन-आत्मा जिसके स्पर्श करने वाले हैं वाक् इन्द्रिय से स्तुति मन से प्रार्थना आत्मा से उपासना होने से वह त्रिपृष्ठ है "पृष्ठं स्पृशतेः" [निरु० ४।३] (वृषणम्) आनन्दवर्षक (वयोधाम्) अमृतप्राण धारण कराने वाले—"प्राणो वै वयः" [ऐ० १।२८] (अङ्गोषिणम्) अङ्ग अङ्ग में वसने वाले—नस नसवासी—'अङ्गे वसतीति-वस धातोः इनिः' "परमे कित् बाहुलकात् इनिः प्रत्ययः कित्" [उणा० ४।१०] सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अभि-अवावशन्त) पुनः पुनः चाहती हैं "वश कान्तौ" [अदादि०] (वना वसानः) जलों को आच्छादित किए हुए—घेरे हुए (वरुणः-न सिन्धुः) स्यन्दनशील वरुणालय—समुद्र के समान वरुण—वरुणालयः अकारो मत्वर्थीयश्छान्दसः "अर्श आदिभ्योऽच्" [अष्टा० ५।२।१२७] (रत्नधा) रत्नों—रमणीय भोगों का दाता सोम शान्तस्वरूप परमात्मा "रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमम्" [निरु० ७।१६] (वार्याणि) वरणीय अमृतधन भोगों को (विदयते) उपासकों के लिये विशेषरूप से देता है "विदयते-इति दानकर्मा" [निरु० ४।१७]।

स्तुति प्रार्थना उपासना ये तीनों तीन पृष्ठवाले—तीन स्पर्श-स्थान वाले—जिनसे परमात्मा को स्पर्श किया जावे ऐसे वाक् इन्द्रिय, मन और आत्मा हैं, वाक् इन्द्रिय से स्तुति मन से प्रार्थना आत्मा से उपासना होती है सो ये वाक्—इन्द्रिय, मन और आत्मा तीनों परमात्मा का स्पर्श करने वाले—आराधन स्थान आधार हैं ऐसे तीन पृष्ठ आधार वाले आनन्दवर्षक तथा अमर-जीवन धारण कराने वाले एवं अङ्ग अङ्ग में नस नस में वसने वाले अन्तर्यामी सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को ये स्तुति प्रार्थना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना पुनः पुनः चाहती हैं अतः उसकी पुनः पुनः स्तुति प्रार्थना उपासना करनी चाहिए, वह तो जैसे स्यन्दनशील सागर जलों को आच्छादित करता हुआ अपने अन्दर सम्भाले हुए रत्नों का देने वाला है ऐसे परमात्मा दयासागर दयास्नेहरूप जल से भरा रमणीय भोगों का देने वाला है ॥ ६ ॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्तिसम्पन्न काम आदि को अत्यन्त नष्ट करने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ ३ ३ १ र २ र २ ३
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ र २ र ३ १ र
वृषा पवित्रे अधिसानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो
२ र
अद्रिः ॥ ७ ॥

(भुवनस्य गोपाः) विश्व का रक्षक (समुद्रः) सम्यक् प्रसिद्ध सोम शान्तस्वरूप परमात्मा "समुद्रोऽवगतः सोमः" [तै० सं० ४।४२।९] (प्रजाः-जनयन्) प्रजन्यमान मनुष्य आदियों को उत्पन्न करता हुआ या करने को (प्रथमे विधर्मन्) प्रथित—विस्तृत—विविध आकार वाले जगत् में (अक्रान्) व्याप रहा है। वह (वृषा) सुखवर्षक (सानः) सम्भजनीय (बृहत्सोमः) महान् सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अद्रिः) आदरणीय तथा वेदज्ञान का आविष्कर्ता "अद्रय आदरणीयाः" [निरु० ९।६] "अद्रिरसि श्लोककृत्" [काठ० १।५] (अव्ये पवित्रे-अधि) जीवन के रक्षणस्थान प्राण और रक्त को प्रवाहित करने वाले हृदय के अन्दर "पवते गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (स्वानः) निष्पन्न किया हुआ (वावृधे) उपासक को बढ़ा चढ़ा अनुभव होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व का रक्षक मनुष्यादि को उत्पन्न करता हुआ या करने वाला सम्यक् प्रसिद्ध सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा प्रथित—विस्तृत विविध आकारवाले जगत् में व्याप रहा है, वह सुखवर्षक सम्भाजी महान् सोम्य शान्तस्वरूप परमात्मा आदरणीय तथा वेदज्ञान प्रदाता परमात्मा रक्षणीय हृदय—प्राण रक्त प्रेरक स्थान के अन्दर निष्पन्न—साक्षात् किया हुआ उपासक को बढ़ा चढ़ा अनुभव होता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी विद्वान्)

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २
कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
१ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥

(वनस्य जठरे पुनानः-हरिः) 'वनति सम्भजतीति वनः' सम्भजन करने वाले उपासक के मध्य—अन्दर "मध्यं वै जठरम्" [श० ७।१।१।२२] (आसृज्यमानः) समन्तरूप से साक्षात् किया जाता हुआ (पुनानः) उपासक को पवित्र करता हुआ (हरिः) दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता परमात्मा (कनिक्रन्ति) उपासक को उपदेश देता है (नृभिः) मुमुक्षुजनों द्वारा "नरो ह वै देवविशः" [जै० १।८९] (यतः) अभ्यस्त—अभ्यास में लाया हुआ (निर्णिजं कृणुते) यह अपने को शुद्धस्वरूप में 'आविष्कृणुते' प्रकट करता है (अतः) इसलिये हे मुमुक्षुजनों ! तुम (गां मतिं स्वधाभिः-जनयत) स्वध्यान धारणाओं से या स्वधारण शक्तियों से या आत्मभावनाओं से स्तुतिवाणी को उसके प्रति सम्पन्न करो ।

सम्भक्ति करने वाले उपासक के अन्दर परमात्मा समन्तरूप से साक्षात् किया जाता हुआ उपासक को पवित्र करता है तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता हो उपासक को उपदेश करता है, मुमुक्षुजनों द्वारा अभ्यास में लाया हुआ अपने शुद्धस्वरूप को आविष्कृत करता है अतः मुमुक्षुजन स्वधारण शक्तियों—आत्म-भावनाओं से उसके लिये स्तुति—उपासना समर्पित करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—उशना: (परमात्मा की कामना करने वाला उपासक)

३२क ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २उ ३क २र
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥६॥

(इन्द्र) हे उपासक आत्मन् ! (ते वृष्णः) तुझ ज्ञानशक्ति-वर्षक का (एषः-स्यः) यह वह (वृषा) ज्ञानवर्षक (मधुमान् सोमः) मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा (पवित्रे परि-अक्षाः) हृदय में परिरक्षित है—परिप्राप्त है (सहस्रदाः) सहस्रगुणफलदायक (शतदाः) उससे भी अधिक—लक्षगुण फलदायक (भूरिदावा) एवं लक्ष से भी अधिक कोटिगुणफलदायक—अपरिमितगुण-फलदायक है, वह (वाजी शश्वत्तमं बर्हिः-अस्थात्) अमृतभोग वाला धनी सदा एकरस रहने वाले नित्य अमृतधाम मोक्षधाम में "द्यौर्बर्हिः" [श० १२।८।२।२६] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] केवल स्वसत्ता से विराजमान है।

हे उपासक आत्मा तू शरीर में स्वचेतनाबल या स्वज्ञान का वर्षक है परन्तु तेरा भी आत्मज्ञानवर्षक या आत्मबलवर्षक वह मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा है जो उपासनाद्वारा हृदय में परिक्षरित होता है वह उपासना का फल सहस्रगुणित लक्षगुणित कोटिगुणित अपितु अपरिमितगुणितरूप में प्रदान करता है वह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतभोगों का स्वामी एकरस नित्य रहने वाले मोक्षधाम या केवल स्वरूप में रहता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों को नष्ट करने वाला उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधिसानो अव्ये ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (मधुमान्) मधुर-रसवाला (ऋतावा) अमृत वाला "ऋतममृतमित्याह" [जै० २।१६०] (अपः-वसानः) प्राणों को आच्छादित करता हुआ—सुरक्षित रखता हुआ "आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] (अव्ये-अधि) रक्षणीय हृदय मर्मस्थान में (सानः) सम्भजनीय होता हुआ (पवस्व) आनन्दधारा में प्राप्त हो (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षकारी (मत्सरः) हर्षभरा (इन्द्रपानः) उपासक आत्मा के पान करने योग्य हुआ (घृतवन्ति) तेजवाले तेजस्वी "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८] (द्रोणानि-अवरोह) प्राणों को—प्राणों की ओर अवरोहण कर "प्राणा वै द्रोणकलशः" [मै० ४।५।९]।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू मधुमय—अमृतस्वामी प्राणों को सुरक्षित रखता हुआ रक्षणीय हृदय मर्मस्थान में सम्भजनीय हुआ आनन्दधारा में प्राप्त हो अपितु अत्यन्त आनन्दप्रद हर्षभरा हुआ उपासक आत्मा के पान करने योग्य हो और तेजस्वी जीवन वाले प्राणों में अवतरित हो रहा ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम खण्ड

ऋषिः—प्रतर्दनः (काम आदि दोषों को नष्ट करने वाला उपासक)

१ २ ३ २र २ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
३ २ ३ १ २ ३१र २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
भद्रान् कृण्वन्निन्द्र हवाँत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

(शूरः) प्रगतिशील "शूरः शवतेर्गतिकर्मणः" [निरु० ४।१३] (सेनानीः) इन्द्रियगण—सेना का नेता प्रेरक मन (रथानाम्) शरीरथों के (गव्यन्) गौओं—इन्द्रियों को स्वानुकूल चाहता हुआ चलाता हुआ (अग्रे प्र-एति) आगे प्रबल हो चलता है पुनः (अस्य सेना हर्षते) इसकी इन्द्रियगण सेना अलीक हो जाती है—विषयप्रवृत्ति को त्याग देती है "हृषु अलीके" [भ्वादि०] तभी (सामः) शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्रहवान्) मन के आह्वानों —भावों को "यन्मनः स इन्द्रः" [गो० २।४।११] (भद्रान्) कल्याणरूप (कृण्वन्) करने—बनाने के हेतु (सखिभ्यः) मित्ररूप जीवन्मुक्त उपासकों के लिये मोक्ष में (रभसानि वस्त्रा) महान् विशाल "रभसः-महन्नाम" [निघं० ३।३] वस्त्रतुल्य आच्छादनों—रक्षणों को (आ) समन्तरूप से (दत्ते) देता है।

जब शरीररथ के इन्द्रिय घोड़ों का नेता मन उन्हें स्ववश चलाता है तो वे अलीक हो जाती हैं अपनी अपनी विषयव्यसनप्रवृत्ति को त्याग देती हैं तब शान्तस्वरूप परमात्मा मन के भावों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कल्याणरूप में सफल करता हुआ मित्ररूप मुमुक्षु उपासकों या जीवन्मुक्तों के लिये मोक्ष में वस्त्रतुल्य विशाल आच्छादनों—रक्षणों को समन्तरूप से देता है ॥ १ ॥

ऋषिः—शाक्त्यः पराशरः (शक्तिसम्पन्न कामक्रोध आदि को नष्ट करने वाला उपासक)

१ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र
प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत् पूतो अत्येष्यव्यम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२॥

(पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले सोम शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते) तेरी (मधुमतीः-धाराः) मधुवाली आनन्दधाराएं (प्र-असृग्रन्) छूट रही हैं (यत्) जबकि (पूतः) अध्येषित—ध्यान से प्रेरित हुआ "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघं० ३।२१] (अव्ये वारम्-अत्येषि) पार्थिव "इयं पृथिवी वा अविरियं हीमाः सर्वाः प्रजा अवति" [श० ६।१।२।३३] वारणसाधन शरीर को लाङ्घ जाता है—अन्दर आत्मा में चला जाता है तब (गोनां धाम पवसे) स्तुति करने वाले उपासकों के "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] अङ्ग—प्रत्येक अङ्ग को "अङ्गानि वै धामानि" [काश० ४।३।४ ११] तू आनन्दरूप में पहुंच जाता है (सूर्यं जनयन्) तेज को उत्पन्न करने के हेतु "तेजः सूर्यः" [मै० २।२।८] (अर्कैः-अपिन्वः) प्राणों के द्वारा—प्राणों में "प्राणो वा अर्कः" [श० १०।४।१।२३] सींच—अपना अमृतरस सींचता है ।

हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले शान्त परमात्मन् ! तेरी मधुमय आनन्दधाराएं छूट रही हैं बह रही हैं जबकि तू ध्यान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रेरित हुआ पार्थिववारण शरीर को लाङ्घ जाता है अन्दर आत्मा में पहुँच जाता है तब स्तुति करने वाले उपासकों के अङ्ग-अङ्ग के प्रति तू आनन्दरूप में पहुँच जाता है और तेज को उत्पन्न करने के लिये प्राणों में अपना अमृतरस सींचता है ॥ २ ॥

ऋषिः—इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाले से सम्बद्ध विद्युत् जैसी कान्तिवाला)

१ २ ३उ २र ३ १र २र ३ १र २र
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमꣳ हिनोत महते धनाय ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्वादुः पवतामति वारमव्यमासीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३॥

(देवान्) हे मुमुक्षुजनो ! "सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने शस्" (महते धनाय) महान् धन—मोक्षैश्वर्य प्राप्ति के लिये (सोमम्) शान्तस्वरूप परमात्मा को (प्रगायत) प्रकृष्टरूप से गाओ—स्तुति में लाओ (अभ्यर्चाम) उसे भली प्रकार अर्चित करो—उपासना में लाओ 'अत्र पुरुषव्यत्ययः' (हिनोत) प्रार्थित करो—प्रार्थना में लाओ । (स्वादुः-इन्दुः-देवः) मधुर स्वादवाला रस-भरा आर्द्र—शान्त परमात्मदेव (अव्यं वारम्-अति) पार्थित आवारक शरीर को अतिक्रमण करके (पवताम्) प्राप्त हो (कलशं सीदतु) कला—अङ्ग अङ्ग जिसके आश्रय में रहते हैं उसमें विराजमान हो जावे ।

मुमुक्षुजनो ! मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिये शान्त परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करो, इससे वह मधुर स्वादवाला रसीला परमात्मदेव पार्थिवदेह को लाङ्घकर अन्दर आत्मा में विराजमान हो जाता है ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र ३ १ २
प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजꣳ सनिषन्नयासीत् ।
३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गच्छन्नायुधा सꣳशिशानो विश्वावसु हस्तयोरादधानः
॥ ४ ॥

(प्रहिन्वानः) उपासकद्वारा प्रार्थना में आया हुआ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (रोदस्योः-जनिता) द्यावापृथिवीमय जगत् का उत्पादक (वाजं सनिषन्) उपासक के लिये अमृत अन्नभोग को देने की इच्छा के हेतु (रथः-न-अयासीत्) रथ की भांति चलता सा आता है (इन्द्रं गच्छन्) उपासक आत्मा के प्रति प्राप्त होता है (आयुधा संशिशानः) उपासक के योगाभ्यासरूप आयुधों—शस्त्रों को जिनसे काम आदि का शमन होता है उन्हें तीक्ष्ण करता हुआ (विश्वावसु) समस्त वसाने वाले साधनों को (हस्तयोः-आदधानः) मानो हसाने हर्षाने वाले दया और प्रसादरूप हाथों में लेकर प्राप्त होता है ।

द्युलोक से पृथिवीलोक तक समस्त जगत् का उत्पादक शान्त-स्वरूप परमात्मा उपासक द्वारा प्रार्थित हुआ उसे अमृत अन्नभोग देने की इच्छा के हेतु उससे भरे रथ की भांति उपासक को प्राप्त होता है, काम क्रोध नाशक उसके योगाभ्यास शस्त्रों को तीक्ष्ण करता हुआ तथा समस्त वसाने वाले साधनों को अपने दया और प्रसादरूप हाथों में लेकर प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—मृडीकः (परमात्मा की स्तुति से पूजा करने वाला †)

† "मृडयति पूजाकर्मा" [निरु० १०।१६]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र
तत्त्वद् यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य धर्मन् द्युक्षोरनीके ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥

(यदी 'यद्-ई') जब ही (वेनतः-मनसः) कामना करते हुए "वेनति कान्तिकर्मा" [निघं० २।६] मनस्वी—ध्यानीजन—"मतुबर्थप्रत्ययस्य लोपश्छान्दसः" (ज्येष्ठस्य) श्रेष्ठ—(द्युक्षोः) परमात्मप्रकाश में रहने वाले के (धर्मन्-अनीके) स्तुतिधारक मुख में वर्तमान (वाक्) जपरूप वाणी (तत्त्वत्) शान्त परमात्मा का संवरण करती है—अपनाती है "तक्ष त्वचने" [भ्वादि०] (आत्) अनन्तर (ईम्) इस (वरम्) वरणीय—(जुष्टम्) सेवनीय—(पतिम्) पालक—(इन्दुम्) आर्द्र—रसीले परमात्मा को (आवावशानाः) बहुत चाहते हुए (गावः) स्तोता जन "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] (कलशे) कलशयनस्थान हृदय में (आयन्) समन्तरूप से प्राप्त होता है "जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्" [अष्टा० १।२।५८] ।

जब ही परमात्मा की कामना करते हुए परमात्मप्रकाश में रहने वाले श्रेष्ठ—पवित्र सद्गुणसम्पन्न मननशील ध्यानीजन के मुख में जपरूप वाणी परमात्मा का संवरण करती है—अपनाती है तुरन्त ही उस वरणीय पालक रसीले परमात्मा का अत्यधिक कामना करने वाले स्तोता उसे अपने हृदय में प्राप्त करते है ।।५।।

ऋषिः—नोधाः (नवन—स्तवन को धारण करनेवाला उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ ३ १ २
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ १२ ३ १२ ३ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ २
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६॥

(धीरस्य) ध्यानवान्—ध्यानी की "धीराःप्रज्ञानवन्तो ध्यानवन्तः" [निरु० ४।९] (धनुत्रीः) प्रेरित करने वाली "धन्वति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] "धवि गत्यर्थः" [भ्वादि०] 'छान्दसं रूपं तृजन्तम्' (धीतयः) प्रज्ञाएं "ऋतस्य धीतिः⋯ऋतस्य प्रज्ञा" [निरु० १०।४०] अथवा ध्यानयोग क्रियाएं "धीतिभिः-कर्मभिः" [निरु० ११।१६] (साकम्-उक्षः) एकसाथ सींचाने वाली—ध्यान में तृप्त करने वाली (दश स्वसारः) ध्यानी को परमात्मा में सु—सम्यक् फेंकने वाली दश इन्द्रियां सम्बन्धीसंयत प्रज्ञाएं या क्रियाएं "स्वसा-सु-असा" [निरु० ११।३२] (मर्जयन्त) धीर—ध्यानवान् को परमात्मा में पहुँचाती हैं "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२।४३] (हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत्) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता शान्त परमात्मा अपनी ओर सरणशील योगी की उद्भूत भावनाओं के प्रति "सोऽयं सोऽयं इत्यायन्-सोऽयं ह वै नामैष तं सूर्य इति परोक्षमाचक्षते" [जै० ३।३५७] परिद्रवित हो जाता है, पुनः (अत्यः-न वाजी द्रोणं ननक्षे) निरन्तर गमनशील घोड़े की भांति हृदयसदन में प्राप्त हो जाता है घोड़ा जैसे अन्त में तबेले में आ जाता है।

ध्यानवान् योगी की प्रेरिका प्रज्ञाएं एवं ध्यान क्रियाएं एकसाथ उसे तृप्त करती हुई परमात्मा की ओर प्रेरित करती हुई तथा दशों इन्द्रियों की संयत प्रज्ञाएं या क्रियाएं भी परमात्मा की ओर ले जाती हैं, पुनः दुःखापहर्ता सुखाहर्ता परमात्मा भी सरणशील उपासक आत्मा की उद्भूत भावनाओं के प्रति पूर्ण द्रवित हो जाता है अन्ततः वह निरन्तर गमनशील घोड़े की भांति हृदयसदन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ऐसे प्राप्त हो जाता है जैसे घोड़ा अपने तबेले में सहजस्वभाव से पहुँच जाता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—घौरः कण्वः (स्तुति भाषण कुशल मेधावी)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ ३ १ ३ १र २र
अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभ स्पर्द्धन्ते धियः सूरे न विशः ॥
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ १ २
अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुं वर्धनाय मन्म ॥७॥

(यत्) 'वाक्यारम्भे' कि (अस्मिन्-अधि) इस सोम—शान्त परमात्मा में अधिष्ठित हुई (धियः) उपासक की ध्यानवृत्तियां "धीरसीत्याह यद्धि मनसा ध्यायति" [तै० सं० ६।१।७।४-५] "धीराः-ध्यानवन्तः" [निरु० ४।९] (स्पर्द्धन्ते) सङ्घृष्ट होती हैं—होड़ करती हैं (वाजिनि-इव शुभः) घोड़े पर जैसे शोभाएं—भूषाएं कि मैं अधिक भूषित करती हैं, (सूरे न विशः) अथवा सूर्य उदय होने पर जैसे मनुष्य आदि प्रजाएं मैं आगे बढ़ूं—मैं अच्छा कर्म करूं "सजूः सूर्य एतशेनेति सूर्यमेव पृणाति" [मै० ३।४।४] अपने अपने कार्य की दौड़ में स्पर्द्धा करती हैं (कवीयान्-अपः-वसानः पवते) मेधावी उपासकों को चाहने वाला परमात्मा प्राणों को आच्छादित करता हुआ आनन्दधारा में पहुँचाता है (व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म) जैसे पशुसदन के प्रति पशुवृद्धि के लिये पशुपालक का मन रहता है "मे धायि मन्म मे मनोऽध्यायि" [निरु० ६।२२]।

जबकि इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा में अधिष्ठित उपासक की ध्यानवृत्तियाँ स्पर्द्धा करती हैं बढ़ बढ़कर प्रभाव करती हैं जैसे घोड़े के ऊपर भांति भांति की भूषाएं—सजावटें उसे अधिकाधिक सजाती हैं या जैसे सूर्य के उदय होने पर मनुष्य आदि प्रजाएं मैं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़कर कार्य करूं, उपासक को चाहने वाला परमात्मा प्राणों को सुरक्षित रखता हुआ आनन्दधारा में उपासक को प्राप्त होता है पशुसदन के प्रति जैसे पशुपाल का मन पशुधन की वृद्धि के लिये चला जाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—वासिष्ठो मन्युः (परमात्मा में अत्यन्त बसने वाले से सम्बद्ध परमात्मा की अर्चना—स्तुति करने वाला †)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥८॥

(वृजनस्य राजा) बल—बलवान् का स्वामी या बलवानों में राजमान—प्रसिद्ध "वृजनं बलम्" [निघं० २।९] (वाजी) वाजवान्—अमृत अन्नभोग प्रदाता "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (इन्दुः) रसीला (सोमः) शान्त परमात्मा (इन्द्रे) उपासक आत्मा के निमित्त (मदाय) हर्ष—आनन्द प्राप्ति के लिये (सहः-इन्वन्) आत्मबल को प्रेरित करता हुआ (गोन्योघाः) 'गाः स्तुतीः-निधाय-ओघः 'स्' प्रवाहो यस्य सः' स्तुतियाँ निर्धारित कर वाह वहाव जिसका है वह ऐसा (पवते) आनन्दधारा में प्राप्त होता है (वरिवः-कृण्वन्) वररूप धन—स्वरूपदर्शन मोक्षैश्वर्य प्रसाद को प्रदान करने के हेतु (रक्षः-हन्ति) जिससे रक्षा करनी चाहिए ऐसे क्रोध को नष्ट करता है (अरातिं परिबाधते) न देने वाले अपितु उसके विपरीत लेने वाले—आत्म तेजबल का शोषण करने वाले मोह शोक को तिरस्कृत करता है अलग करता है ।

† "मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब प्रकार के बलों का स्वामी रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा अपने उपासक के निमित्त आनन्द प्राप्त कराने के लिये उसमें आत्मसात् करने को सहनशक्ति—आत्मबल प्रेरित करता हुआ स्तुतियों को लक्ष्य कर अपने आनन्दप्रवाह को बहाने वाला आनन्दधारा में प्राप्त होता है और वररूप में स्वरूपदर्शन मोक्षैश्वर्य आत्मप्रसाद को प्रदान करता है, काम क्रोध आदि पाप को नष्ट कर जीवन के शोषक दोष को दूर करता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतिकर्ता उपासक †)

१ २ ३ २ २ ३ १२ २१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्रधन्व ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
ब्रध्नश्चिद् यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्
॥ ९ ॥

(इन्दो) हे रसीले शान्त परमात्मन् ! तू (अया पवा) इस बहनेवाली धारा से (एना वसूनि पवस्व) इन अध्यात्मधनों को प्रवाहित कर, अतः (मांश्चत्वे सरसि प्रधन्व) मननीय याचनीय प्रापणीय सरोवर में पहुँचा (ब्रध्नः-चित्) तू महान् भी "ब्रध्नो महन्नाम" [निघं० ३।३] (पुरुषमेधाः-चित्) अत्यन्त सङ्गमनीय भी है (यस्य) जिस—आपकी (जूतिम्) गति को (वातः-न) 'वातस्य' वात की गति के समान गति को (नरम्) और तुझ नेता परमात्मा को (तकवे) आत्मगति—मोक्षप्राप्ति के लिये "तकति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (धात्) उपासक आत्मा धारण करता है ।

हे रसीले शान्त परमात्मन् ! तू इस बहने वाली आनन्दधारा

† "कुत्स ऋषि र्भवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३।११]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इन अभी अध्यात्मधनों को प्रवाहित कर, माननीय और प्राप-णीय स्वस्वरूप सरोवर में उपासक को पहुंचा, तू महान् भी है अत्यन्त सङ्गमनीय भी है, तेरी गति जो प्रबल वायु की गति के समान है उसे तथा तुझ नेता शान्त परमात्मा को आत्मगति—मोक्षप्राप्ति के लिये उपासक धारण करता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—पराशरः शाक्त्यः (शक्तिसम्पन्न अत्यन्त पापनाशक उपासक)

३ १र २र ३ १ २ २ ३ १र २र ३ २
महत्तत् सोमो महिषश्चकारापां यद् गर्भोऽवृणीत देवान् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥

(महिषः सोम) महान् "महिषो महन्नाम" [निघं० ३।३] शान्तस्वरूप परमात्मा ने (तत्-महत्-चकार) उस महत्त्वपूर्ण कर्म को किया है (यत्-अपां गर्भः) जो व्यापनशील परमाणुओं का गर्भ—हिरण्यगर्भ या गर्भरूप समष्टि जगत् है—उसे व्यक्त किया (देवान्-अवृणीत) आरम्भसृष्टि के आदि देवों—अग्नि आदि साङ्कल्पिक वैदिक ऋषियों को वेदज्ञान प्रदान कर वरा—अपनाया (पवमानः) उस आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले पर-मात्मा ने (इन्द्रे-ओजः-अदधात्) उपासक आत्मा के अन्दर आत्मबल—आत्मानुभूतिरूप ज्ञान को धरा—स्थापित किया (इन्दुः) शान्त दीप्तिमान् परमात्मा ने (सूर्ये ज्योतिः-अजनयत्) सूर्यपिण्ड में ज्योति को उत्पन्न किया ।

महान् शान्तस्वरूप अनन्त परमात्मा ने वह यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया कि व्यापनशील परमाणुओं में हिरण्यगर्भ समष्टि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् जो अव्यक्त था उसे व्यक्त किया, पुनः आदि सृष्टि के अग्नि आदि वैदिक ऋषियों को वेदज्ञान का प्रकाश देकर अपनाया, आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले परमात्मा ने उपासक आत्मा के अन्दर आत्मबल—स्वात्मानुभूति को जागृत किया तथा सूर्यपिण्ड में ज्योति को उत्पन्न किया है ॥ १० ॥

ऋषिः—कश्यपः (परमात्मदर्शी उपासक †)

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा।
३ १ २ ३ २ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ
॥ ११ ॥

(यथा) जिस विधि से—यथाविधि (रथ्ये-आजौ) रमणीय सुखविषयक महान् पद में "परमं वा एतन्महो यदाजिः" [जै० २।४०५] (वक्वा) कल्याणवक्ता परमात्मा (असर्जि) ध्यानी उपासकद्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है, सो (धिया) ध्यानक्रिया से प्रेरित (प्रथमा मनोता) श्रेष्ठ वाक् स्तुति "वाग्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि" [ऐ० २।१०] तथा (मनीषा) प्रज्ञा "मनीषया प्रज्ञया" [निरु० ९।१०] और (दश स्वसारः) दश इन्द्रियों सम्बन्धी सु—असा—भली प्रकार परमात्मा की ओर फेंकने—प्रेरित करने वाली संयतवृत्तियां (अव्ये सानोः-अधि) योगभूमि के ऊंचे पद पर (वह्निम्) उपासकों के वहनकर्ता—मोक्ष में लेजाने वाले परमात्मा को (सदनेषु) हृदयप्रदेशों में (अच्छ मृजन्ति) सम्यक प्राप्त कराती हैं "मर्जयन्त गमयन्त" [निरु० १२।४३]।

† "कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्" [तै० आ० १।८।८]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे कि रमणीय सुखविषयक महान् पद—मोक्ष के निमित्त कल्याणवक्ता परमात्मा ध्यानी उपासकोंद्वारा हृदय में साक्षात् किया जाता है, सो ध्यानक्रिया से प्रेरित स्तुति, प्रज्ञा और दशों इन्द्रियों की संयतवृत्तियां उस योग्यभूमि के ऊंचे पद पर उपासकों के वहनकर्ता—मोक्ष में लेजाने परमात्मा को हृदयप्रदेशों में सम्यक् प्राप्त करती हैं ॥ ११ ॥

ऋषिः—प्रस्कण्वः (अत्यन्त मेधावी उपासक)

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ २ १ २
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥

(अपां तर्तुराणाः-ऊमर्यः-इव-इत्) जलस्रोतों की शीघ्र लहराती—फरकती हुई तरङ्गों की भांति ही (मनीषाः) उपासक की प्रज्ञाएं – ध्यानवृत्तियां (सोमम्-अच्छ) प्राप्तव्य शान्तस्वरूप परमात्मा की ओर (प्र-ईरते) उपासक को प्रेरित करती हैं, पुनः (च) और वे (नमस्यन्तीः-उपयन्ति) नमती हुई परमात्मा को प्राप्त होती हैं (उशन्तीः-उशन्तम्) चाहती हुई चाहते हुए को— में (संविशन्ति) संवेश करती हैं (च) और (आविशन्ति च) आविष्ट होती भी हैं ।

जलस्रोतों की शीघ्र फरकती हुई तरङ्गों की भांति उपासक की ध्यानवृत्तियां उपासक को परमात्मा की ओर प्रेरित करती हैं जो परमात्मा की ओर नमती हुई उस चाहते हुए परमात्मा को चाहती हुई उस तक पहुँचती हैं और उसमें स्थायी आश्रय भी ले लेती हैं ॥ १२ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम खण्ड

ऋषिः—श्यावाश्वः (निर्मल इन्द्रिय घोड़ों वाला संयमी उपासक)

छन्दः—१—६ अनुष्टुप् ।

३ १ ३ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
पुरो जिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।

३ १२ १ २ ३क २र
अप श्वान ँ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥

(सखायः) हे उपासक मित्रो ! (वः) 'यूयम् विभक्ति व्यत्ययः' तुम (पुरोजिती) पुरः—संघर्ष संग्राम से पूर्व ही जिति—जय—अधिकार जिसका है उस प्रथम से सर्वस्वामी "सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छे....." [अष्टा ७।१।३९] (अन्धसः) आध्यातीय शान्त परमात्मा के (मादयित्नवे सुताय) हर्षजनक निष्पन्न—साक्षात्कार करने योग्य के लिये (दीर्घजिह्व्यम्) आयु—जीना ही रस—भोग लक्ष्य जिसका है ऐसे—"आयुर्वैदीर्घम्" [तां० १३।११।१२] 'जिह्वया ग्राह्यो जिह्व्यो रसो रसभोगः' (श्वानम्) कुत्ते के समान को 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' (अपश्नथिष्टन) नष्ट करो "श्नथतिः-वधकर्मा" [निघं० २।१९] "जहि श्वयातुम्" [ऋ० ७।१०४। १२२] ।

उपासक जनो ! तुम प्रथम से ही संघर्ष संग्राम की अपेक्षा न करते हुए सबके स्वामी सर्ववशी समन्तरूप से ध्यान करने योग्य परमात्मा के आनन्दकारी साक्षात्कार के लिये अपने अन्दर से जीनेमात्र को भोग बनाने वाले कुत्ते सदृश काम भाव को नष्ट करो ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—ययातिर्नाहुषः (जीवन्मुक्त होने में जीवनयात्री उपासक)

३ २ ३ २ ३ १ २ उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यत् रोदसी उभे ॥ २ ॥

(अयं सोमः) यह शान्त परमात्मा (उभे रोदसी व्यख्यत्) द्युलोक और पृथिवीलोक को ऊपर नीचे सीमाओं को प्रसिद्ध करता है (विश्वस्य भूमनः पतिः) उनमें होने वाले जगत् का स्वामी है, तथा (पूषा) पोषक—पालक (रयिः) रयिमान्—धनवान्—भोगरूप धनदाता 'मतुब्लोपश्छान्दसः' (भगः) भजनीय—आश्रयणीय (पुनानः-अर्षसि) आत्मा को निर्मल करता हुआ आता है ।

यह शान्त परमात्मा विश्व के द्युलोक पृथिवीलोकरूप सीमाओं को प्रसिद्ध करता है उनमें रहने वाले जगत् का स्वामी है तथा सबका पोषक यथा योग्य रक्षक है, वह मोक्षधन का दाता है आश्रयणीय और पवित्रकर्ता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥

(सुतासः) 'अत्र मन्त्रयोर्बहुवचनमादरार्थम्' निष्पादित—साक्षात् किया (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मीठा (मन्दिनः) हर्षभरा (सोमासः) शान्तस्वरूप परमात्मा (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (पवित्रवन्तः) हृदयस्थ प्राणापानवाला "प्राणापानौ पवित्रे"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[तै० सं० ३।२।४।४] (अक्षरन्) आनन्दधारारूप में प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार (वः) तेरे (मदाः) हर्षप्रवाह (देवान् गच्छन्तु) इन्द्रियों को प्राप्त हों।

साक्षात् किया हुआ अत्यन्त मधुर हर्षभरा शान्तस्वरूप परमात्मा उपासक आत्मा के लिये हृदयस्थ प्राणापानवाला आनन्दधारा में प्राप्त हो रहा है इस प्रकार परमात्मन्! तेरा हर्षप्रवाह इन्द्रियों को भी प्राप्त हो रहा है ॥ ३ ॥

ऋषिः—मनुः संवरणः (परमात्मा को अपने अन्दर धारण करने में कुशल मननशील)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥

(गातुवित्तमाः) गमन—ज्ञान को अत्यन्त प्राप्त कराने वाला "गातुं यज्ञाय गमनं यज्ञाय" [निरु० ४।२१] "पूर्वेषामपि गुरुः⋯⋯" [योग० १।२६] (अरेपसः) अनवद्यवचनवाला यथार्थ वक्ता "रेपः—अवद्यं वचः" [उणा० ४।१९०] (स्वाध्यः) सम्यक् समन्त रूप से ध्यान करने योग्य (स्वर्विदः) सुख—मोक्षसुख को प्राप्त करानेवाला (मित्राः) प्रेरक स्नेही (इन्दवः) अध्यात्मरसभरा (सोमाः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पवन्ते) आनन्दधारा में प्राप्त होता है।

अत्यन्त ज्ञान प्राप्त करानेवाला, अयुक्तवचनरहित यथार्थ वक्ता सम्यक् सर्वथा ध्यान करने योग्य मोक्षसुख का प्रापक प्रेरक स्नेही अध्यात्मरसभरा परमात्मा हमारे लिये आनन्दधारा में प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—अम्बरीषऋजिश्वनावृषी (अध्यात्मान्नग्राहक और ऋजुधर्मवान्—उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभी नो वाजसातम ँ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युमनं वि भासहम् ॥ ५ ॥

(इन्दो) हे अध्यात्मरसभरे परमात्मन् ! तू (नः) हमारे प्रति (वाजसातमम्) अत्यन्तबलसम्भाजक—(शतस्पृहम्) बहुत स्पृहणीय—(सहस्रभर्णसम्) बहुतभरणकर्ता—(तुविद्युम्नन्) बहुत यशस्कर—(विभासहम्) बड़े बड़े प्रकाश के प्रसहनकर्ता—अकिञ्चित् करने वाले—(रयिम्) मोक्षैश्वर्य को (अभि-अर्ष) प्रेरित कर।

हे अध्यात्मरस बरसाने वाले परमात्मन् ! तू हमारे और अत्यन्त बलसम्भाजक बहुतभरणकर्ता बहुत यशस्कर बडे प्रकाशक को भी सहने—स्वाधीन रखने वाले मोक्षैश्वर्य को प्रेरित-कर ॥ ५ ॥

ऋषिः—रेभसूनू काश्यपावृषी (ज्ञानी गुरु से सम्बद्ध स्तुति प्रेरित करनेवाले दो परमात्मोपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र १ २
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
३ २उ ३ १र ३१ १ ३ १ २
वत्सं न पूर्व आयुनि जातँ रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥

(मातरः) माताएं (जातं वत्सं न) उत्पन्न पुत्र को जैसे (पूर्व-आयुनि) 'पूर्वे' पूर्वस्मिन् 'सर्वनामसंज्ञाभावश्छान्दसः' प्रथम आयु में—बाल्यकाल में "छन्दसीणः" [उणा० १।२[

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'उणप्रत्ययोत्—उकारान्तः—आयुशब्दः' (रिहन्ति) 'लिहन्ति' चूमती हैं या स्नेह स्वागत करती हैं "रिहति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] ऐसे (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी आत्मा के (प्रियं काम्यम्) प्यारे कमनीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को (अद्रुहः) उससे द्रोह न करने वाले अपितु स्नेह करने वाले उपासकजन (अभिनवन्त) उसकी ओर अभिगमन करते हैं आकर्षित होते हैं "नवते गतिकर्मा" [निघं० २।१४]।

माताएं जैसे उत्पन्न पुत्र को बाल्यकाल में चूमती हैं या स्नेह स्वागत करती हैं वैसे ही आत्मा के प्रिय कमनीय परमात्मा को स्नेह करने वाले उपासकजन उसकी ओर आकर्षित होते हैं उसे आलिङ्गन करते हैं ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

छन्दः—बृहती ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ ३ २१र २र ३ १ २
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७॥

(विपाम्-अग्रे) मेधावी जनों के "विपो मेधाविनः" [निघ० ३।१५] आगे रहने वाले, (शुक्राः) शुद्ध—निष्पाप (महीयुवः) महती मोक्षपदवी के चाहनेवाले मुमुक्षुजन (धृष्णवे) पापभाव को धर्षित करने वाले—(हर्यताय) कमनीय परमात्मा के लिये—उसके आनन्द प्राप्त करने के लिये (पौंस्यं धनुः-आतन्वन्ति) पौरुष—बलयुक्त "पौंस्यं बलम्" [निघं० २।९] प्रणव—'ओ३म्' नाम धनुष को समन्तरूप से तानते हैं "प्रणवो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्" [मुण्ड० २।२।४] (असुराय निर्णिजे) प्राणदाता शुद्ध-स्वरूप में लाने वाले शान्त परमात्मा के लिये (वियन्ति) विशेष याचना और प्रार्थना करते हैं "यन्ति याचनाकर्मा" [निरु० ३।१९]।

मोक्षपदवी के इच्छुक मुमुक्षु उपासकजन पापभावों को मिटाने वाले कमनीय शान्त परमात्मा की प्राप्ति के लिये—उसके आनन्द-रस पाने के लिये प्रणव—ओ३म् नामक बलवान् बलिष्ठ धनुष—ओ३म् जप को समन्तरूप से तानते हैं अर्थभावन के साथ "तज्जपस्तदर्थभावनम्" [योग० १।२८] प्राणप्रद निजशुद्धस्वरूप में लाने वाले परमात्मा के लिये विशेष प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥

ऋषिः—ऋजिश्वाम्बरीषावृषी (ऋजुगामी इन्द्रिय घोड़ों वाला और हृदयाकाश में परमात्मा को प्राप्त करने वाला)

छन्दः—८, ९ अनुष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यꣳ हर्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।

३ १ ३ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
यो देवान् विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥८॥

(त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुम्) उस कमनीय दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्त परमात्मा को "सोमो वै बभ्रुः" [श० ७।२।४।२६] (वारेण पुनन्ति) वारण करने के साधन मन से संस्कृत करते हैं (यः) जो कि (मदेन सह) अपने हर्ष—आनन्द के साथ (विश्वान् देवान्) सब इन्द्रियों को (इत्) ही (परिगच्छति) परिप्राप्त होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासकजन उस कामनायोग्य दुःखापहरणकर्ता सुखाहरण-कर्ता शान्तस्वरूप परमात्मा को वरणसाधन—मन से संस्कृत करते—निश्चय कर अपनाते हैं जो समस्त इन्द्रियों को अपने आनन्द से परिप्राप्त होता है ॥ ८ ॥

ऋषिः—प्रजापतिर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध निज इन्द्रियों का पालक रक्षक संयमी उपासक)

प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसँ हता मखं न भृगवः ॥९॥

(अन्धसः) आध्यानीय—आराधनीय शान्तस्वरूप परमात्मा को (प्रसुन्वानाय) प्रसिद्ध करने—साक्षात् करने वाले मुमुक्षु का "षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या" (तद्वचः) परमात्मविषयक वचन (मर्त्तः) जो मनुष्य (न वष्ट) "अवष्ट'-छन्दस्यमाङ्-योगेऽपि-अडभावः" नहीं चाहता है अपितु निन्दक नास्तिक नास्तिकभाव से अनादर करता है (अराधसं श्वानम्-अपहत) उस राधना—उपासना न करने वाले अपितु कृतघ्न या कुत्ते के समान कामभाव को नष्ट करो (मखं न भृगवः) ज्ञानाग्नि से जाज्वल्यमान आत्मा जिनका हो ऐसे ज्ञानीजन "भृगु भृज्यमानो न देहे" [निरु० ३।१७] मख—ज्ञानरहित गतिकर्म "मख गत्यर्थः" [भ्वादि०] को जैसे दूर करते हैं ऐसे करें।

आध्यानीय—आराधनीय शान्त परमात्मा ने साक्षात् करने वाले मुमुक्षु उपासक के परमात्मसम्बन्धी उपदेश को जो नहीं सुनना चाहता है अपितु विरोध करता है उस ऐसे नास्तिक एवं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामी या कामभाव को कुत्ते के समान अलग कर दें जैसे ज्ञानीजन ज्ञानहीन कर्म को अपने से अलग कर देते हैं ॥ ९ ॥

नवम खण्ड

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी ज्ञानी उपासक)

छन्दः—जगती ।

३ २ ३१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ २र ३ २ ३
अभि प्रियाणि पवते चनो हितो नामानि यह्वो अधि येषु
१ २ १र २र ३ २ ३२उ ३ २ ३ १ २
वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विश्वञ्चमरुहद्
३ २
विचक्षणः ॥ १ ॥

(चनः-हितः) अन्नों—भोज्यपदार्थों में नितान्त हितकर या नितान्त हितकर भोगने योग्य स्वादुपदार्थ सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा आध्यात्मिक अन्न है "चन इत्यन्ननाम" [निरु० ६।१५] (प्रियाणि नामानि-अभि पवते) जो अपने ओ३म्, भू, आदि प्रिय नामों को लक्ष्य बना उपासक की ओर आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है "नामानि नामयन्ति-इदमपीतरन्नामैतस्मादेवाभिसन्नामात्" [निरु० ४।२७] नाम पदार्थ के स्वरूप को नमाते जनाने वाले होते हैं (येषु यह्वः-अधिवर्धते) जिन नामों में महागुण वाला परमात्मा "यह्वः-महन्नाम" [निघं० ३।३] उपासनाद्वारा प्रवृद्ध होता है—साक्षात् होता है (बृहन् विचक्षणः) विशेष साक्षात् करने वाला जीवन्मुक्त महान् उपासक (बृहतः सूर्यस्य) महान् प्रकाशमान एवं सरणीय प्राप्तव्य परमात्मा के (विश्वञ्चं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथम्) सर्वत्र वर्तमान आनन्दरसधाम को "तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते" [गो० १।२।११] "रथो···रसते र्वा" [निरु० ९।११] (आरुहत्) आरोहण करता है—अधिष्ठित होता है।

उपासक का हितकर सेवनीय सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा है, वह आध्यात्मिक अन्न होने से नितान्त हितकर है, भौतिक अन्न तो हितकर और अहितकर भी होता है, किन्तु आध्यात्मिक अन्न परमात्मा तो अमृत है। यह अपने स्वरूप को उपासक के प्रति नमाने वाले—साक्षात् कराने वाले ओ३म्, भू आदि नामों द्वारा उपासक को आनन्दधारा में प्राप्त होता है, जिन नामों में महागुणवान् परमात्मा का स्वरूप वर्तमान है उनके अनुसार साक्षात् होता है वह महान् प्रकाशमान प्राप्त करने योग्य परमात्मा महान् विशेषद्रष्टा जीवन्मुक्त द्वारा यथार्थ साक्षात् होता है सर्वगत आनन्दरसधाम में अधिष्ठित है ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिदश्नाना इषयो अरातयो ऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु
३ १ २
नो धियः ॥ २ ॥

(हरयः-इन्दवः) 'बहुवचनमादरार्थम्' दुःखापहरणकर्ता सुखाहरणकर्ता आनन्दरसभरा सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (अचोदसः) स्वेच्छा से प्रेरित कृपालु हुआ (स्वानासः) निष्पन्न—साक्षात् हुआ (नः) हम मुमुक्षुओं को (बृहद्देवेषु) महान् देवों—जीवन्मुक्तों में (प्र धन्वन्तु) पहुंचावे—जीवन्मुक्त बनावे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्) अपितु (नः) हमारे (अश्नानाः) भोगने वाले (इषयः) एषणाएं—इच्छाभाव (अरातयः) सुख न देने वाले अपितु दुःख देने वाले (अर्यः) अरि—शत्रुरूप (विसन्तु) विगत हो जावें—पृथक् हो जावें (नः) हमें (धियः) ध्यान प्रज्ञाएं (सनिषन्तु) सम्भजती रहें—सम्यक् निरन्तर प्राप्त होती रहें।

दुःखापहर्ता सुखाहर्ता आनन्दरसभरा स्वेच्छा से प्रेरित कृपालु परमात्मा साक्षात् हुआ हम मुमुक्षु उपासकों को ऊंचे देवों—जीवन्मुक्तों में पहुँचा दे—जीवन्मुक्त बनादे, अपितु हमारे भोगने वाले एषणाएं—दुःख देने वाले इच्छाभाव एवं दुःख देने वाले शत्रुजन पृथक् हो जावें, और हमें ध्यान प्रज्ञाएं सम्यक् भजती रहें निरन्तर चलती रहें ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः।
३ २ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १ २
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च
३ १ २
धेनवः ॥ ३ ॥

(एषः) यह (मधुमान्) मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा (कोशे) हृदयकोष्ठ में (प्र-अचिक्रदत्) प्रकृष्टकथन—आन्तरिक प्रवचन करता है (इन्द्रस्य) उपासक आत्मा का (वज्रः) पाप से वर्जन कराने वाला ओज है "वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः" [निरु० ३।११] "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (वपुषः-वपुष्टमः) बीजबोने वाले उत्पादक आत्मा का भी प्रशस्त बीज-बोने वाला उत्पादक है (ऋतस्य) उस अमृतस्वरूप परमात्मा की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऋतसमृतमित्याह" [जै० २।१६०] (सुदुघः) सुदोहन योग्य (घृतश्चुतः) तेज चुआने वाली आनन्दधाराएं (अभि-अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं (पयसा च वाश्राः-धेनवः) 'लुप्तोपमावाचकालङ्कारः' जैसे दुधारी गौवें रम्भा शब्द करती हुई दूध देने के कारण से प्राप्त हो रही हों।

यह मधुर शान्तस्वरूप परमात्मा हृदयकोष्ठ में प्रवचन करता हुआ प्राप्त होता है, उपासक को पाप से बचानेवाला ओज अध्यात्मबलप्रद और पिता का भी पिता परमपिता है इस अमृत-स्वरूप की अच्छी दोहने वाली अमृतधाराएं तेज को झिराती हुई प्राप्त होती हैं जैसे दूध देने के कारण रम्भाती हुई गौवें प्राप्त हुआ करती हैं ॥ ३ ॥

ऋषिः—ऋषिगणः (ऋषियों में ऊंचा गणना में आने वाला)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३१र
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं॑ सखा सख्युर्न प्र
२र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मिनाति सङ्गिरम्। मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः
३ १ २ ३ १ २ २
कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥

(इन्दुः सोमः) रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा (सखा) समानख्यान—समानधर्मी मित्र (इन्द्रस्य सख्युः) समानधर्मी मित्र उपासक आत्मा के (निष्कृतम्) संस्कृत—वासनारहित अन्तःकरण को "निर्-इत्येष सम्-इत्येतस्य स्थाने" [निरु० १२।८] "यद् वै निष्कृतं तत्संस्कृतम्" [ऐ० आ० १।१।४] (उ) अवश्य (प्र-अयासीत्) प्राप्त होता है (सङ्गिरं न प्रमिनाति) सङ्गवाले स्थान—हृदय को नष्ट नहीं करता है किन्तु (कलशे) उस कल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल शब्द शयनवाले स्थान में (शतयामना पथा समर्षति) बहुत गतिक्रमवाले मार्ग से प्राप्त होता है (मर्यः-इव युवतिभिः) जैसे गृहस्थजन सहयोगिनी महिलाओं से गृहस्थाश्रम में प्रसिद्ध होता है।

रसीला शान्तस्वरूप परमात्मा आत्मा का समानधर्मी मित्र आत्मा के शुद्ध अन्तःकरण में अवश्य प्राप्त होता है वह सङ्गवाले स्थान—हृदय को नष्ट नहीं करता है अपितु उस कलकल शब्दशयन स्थान हृदय में बहुत गतिक्रमवाले मार्ग—योगाभ्यास से प्राप्त होता है जैसे गृहस्थजन साथ रहनेवाली महिलाओं—पत्नी बहिन पुत्रियों के साथ गृहस्थाश्रम में प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—कविः (क्रान्तदर्शी—अतीन्द्रिय परमात्मदर्शी उपासक)

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनु माद्यो
१ २ १ २ ३ २उ ३ १२ २र ३ २ ३ १ २
नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि
३ २
कृणुषे नदीष्वा ॥ ५ ॥

(हरिः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (दिवः-धर्ता) अमृतधाम मोक्ष का धारक "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (कृत्व्यः) उपासनाद्वारा साक्षात् कर्तव्य (रसः) उपासकों का रसरूप (देवानां दक्षः) मुमुक्षुओं का प्राण है "प्राणो वै दक्षः" [जै० ३।६२] (नृभिः) जीवन्मुक्तों द्वारा "नरो वै देवविशः" [जै० १।८९] (अनुमाद्यः) अनुमोदनीय—अनुहर्षित करने योग्य (सत्वभिः-सृजानः) आस्तिकजनों द्वारा हृदय में संसृष्ट किया—उपासित किया हुआ (अत्यः-न वृथा पाजांसि कृणुषे) निरन्तर गतिशील घोड़े के समान स्वभावतः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलकारी कार्य भलीभांति करता है "अत्योऽश्वः" [निघं० १।१४] (नदीषु-आपवते) स्तुति शब्द करनेवाली प्रजाओं में "पुरुषो वाव नदः" [ऐ० १।३।५]।

दुःखापहर्ता सुखाहर्ता, अमृतधाम का धारक परमात्मा उपासनाद्वारा साक्षात्करणीय रसरूप प्राणस्वरूप जीवन्मुक्तों द्वारा अनुकर्षणीय आस्तिकजनों द्वारा हृदय में संसृष्ट किया हुआ निरन्तरगतिशील घोड़े के समान स्वभावतः बलकारी कार्य करता है स्तुति शब्द करनेवाली मानवप्रजाओं में प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १र २र
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतारीतोषसां
३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्या-
३ १ १ ३ १ २
विशन् मनीषिभिः ॥ ६ ॥

(विचक्षणः सोमः) सर्वद्रष्टा शान्तस्वरूप परमात्मा (मतीनां वृषा) अर्चना करने वाले उपासकों का "मन्यते अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] सुखवर्षक (अह्नाम्-उषसां दिवः प्रतारीता) दिनों उषावेलाओं सूर्य का "सोऽसौ द्युलोकः सोऽसावादित्यः" [ऐ० आ० १।४।३] प्रवर्धयिता प्रवर्तयिता (पवते) प्राप्त होता है (सिन्धूनाम्) शरीर में स्यन्दमान—बहती हुई "सिन्धूनां स्यन्दमानानाम्" [निरु० १०।६] या स्रवण करती हुई—स्रवित होती हुई "सिन्धुः स्रवणात्" [निरु० ५।२७] शरीर को बान्धने वाली नाड़ियों का "तद्यदै तैदिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः" [जै० उ० ३।९।२।९] (प्राणा) प्राण 'सुस्याने-आकारादेशश्छान्दसः' प्रकृष्ट

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनरसप्रदाता परमात्मा (इन्द्रस्य कलशान्-अचिक्रदत्) आत्मा के कलकल शब्द शयन नाड़ीसङ्गमों को रचनार्थ प्राप्त होता है (मनीषिभिः) 'मनीषिणाम् विभक्तिव्यत्ययः' ब्रह्मज्ञानियों के (हृदि-आविशन्) हृदयस्थान में आविष्ट हो जाता है।

सर्वद्रष्टा शान्तस्वरूप परमात्मा स्तुतिकर्ता उपासकों का कामवर्षक—कामनापूरक है जीवन की प्रभातवेलाओं दिनों सूर्यदर्शन को प्रवृद्ध करने वाला है, शरीर में बढ़ने चलने वाले शरीर को बान्धने वाली प्राणनाड़ियों का प्राणस्वरूप जीवनप्रद है, आत्मा के अधीन कलकल शब्द वाले नाड़ी सङ्गमों को प्राप्त हुआ मनस्वी ऋषियों के हृदय में सदा साक्षात् रहता है ॥ ६ ॥

ऋषिः—रेणुर्वैश्वामित्रः (सर्वमित्र से सम्बद्ध सूक्ष्मज्ञानवान्)

१ २   ३ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमन्।
३ २ ३ १र २र   ३ २ ३ १ २   ३ २ १ १ २र
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ ७ ॥

(परमे व्योमन्) श्रेष्ठ हृदय अवकाश में प्राप्त होने के निमित्त (अस्मै) इस सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (सप्त धेनवः) सात गायत्री आदि छन्दोमयी वाणियां "धेनुः-वाक्" [निघं० १।११] (त्रिः) स्तुति प्रार्थना उपासना तीन में आवृत हुई (सत्याम्-आशिरम्) सत्य आश्रयरूप चिति—आत्मशक्ति को (दुदुह्रिरे) दुहती हैं—समर्पित करती हैं (चत्वारि चारूणि-अन्या भुवनानि) चार ज्ञान साधन—मन बुद्धि चित्त अहङ्कार सुन्दरज्ञान साधन अननीय मानव जीवन के उपयोगी इच्छादि भावनापूर्ण अन्तःकरणों को (निर्णिजे) शुद्ध करने—निर्दोष—सगुण करने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये (चक्रे) बनाता है (यत्) यतः (ऋतैः-अवर्धत) इस प्रकार सदाचरणों से बढ़ता है—साक्षात् होता है।

सत्त्वगुणपूर्ण हृदयावकाश में प्राप्ति के निमित्त शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये सात गायत्री आदि छन्दोमयी वाणियां स्तुति प्रार्थना उपासनाक्रमों में आई हुई चित्ति शक्ति—आत्मा को समर्पित करती हैं तथा चार ज्ञान साधन मन बुद्धि चित्त अहङ्कार जीवनोपयोगी इच्छादि भावनापूर्ण अन्तःकरण को शुद्ध करता है—उपासक के अन्दर साक्षात् होता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—वेनो भार्गवः (आत्मीयतेजोयुक्त तेजस्वी से सम्बद्ध परमात्मसङ्गति का इच्छुक उपासक)

१ २ ३ १२३ १ २ ३१र २र ३ १ २ ३ २
इन्द्राय सोम सुषुतः परिस्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (इन्द्राय) आत्मा के लिये (सुषुतः) सुनिष्पन्न—साक्षात् होकर (परि स्रव) आनन्दरूप में स्रवित हो (रक्षसा सह-अमीवा-अपभवतु) मोह-शोक मानव दोष के सहित रोगी करने वाला कामवासना आदि मानसरोग दूर हो (ते रसस्य) तेरे अध्यात्मरस के अंश का (द्वयाविनः) 'मायाविनः' दो वृत्तिवाले—अन्दर कुछ बाहिर कुछ दो रूपों वाले छलीजन (मा मत्सत) नहीं आनन्द ले सकते, अतः द्विधा न रखें—मायावी छली न बनें (इह-इन्दवः-द्रविणस्वन्तः सन्तु) इस जीवन में रसीला शान्त परमात्मा अध्यात्मबल वाला अध्यात्मबलप्रद हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू उपासक आत्मा के लिये साक्षात् होकर आनन्दरूप में स्रवित हो, मोह शोक आदि मानस-दोष के सहित रोगी बनाने वाले कामवासना आदि मानस रोग दूर हों, तेरे अध्यात्मरस का अंश भी अन्दर कुछ बाहिर कुछ द्विधावृत्ति वाले मायावी छलीजन आनन्द नहीं ले सकते अतः हम निश्छल निरन्तर साक्षात् करें ॥ ८ ॥

ऋषिः—वसु भारद्वाजः (अमृत अन्नभोग का अधिकारी परमात्मा में वसा हुआ)

१ २ ३ १ २ ३ १उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १र
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा
२र ३ २उ ३१ ३ २ १ २ ३ १र २र
अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययꣳ श्येनो न योनिं
३ १ २ ३ १ २
घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥

(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (अरुषः) आरोचमानरूप में "अरुषीरारोचमानात्" [निरु० १२।८] (असावि) साक्षात् हुआ (वृषा हरिः) कामनावर्षक, दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (राजा-इव दस्मः) राजा के समान दर्शनीय "दस दर्शने" [चुरादि०] (गाः-अभि-अचिक्रदत्) स्तुतियों को लक्ष्यकर—स्तुतियों के अनुसार प्रवचन करता है (पुनानः-अव्ययं वारम्-अत्येषि) स्तुतियों द्वारा प्रेरित हुआ आत्मा के रक्षणरूप आवरक शरीर को पार कर—लांघकर अन्दर आत्मा में प्राप्त होता है (श्येनः-न घृतवन्तं योनिम्-आसदत्) प्रशंसनीय गतिवाले भासपक्षी की भांति तेजोयुक्त—आत्मावाले—आत्मगृह हृदय को प्राप्त हो जाता है।

शान्तस्वरूप परमात्मा आरोचमान कामनावर्षक दुःखापहर्ता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखाहर्ता के रूप में साक्षात् होता है, राजा की भांति दर्शनीय है, स्तुतियों के अनुसार प्रवचन करता है स्तुतियों द्वारा प्रेरित हुआ ही शरीर आवरक को लांघकर अन्दर आत्मा में प्राप्त होता है, इस प्रकार प्रशंसनीय गतिवाले भासपक्षी के समान आत्मा से युक्त हृदय प्रदेश को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

ऋषिः—वत्सप्रीः † (मन को परमात्मा के प्रेम से पूरित करने वाला उपासक)

३२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यन्त गाव आ न धेनवः।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥

(मधुमन्तः-इन्दवः) मधुर रसीला आनन्दस्वरूप परमात्मा 'बहुवचनमादरार्थम्' (देवम्-अच्छा) इन्द्रियदेवों के अधिराज इन्द्र—आत्मा को लक्ष्य कर "इन्द्रो वै देवानामधिराजः" [मै० २।२।११] या मन को लक्ष्य कर "मनो देवः" [गो० १।२।१०] (प्र-आ-असिष्यन्दत) प्रकृष्ट एवं समन्तपूर्णरूप से स्रवित होता है (धेनवः-गावः-न) दुधारी गौओं की भांति, जैसे गौएं बच्छड़े को लक्ष्य कर दूधरूप स्वरस स्रवित करती हैं और जबकि (बर्हिषदः-वचनवन्तः) हृदयावकाश में प्राप्त हो प्रवचन करते हुए होते हैं, तब (उस्रियाः-ऊधभिः) गौएं जैसे "उस्रिया गोनाम" [निघं० २।११] दुग्धाधार स्थलों से (परिस्रुतं निर्णिजं धिरे) धारारूप में निकले शुद्ध दूध को धारण करते हैं वह भी ऐसे शुद्ध आनन्दरस को धारण करता है।

† "मन एव वत्सः" [श० ११।३।१।१]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर रसीला आनन्दस्वरूप परमात्मा मन या आत्मा को लक्ष्य कर प्रबल और समन्तपूर्णरूप से स्रवित होता है, हृदयाकाश में विराजमान हो प्रवचन प्रपूर्ण हुआ प्रवचनामृत प्रदान करता है दुधारी गौओं की भांति, जैसे गौओं के गोष्ठ—गोसदन में बच्छड़े के प्रति निर्मल दूध को दुग्धस्थलों से दूध गौएं स्रवित करती हैं ॥ १० ॥

ऋषि:—अत्रिः (इस जन्म में ही तृतीयधाम को प्राप्त होने वाला† या परमात्मा में निरन्तर नमन प्रवेश करने वाला उपासक)

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ २ २ ३क २र
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुँ रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणँ हिरण्यपावाः पशुमप्सु
२
गृभ्णते ॥ ११ ॥

(हिरण्यपावाः) आत्मभाव से पहुंचने—प्राप्त करने वाले उपासकजन "आत्मा हरितं हिरण्यम्" [काठ० १०।४] (क्रतुम्) 'मतुब्लोपश्छान्दसः' प्रशस्तकर्म प्रज्ञानवाले तथा प्रशस्तयज्ञ—अध्यात्मयज्ञ के आधार सोम—शान्त परमात्मा को (अञ्जते) मन में निश्चित करते हैं मनन करते हैं (व्यञ्जते) निदिध्यासित करते हैं (समञ्जते) साक्षात् करते हैं (मध्वा-अभ्यञ्जते) आत्म-समर्पण से अभिमुख करते हैं "आत्मा वै पुरुषस्य मधु" [जै० १।२२४] पुनः (रिहन्ति) आत्मभाव से उसे अर्चित करते हैं "रिहति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] (सिन्धोः) स्यन्दनशील

† "अत्रैव तृतीयमृच्छत०" [निरु० ३।१७]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणवान् हृदय के "प्राणो वै सिन्धुः" [कौ० १६।२] 'मतुब्लोपश्छान्दसः' (उच्छ्वासे) उच्छ्वासस्थान—अवकाश में (पतन्तम्) प्राप्त होते हुए—"पतति गतिकर्मा" [निघं० २।१४] (उक्षणम्) अमृतरस सींचने वाले—(पशुम्) सर्वद्रष्टा परमात्मा को (अप्सु गृभ्णते) श्रद्धाभावों में "आपः श्रद्धा" [काठ० ३१।३] ग्रहण करते हैं।

आत्मभाव से पहुँचने वाले उपासकजन प्रशस्तकर्म प्रज्ञान के भण्डार एवं अध्यात्मयज्ञ के आधार शान्त परमात्मा का मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार करते हैं तथा आत्मसमर्पण से उसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं स्वात्मा से सम्पृक्तकर उसका अमृतरस लेते हैं हृदय को सींचने वाले को आत्मभावों से ग्रहण करते हैं ॥ ११ ॥

ऋषिः—पवित्र आङ्गिरसः (प्राणविद्यासम्पन्न निष्पाप उपासक)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ र ३ १ २ ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
१ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ ३ १ र २ र ३ १ र २ र
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे अमृत आनन्द के स्वामिन् ! परमात्मन् ! "अथ यद् ब्रह्म तदमृतम्" [जै० ३०।१।८।१।१०] (ते) तेरा (पवित्रम्) पवित्र करने वाला आनन्दरस "येन देवा पवित्रेणात्मानं पुनते सदा तेन सहस्रधारेण पवमान पुनातु मा" [काठ० सं० ९६।२] (विततम्) उपासक के अन्दर फैल रहा है (प्रभुः) प्रभावकारी हुआ (गात्राणि सर्वतः पर्येषि) उपासक के अङ्गों में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब ओर प्राप्त हो रहा है (अतप्ततनूः) असंयत देहवाला (आमः) कच्चा—मानसरोगी (तत्-न-अश्नुते) उस अमृत आनन्दरस को प्राप्त नहीं कर सकता है (शृतासः-इत्-वहन्तः) पके हुए संयमी-जन ही वहन करते हुए (तत् समाशत) उसे सम्यक् भोगते हैं।

हे अमृतानन्दरस के स्वामिन् परमात्मदेव ! तेरा पवित्र—निर्दोष करने वाला अमृतानन्दरस उपासक के अन्दर फैलता है, इस प्रकार तू प्रभावकारी हो उपासक के अन्दर मन आदि अङ्गों में परिप्राप्त हो रहा है, असंयमी मानसरोगी कच्चाजन तेरे अमृतानन्दरस को नहीं प्राप्त कर सकता है किन्तु पके संयमीजन ही वहन करते हुए सम्यक् भोग सकते हैं ॥ १२ ॥

दशम खण्ड

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)

छन्दः—उष्णिक् ।

२ ३१ २ ३१ ३१र २र ३ १२
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

(इमे) यह (सुताः) निष्पन्न—साक्षात् हुआ (हरयः) दुःखापहर्ता सुखाहर्ता (श्रुष्टे जातासः स्वर्विदः-इन्दवः) आशु—शीघ्र व्याप्ति के निमित्त "श्रुष्टी····आशु श्रुष्टी" [निरु० ६।१३] आर्द्ररसभरा मोक्षानुभव कराने वाला रसीला सोम—परमात्मा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वृषणम्-इन्द्रम्-अच्छ यन्तु) स्तुतिवर्षक आत्मा की ओर प्राप्त हो।

यह साक्षात् हुआ दुःखापहर्ता सुखाहर्ता मोक्षानुभव कराने वाला रसीला परमात्मा स्तुति वरसाने वाले उपासक आत्मा की ओर भलीभांति शीघ्र प्राप्त होता है ॥ १ ॥

ऋषिः—यक्षुर्मानवः (मनु—मननशील होने में समर्थदृष्टिमान् उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
प्रधन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तꣳ शुष्ममा भर स्वर्विदम्।

(इन्दो सोम) हे रसीले शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (प्रधन्व) प्राप्त हो (जागृविः) जगाने वाला—सचेत करने वाला—बुद्धि-विकास कराने वाला हुआ (इन्द्राय) आत्मा के लिये (परिस्रव) अमृतरूप में परिस्रवित हो (स्वर्विदम्) मोक्ष प्राप्त कराने वाले (द्युमन्तम्) तेजस्वी (शुष्मम्-आभर) बल को "शुष्मं बलनाम" [निघ० २।९] हमारे अन्दर आभरित कर।

हे आनन्दरसभरे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू प्राप्त हो तथा सचेत करने वाला उपासक आत्मा के लिये अमृतरूप में स्रवित हो मोक्ष प्राप्त कराने वाले तेजस्वीबल को हमारे अन्दर पूर्णरूप से भर दे ॥ २ ॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—आत्मतृप्तिमान् और नार—नरविषयक ज्ञान देने वाला)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सखाय आ निषीदत पुनानाय प्र गायत ।
३ २ ३१२ २१ ३२
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥

(सखायः) हे समानख्यान—समानधर्मी उपासकजनो ! (आनिषीदत) समन्तरूप से सुखासन पर बैठो (पुनानाय) जीवन को शुद्ध करने वाले सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा के लिये (प्रगायत) प्रकृष्टगान स्तवन करो (श्रिये) अपने कल्याण के लिये "श्रीर्वै भद्रम्" [जै० ३।१७२] (शिशुं न यज्ञैः परिभूषत) शंसनीय लघुबालक के समान सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा को "शिशुः शंसनीयो भवति" [निरु० १०।३९] अध्यात्मयज्ञों—सङ्गतिकरणों से सब ओर भूषित—सम्मानित करो ।

हे समानधर्मी उपासकजनो ! समन्तरूप से सुखासन पर बैठो उस पवित्र करने वाले परमात्मा के लिये अपने कल्याण के लिये अच्छ स्तवन करो प्रशंसनीय बालक के समान सङ्गतिकरणों से परिभूषित करो ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
३ २ ३ १ ३ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥

(सखायः) हे समानख्यान समानधर्मी उपासको ! (वः-मदाय) तुम्हारे—अपने हर्ष—आनन्द के लिये (तं पुनानम्) उस निर्मल करने वाले को (अभिगायत) लक्ष्यकर गाओ (शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त) बालक को जैसे अदनीय भोजनों से स्वाद

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराते हैं ऐसे "हव्यमदनम्" [निरु० ११।३३] "हु दानादनयोः" [जुहो०] 'अदनार्थेऽत्र' (गूर्तिभिः) अर्चनाओं से—स्तुतियों से अर्चित करो—स्वाद दिलाओ "गृणाति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१४] "गॄशब्दे" [क्रयादि०] 'ततः स्त्रियांक्तिन्' "उदोष्ठ्य-पूर्वस्य, बहुलं छन्दसि" [अष्टा० ७।१।१०३] 'उत् छान्दसः'।

हे समानधर्मी उपासकजनो ! अपने आनन्द प्राप्ति के हेतु उस पवित्र करने वाले शान्तस्वरूप परमात्मा के प्रति गुणगान गाओ और उसे स्तुतियों द्वारा अर्चित करो जैसे अनेक भोजन पदार्थों से बालक को स्वाद दिलाते हैं ऐसे अपनी ओर आकर्षित करो ॥४॥

ऋषिः—त्रितः (तीन प्रकार से परमात्मा की स्तुति करने वाला उपासक)

३ १२ २र३ १ २ ३ २ ३२ १ २
प्राणा शिशुर्महीनाᳪंहिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

(महीनां शिशुः प्राणा) स्तुतियों का "मही वाङ्नाम" [निघं० १।११] शंसनीय या शिशुसमान प्राणरूप सोम "प्राणो वै सोमः" [श० ७।३।१।४५] 'आकारादेशश्छान्दसः' (ऋतस्य दीधितिं हिन्वानः) अमृत—मोक्ष की "ऋतममृतम्" [जै० २।१६०] दीप्त झलक को प्रेरित करने के हेतु (विश्वा प्रिया-अध द्विता) सारी प्रिय समानख्यान चेतन अध—अनन्तर अप्रिय—असमानख्यान जड़ इस प्रकार दो विभागों को या सारे प्रिय—सुखों और अप्रिय—दुःखों को (परिभुवत्) अधिकृत करता है।

स्तुतियों के द्वारा शंसनीय शिशुसमान सोम—शान्तस्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा अमृतरूप मोक्ष की दीप्त झलक को प्रेरित करने के लिये सब चेतनों और जड़ों को कर्मफलरूप सुखों और दुखों पर अधिकार किए हुए है अतः उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ५ ॥

ऋषिः—मनुराप्सवः ? आप्तवः (देह में व्याप्त परमात्मा का मनन करने वाला)

१ २   ३ १ २   ३ २   ३ १ २   ३ १ २
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३ १ २
आ कलशं मधुमांत्सोम नः सदः ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे आनन्दरसयुक्त (सोम) शान्त परमात्मन् ! तू (ओजसा) वेगबल के साथ (धाराभिः) आनन्दधाराओं से (देववीतये) मुमुक्षु के आत्मपान के लिये (पवस्व) बह चल (मधुमान्) मधुरता वाला तू (नः) हमारे (कलशम्-आसदः) कलकल शब्द के शयनस्थान हृदय में विराजमान हो ।

हे आनन्दरसवन् शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू वेग के साथ अपनी आनन्दधाराओं द्वारा मुमुक्षुजनार्थ अमरपान के लिये "वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु" [अदादि०] 'सामर्थ्यात् पनार्थं' बह चलता है तू मधुररूप हमारे हृदय घर में प्राप्त होता रह ॥ ६ ॥

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी उपासक)

१ २   ३ २ ३ २उ   ३   २ ३ १
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं विधावति ।
१ २   ३ १र   २र   ३ १ २
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुनानः सोमः) अध्येष्यमाण—मनन निदिध्यासन में आया हुआ "पवस्व-अध्येषणाकर्मा" [निघं० ३।२१] शान्तस्वरूप परमात्मा (ऊर्मिणा) विभुगतितरङ्ग से (अव्यं वारम्) रक्षणीय तथा वरण करने—स्वीकार करने योग्य आत्मा को (वि धावति) विशेषरूप से साक्षात्—प्राप्त होता है (वाचः-अग्रे) स्तुति के आगे आगे—स्तुति के साथ (पवमानः कनिक्रदत्) आनन्दधारा में आता हुआ परमात्मा अत्यन्त संवाद करता है।

आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला शान्तस्वरूप परमात्मा मनन निदिध्यासन में आता हुआ स्तुति के साथ ही विभुगतितरङ्ग से विशेषरूप से संवाद करता हुआ अपने रक्षणीय आत्मा को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—द्वितः (दो भावनाओं से स्तुति करने वाला)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।

३ १र २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

(पुनानाय) अध्येष्यमाण—विवेचन में आते हुए—(वेधसे) विधाता—"वेधसे विधात्रे" [निरु० १३।३०, अथवा १४।४२] (मतिभिः) स्तुतियों द्वारा "वाग्वै मतिः" [श० ८।१।२।७] "मन्यते-अर्चतिकर्मा" [निघं० २।६] अत्यन्त परितृप्त करते हुए उपासक के लिये "जुष परितर्पणे-इत्यये" [चुरादि०] (भृतिं न भर) स्तुतियों के प्रतीकार भृतिरूप—अध्यात्मपुष्टि को जीवन में भर दे।

मनन चिन्तन करते हुए विधाता, शान्तस्वरूप परमात्मा के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये प्रार्थना करनी चाहिए कि वह स्तुतियों के प्रतीकार में अध्यात्म पुष्टि जीवन में भर दे ॥ ८ ॥

ऋषिः—पर्वतनारदावृषी (पर्ववान्—अत्यन्त तृप्तिमान् और नरविषयक ज्ञानदाता)

१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ६ ॥

(सुदक्ष-इन्दो) हे शोभन बलवाले आनन्दरसभरे परमात्मन् ! तू (सुतः) साक्षात् हुआ (नः) हमारी ओर (गोमत्) अपने ज्ञानवाले—ज्ञानस्वरूप को (अश्ववत्) व्यापन वाले—व्यापन-धर्म को 'अत्रोभयत्र धात्वर्थ एवेष्यते' (धनिव) प्रेरित कर, तथा (गोषु) स्तुतियों में (शुचिं वर्णम्) प्रकाशमान वरणीय आनन्द-रूप को (धारय) धारण करा ।

प्रशस्तबलवान् आनन्दरसभरे परमात्मन् ! तू साक्षात् हुआ अपने ज्ञानस्वरूप और व्यापनधर्म को हमारी ओर प्रेरित कर तथा हमारी स्तुतियों में अपने प्रकाशमान वरणीय आनन्द को भी वररूप में धारण करा, हमारी स्तुतियां रिक्त न जावें—रिक्त जाती नहीं किन्तु आनन्दवर लेकर अवश्य आती हैं ॥ ९ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ २
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्मभ्यम्) हमारे लिये (त्वा वसुविदम्) तुझ अध्यात्म-धन प्राप्त कराने वाले परमात्मा को (वाणीः-अनूषत) वाणियां स्तुति करती हैं—प्रशसित करती हैं "णु स्तुतौ" [अदादि०] (गोभिः-ते वर्णम्) वाणियों—स्तुतियों द्वारा तेरे वरणीयस्वरूप को (अभिवासयामसि) हम घेरते हैं।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझ अध्यात्मधन के प्राप्त कराने वाले को हमारी वाणियां स्तुत करती हैं—प्रशंसित करती हैं हम भी तेरे वरणीय स्वरूप – आनन्दरूप को स्तुतियों द्वारा घेरते हैं—अपनाते हैं ॥ १० ॥

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः (ज्ञानदृष्टिमान् तेजस्वी)

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
३क २र ३ १ २ ३ १ २ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥ ११ ॥

(हर्यतः-हरिः) कमनीय ! "हर्यति कान्तिकर्मा" [निघं० २।६] "हर्य गतिकान्त्योः" [भ्वादि०] दुःखापहर्ता सुखाहर्ता सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (रंह्या) वेगरूप गति से "रंहि र्न-गतिर्न" [निरु० १०।२९] (ह्वरांसि) कुटिलवृत्तों—पापभावों को "ह्वृ कौटिल्ये" [भ्वादि०] (अति-पवते) अतिक्रान्त करता है—बाहिर निकालता है (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिये (वीरवत्-यशः-अभ्यर्ष) स्वात्मवीर्यवान् "स ह वाव वीरो य आत्मन एव वीर्यमनु वीरः" [जै० २।२८२] यश को प्रेरित कर।

कमनीय प्रिय दुःखनाशक सुखप्रापक शान्तस्वरूप परमात्मा तीव्रगति से कुटिलवृत्तों पापसङ्कल्पों को दूर करता है और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासकों के लिये आत्मिक वीर्यवाले यश को प्रेरित करता है ॥ ११ ॥

ऋषिः—द्वित आप्त्यः (सर्वत्र आप्त परमात्मा दो प्रकारों या दो प्रयोजनों—आनन्द और ज्ञान या भोग और अपवर्ग को लक्ष्यकर स्तुति करने वाला)

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि कोशं मधुश्चुतꣳ सोमः पुनानो अर्षति ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि वाणी ऋषीणाꣳसप्तानूषत ॥ १२ ॥

(सोमः) शान्तस्वरूप परमात्मा (पुनानः) अध्येष्यमाण—मनन निदिध्यासन में आता हुआ (मधुश्चुतं कोशम्) ब्रह्मानन्द-रूप मधु के क्षरणस्थान हृदयकोष्ठ को (परि-अर्षति) परिप्राप्त होता है, जिसको (ऋषीणां सप्त वाणीः) मन्त्रद्रष्टियों के सात-गायत्री आदि छन्दों से युक्त वाणियाँ (अभि-अनूषत) स्तुति करती हैं।

शान्तस्वरूप परमात्मा मनन निदिध्यासन में आया हुआ ब्रह्मानन्दरस के स्रवणस्थान हृदय कोष्ठ में प्राप्त होता है जिसको मन्त्रद्रष्टियों के गायत्री आदि सात छन्दों से युक्त वाणियां प्रशंसित करती हैं ॥ १२ ॥

———

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादश खण्ड

ऋषिः—गौरिवीतिः (ब्रह्मवर्चस्वी उपासक †)

छन्दः—१–४ ककुप्।

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
१ २ ३ १ २ ३ १२
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरतायुक्त हुआ (क्रतुवित्तमः) अत्यन्त कर्मज्ञाता (मदः) हर्षानेवाला (महि) महान् (द्युक्षतमः) अत्यन्त दीप्तिस्थानवाला (मदः) आनन्दमय हुआ (इन्द्राय) उपासक आत्मा के लिये (पवस्व) मनन निदिध्यासन में आ।

शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तू उपासक आत्मा के लिये अत्यन्त मधुरतावाला अत्यन्त कर्मज्ञाता हर्षानेवाला अत्यन्त प्रकाश भूमिवाला महान् आनन्दप्रद हुआ निदिध्यासन में आ—साक्षात् हो जा ॥ १ ॥

ऋषिः—ऊर्ध्वसद्मा (ऊंचे सदन—मोक्षधाम वाला मोक्षार्थी)

३ २ ३ २ ३२उ ३ १२ ३ १ २ ३२
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
१र २र २
वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥

† "तेजो वै ब्रह्म वर्चसंगौरिवीतम्" (ऐ० ४।२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इषस्पते देव) हे इच्छा कामना के पालक—कामनापूरक शान्तस्वरूप परमात्मदेव! तू (बृहत्-द्युम्नं यशः) ऊंचे—अनश्वर धन को "द्युम्नं धननाम" [निघं० २।१०] और ऊंचे—अनश्वर अन्न—अमृत अन्न मोक्षभोग को "यशः-अन्ननाम" [निघं०] (देवयुवम्-अभि) तुझ देव की ओर चलने वाले के प्रति (दिदीहि) उपहार देदे—प्रसादरूप में देदे "दाञ् दाने" [जुहो०] 'छान्दसं-रूपम्' (मध्यमं कोशम्) भीतरवाले कोष्ठ अर्थात् शरीर और आत्मा के मध्य में वर्तमान अन्तःकरण या मन को (वियुव) विकसित कर—खोल।

हे कामनापूरक परमात्मन्! तेरी ओर चलने वाले के प्रति तू अनश्वरधन—मोक्षैश्वर्य और अमृतभोग मोक्षानन्द प्रदान करता है तथा उसके मन को विकसित कर देता है॥ २॥

ऋषिः—ऋजिश्वा (सत्य सरल जीवनयात्रा का पथिक उपासक)

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ १ २ ३ १ २
आ सोता परिषिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरꣳ रजस्तुरम्।
३ १ २ ३ १ २
वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥ ३॥

(स्तोमम्) स्तुतियोग्य—उपासनीय (अप्तुरम्) प्राणों को प्रेरित करने वाले—"आपो वै प्राणाः" [श० ३।८।२।४] (रजस्तुरम्) ज्ञानज्योतिप्रेरक "ज्योतीरज उच्यते" [निरु० ४।१९] (वनप्रक्षम्) वननीय मोक्ष का सम्पर्क कराने वाले—(उदप्रुतम्) आर्द्र आनन्दरस के प्रेरक—"प्रु गतौ" [भ्वादि०] (अश्वम्) व्यापक—(न) सम्प्रति "न सम्प्रत्यर्थे" [निरु० ६।८] परमात्मा को (आसोत) हृदय में आभासित करो (परिषिञ्चत) आत्मा में श्रद्धा से आभरित करो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासकजनो ! तुम स्तुति करने योग्य प्राणप्रेरक बलप्रद ज्ञानज्योतिप्रसारक मोक्ष से सम्पर्क कराने वाले आनन्दरसप्रवाहक व्यापक परमात्मा को हृदय में साक्षात् करो और श्रद्धा से धारण करो ॥ ३ ॥

ऋषिः—कृतयशा आङ्गिरसः (प्राणविद्या में निष्पन्न यशस्वी उपासक)

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एतमु त्यं मदच्युतँ्सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा वसूनि बिभ्रत् ॥ ४ ॥

(एतं त्यम्-उ) इस उस ही (मदच्युतम्) हर्षप्रेरक—(सहस्रधारम्) बहुत स्तुतिवाणी वाले—"धारा वाङ् नाम" [निघं० १।११] (वृषभम्) कामनावर्षक—(दिवः-दुहम्) मोक्षामृत के दुहने वाले तथा (विश्वा वसूनि बिभ्रत्) सब वसाने के साधनों को धारण करने वाले परमात्मा को श्रद्धा से हृदय में साक्षात् करें और धारण करें ।

अहो इस उसही हर्षप्रेरक स्तुतियोग्य कामनावर्षक मोक्षामृत के दुहने वाले तथा सब वाससाधनों के धारक परमात्मा को हम श्रद्धा से हृदय में साक्षात् करें और धारण करें ॥ ४ ॥

ऋषिः—ऋणञ्चयः क्वचित्—ऋणवः (तीनों ऋण चुकाने वाला या ऋणों को वारित करने वाला अनृणी कृतकृत्य उपासक †)

---

† "चि नाशनेऽर्थेऽत्र । चयसे-यातमामसि" (निरु० ४।२५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—यवमध्या गायत्री ।

१ २ ३ १र २र ३ १ ३ १ २ ३ १र २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

(यः-वसूनाम्) जो वाससाधनों का (यः-रायाम्) जो रमणीयभोगों का (यः-इडानाम्) जो वाणियों का (यः सुक्षितीनाम्) जो सुन्दर आत्मभूमियों का (आनेता) समन्तरूप से प्राप्त कराने वाला है (सः सोमः) वह शान्तरूप परमात्मा साक्षात् किया जाता है ।

शान्तरूप परमात्मा हमारे समस्त वाससाधन शरीर इन्द्रियों रमणीय भोगों उत्तम वाणियों और ऊंची आत्मभूमियों का प्राप्त कराने वाला है उसका साक्षात् करना चाहिए ॥ ५ ॥

ऋषिः—शक्तिर्वासिष्ठः (उपासक से अत्यन्त सम्बद्ध ज्ञान में समर्थ)

छन्दः—ककुप् ।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वँ ह्यारेङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
३ १ २ ३ १ २
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

(अङ्ग पवमान) हे आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले प्रिय परमात्मन् ! (त्वं हि) तू ही (द्युमत्तमः) अत्यन्त द्युतिमान् हुआ (दैव्यं जनिमानि) "दैव्यानि" एकवचन व्यत्ययेन दैव्यजनों मुमुक्षुओं को (अमृतत्वाय घोषयन्) मोक्ष को घोषित करने के हेतु समन्तरूप से नेता बन ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा अत्यन्त द्युतिमान्—दीप्तिमान् हुआ मुमुक्षुजनों को अमृतत्व प्राप्ति की घोषणा करते हुए समन्तरूप से नेता बना है ॥ ६ ॥

ऋषिः—उरुराङ्गिरसः (प्राणविद्यासम्पन्न महान् आयुष्मान्)

छन्दः—७,८ प्रगाथः ।

३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मन्दितमः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

(एषः-स्यः) यह वह (मन्दितमः) अत्यन्त स्तुतियोग्य शान्तस्वरूप परमात्मा (सुतः) निष्पन्न—साक्षात् किया (अव्याः) अवि—रक्षणकारिणी अध्यात्मभूमि के सूक्ष्मतत्त्वों के द्वारा (पवते) आनन्दधारा में प्रवाहित हो रहा है (अपाम्:क्रीडन्-ऊर्मिः-इव) जलस्रोतों की तरङ्ग के समान खेलता हुआ सा ।

यह वह अत्यन्त स्तुतियोग्य शान्तस्वरूप परमात्मा साक्षात् हुआ रक्षण करने वाली योगभूमि के सूक्ष्मतत्त्वों द्वारा आनन्द-धारा में प्रवाहित होता है जलतरङ्गों में खेलता सा ॥ ७ ॥

ऋषिः—ऋजिश्वा (ऋजु या सत्यमार्ग में चलनेवाला उपासक)

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १
य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १र ३ २
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ।

(यः) जो सोम—शान्तस्वरूप परमात्मा (उस्रियाः) रश्मियों में—प्रकाशधाराओं में "उस्रा रश्मिनाम" [निघं० १।५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इयाच् छन्दसि' (अपि याः) 'अप्याः' अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली द्रवधाराओं में "आपोऽन्त रिक्षनाम" [निघं० १.३] (अश्मनि-अन्तः) स्थिर पृथिवीस्थलियों में "स्थिरो वा अश्मा" [श० ९।१।२।५] (ओजसा) आत्मप्रभाव से (गाः) गति-विधियों को (निः-अकृन्तत्) निष्पादित करता है—प्रकट करता है (धृष्णो) हे धर्षणशील (गव्यम्-अश्व्यं व्रजम्-अभितत्निषे) हमारे इन्द्रियसम्बन्धी तथा व्यापनगतिवाले मनसम्बन्धी व्रज—गतिस्थान को विकसित करता है (वर्मी-इव-आरुज) विपरीत इन्द्रियवृत्ति को और विपरीत मनोवृत्ति को कवची—कवचधारी की भांति नष्ट कर दे (ओ३म्) हे ओ३म् इष्टदेव सोम—शान्त-स्वरूप धर्षणशील परमात्मन् ! तू विपरीत इन्द्रियवृत्ति और विपरीत मनोवृत्ति को नष्ट कर दे, द्विरुक्ति प्रकरण समाप्ति के लिये।

जो शान्तस्वरूप परमात्मा सूर्यरश्मिसम्बन्धी प्रकाशधाराओं में अन्तरिक्ष सम्बन्धी द्रवणशील तत्त्वों में और पृथिवीसम्बन्धी धृतिस्तरों में अपनी गतिविधियों को प्रदर्शित करता है एवं वह तू परमात्मन् ! हमारे इन्द्रियविषयक गतिस्थान मनोविषयक विचार-संस्थान को विकसित और उत्कृष्ट कर विपरीत भोग और विपरीत सङ्कल्प से हे धर्षणशील परमात्मन् कवचधारी रक्षक की भांति अपने बल से नष्ट करदे हे ओ३म् सोम परमात्मन् ! तू अवश्य विपरीत भोग और विपरीत सङ्कल्प से हमारी रक्षा कर हमें अपनी शरण दे अवश्य हमारा रक्षक बन ॥ ८ ॥

❀ पवमान पर्व, काण्ड समाप्त ❀

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरण्य पर्व, काण्ड

षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृत अन्नभोग को अपने अन्दर धारण करने वाला उपासक †)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—बृहती ।

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।

१२ २२ ३ १ २ ३ १२ २२
यद् दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

(वज्रहस्त-इन्द्र) हे ओजरूप हस्तवाले—पापहननसाधनवाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (नः) हमारे लिये (ज्येष्ठम्) सर्वमहान् (ओजिष्ठम्) अत्यन्त आत्मबलयुक्त—ऊंचे आध्यात्मिक (श्रवः) अन्न—आनन्दभोग को (आभर) आभरित कर—प्रदान कर (यत्) जिसे (दिधृक्षेम) हम धारण करना चाहते हैं (सुशिप्र) हे व्यापन गतिवाले तू (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को

† "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० १।१९३]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पप्राः) अपनी व्यापकता से पूर्ण किए हुए—भरे हुए है, अतः हमारे अन्दर अपना आनन्दभोग भर दे।

हे ओजरूप पापहननसाधनवाले ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तू हमारे लिये सर्वमहान्—सर्वोत्तम अत्यन्त ओजपूर्ण तृप्तिकारक आनन्दभोग को प्रदान कर जिसे हम धारण करना चाहते हैं, हे सुन्दर व्यापनगतिवाले तू ऊपर नीचे के दोनों द्युलोक पृथिवीलोक को अपनी व्यापकता से पूर्ण कर रहा है—भरता है अतः हमारे अन्दर भी श्रेष्ठ आनन्दभोग को भर दे ॥ १ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसने वाला उपासक)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक्
॥ २ ॥

(इन्द्रः) परमात्मा (जगतः) जङ्गम—पशुपक्षी सरीसृपका भोगदाता (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का कर्मफलविधाता मोक्ष प्रदाता "चर्षणयः-मनुष्याः" [निघं० २।३] (राजा) स्वामी है (यत्-विश्वरूपम्-अधिक्षमा) जो भी सब रूपवाली वस्तु पृथिवी पर हैं (अस्य) इस परमात्मा की है (ततः) पुनः (दाशुषे) दाता के लिये (वसूनि-ददाति) धनों को देता है (उपस्तुतं राधः-चित्) प्रार्थित धन को भी (अर्वाक् चोदत्) प्रार्थी की ओर प्रेरित करता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा पशुपक्षी आदि साधारण प्राणियों को भोग देने वाला मनुष्यों का कर्मविधाता और मोक्षप्रदाता राजा है स्वामी है जो भी विस्तृत सृष्टि में है सब उसका ही है प्रार्थी को प्रार्थित धन का प्रदान करता है अपना स्वामी बना लेने पर ॥ २ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव वाला उपासक)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३क २र
यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः ।
१ २ ३ १ २ ३२
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥

(यस्य रजोयुजः-इन्द्रस्य) जिस ज्योतिर्मय "ज्योतीरज उच्यते" [निरु० ४।१९] ऐश्वर्यवान् परमात्मा का (इदं वनं स्वः) यह सांसारिक सुख (तुजे जने) दाता—आत्मसमर्पणकर्ता के लिये है, उसके लिये (बृहत्-रन्त्यम्) महान् रमणीय मोक्षानन्द भी है ।

जो मनुष्य अपना समर्पण ज्योतिःस्वरूप ऐश्वर्यवान् परमात्मा के प्रति करदेता है उस ऐसे समर्पणकर्ता के लिये सांसारिक भोग-सुख भी है और महान् रमणीय मोक्षानन्द भी है ॥ ३ ॥

ऋषिः—आजीगर्तः शुनः शेपः (इन्द्रियभोगों की दौड़ में शरीरगर्त में गिरा विषयलोलुप उत्थान का इच्छुक)

देवता—वरुणः (वरनेयोग्य और वरनेवाला परमात्मा)

छन्दः—चतुष्पदा गायत्री ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २ ३ १ २
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय ।
१ २ ३ २ ३१२ २२ ३ २ ३ १ २
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥

(वरुण) हे वरनेयोग्य और वरनेवाले परमात्मन् ! तू (अस्मत्) हमसे (उत्तमं पाशम्-उच्छ्रथय) प्रमुख कठिन पाश अविवेककृत कारणशरीररूप लोहबन्धन को उखाड़ दे—तोड़ दे (मध्यमं वि०) मध्यम पाश— वासनाकृत सूक्ष्म शरीररूप आवरणबन्धन को विच्छिन्न कर दे—चीर दे—फाड़ दे (अधमम्-अव) निकृष्ट पाश—भोगकृत स्थूलशरीररूप ग्रन्थिबन्धन को ढीला कर दे—खोल दे (अथ) अनन्तर—फिर (वयम्) हम (अनागसः) पापरहित हुए (आदित्य) हे अदिति—अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के स्वामिन् ! (तव व्रते) तेरे वरण—उपासना में (अदितये स्याम) अखण्ड सुखसम्पत्ति—मुक्ति के लिये योग्य हो जावें ।

निष्पाप होकर परमात्मा के सद्व्रते ध्यानोपासन में वर्तमान रहने पर उपासक के तीनों बन्धन कारण शरीर सूक्ष्मशरीर स्थूल शरीर को परमात्मा दूर कर देता है पुनः उपासक आत्मा अखण्ड सुखसम्पत्ति मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी और हर्षालु)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १र २र ३ १ ३ १र २र ३ १ २
त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम शश्वत् ।
१ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः ॥ ५ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (वयम्) हम (त्वया पवमानेन) तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के साथ—सहाय्य से (भरे) इस धारण किए जीवन में (शश्वत्-कृतम्) सत् कर्म—श्रेष्ठ कर्म को "धीराणां शश्वताम्" [अथर्व० २०।१२८।४] (विचिनुयाम) विशेषरूप से अन्दर धारण करें—आचरित करें (नः-तत्) हमारे उस सत् कर्म को तेरे रचे (मित्रः) सूर्य स्वप्रकाशद्वारा (वरुणः) मेघ वृष्टिद्वारा (अदितिः) अग्नि "अदितिरप्यग्निरुच्यते" [निरु० ४।२३] तापद्वारा (सिन्धुः) स्यन्दनशील—बहने वाले जल अन्नद्वारा (पृथिवी) भूमि वासद्वारा (उत) अपि—और (द्यौः) द्युलोक नक्षत्रदर्शन—ग्रहविज्ञानद्वारा (मामहन्ताम्) प्रवृद्ध करें । अथवा तू स्वयं (मित्रः) प्रेरणा करने वाला (वरुणः) वरनेवाला (अदितिः) अदीनशक्तिमान् (सिन्धुः) व्यापनशील (पृथिवी) प्रथित आधाररूप (उत) और (द्यौः) प्रकाशस्वरूप हुआ (मामहन्ताम्) बढ़ावें ।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! तुझ आनन्दधारा में प्राप्त होने वाले के साथ हम अपने इस धारण किए शरीर में श्रेष्ठकर्म धारण करते रहें, तू भी मित्र आदि स्वरूपों में वर्तमान हुआ उसे बढ़ाता रह एवं तेरे रचे मित्र—सूर्य आदि भी उसे बढ़ाते रहें ॥ ५ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेव जिसका है ऐसा—उपासक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता—विश्वेदेवाः (प्राण †)

छन्दः—एकपदा गायत्री ।

३ १२ २२ ३ २उ ३ २
इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥

हे विश्वेदेवो—प्राणो ! (इमं माम्) इस मुझे (उत) अपि—हाँ ! (वृषणम्-एकम्-इत् कृणुत) सुखवर्षक केवल स्वस्वरूप में अवश्य करदो ।

हे मेरे प्राणो ! सुखों की प्राप्ति के लिये मैं पराधीन होकर न न ऐसे इन्द्रिय सुख का व्यसन रहे जो मेरे केवल स्वरूप से पृथक् करदे, अपितु वे सुख मेरे चेतन स्वरूप के दास रहें मैं उनका दास न बनूं, हाँ वास्तविक स्वस्वरूप में आकर जो परमात्मा का आनन्द है उसे ही उसके आधार पर अपने अन्दर सींचता रहूँ "परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते" [छान्दो० ८।१२।३] ॥६॥

ऋषिः—अमहीयुः (पृथिवी का नहीं मोक्ष को चाहनेवाला उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

३ १२ २२
वरिवोवित् परिस्रव ॥ ७ ॥

† "प्राणा वै विश्वेदेवाः" [श० १४।२।२।३७]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) वह तू (वरिवोवित्) अत्यन्त अभीष्टरूप अमृतधन मोक्षैश्वर्य प्राप्त कराने वाले "वरिवः-धननाम" [निघं० २।१०] शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (मरुद्भ्यः) 'मरुताम्'—"षष्ठ्यर्थे चतुर्थीत्यपि" प्राणों के "प्राणो वै मरुतः" [ऐ० ३।१६] (वरुणाय) शरीरधारणसमय वरनवाले—(यज्यवे) उनका यजन करने वाले—अध्यात्मयज्ञ में लगाने वाले—अपवर्गप्राप्ति में दान करने वाले—(इन्द्राय) आत्मा के लिये (परिस्रव) पूर्णरूप में या मेरे सब ओर आनन्दधारा में प्राप्त हो।

वह शान्तस्वरूप परमात्मा अमृतधन—मोक्षैश्वर्य का अत्यन्त प्राप्त कराने वाला तथा शरीरधारणार्थ प्राणों के वरनेवाले अध्यात्मयज्ञ में उन्हें यजन करने वाले आत्मा के लिये पूर्णरूप से या सब ओर आनन्दधारारूप में प्राप्त होता है॥ ७॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

३ १र २र ३२३ ३ २ ३ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
१ २
सिषासन्तो वनामहे॥ ८॥

(मानुषाणाम्) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! मननशील जनों के (एना विश्वानि द्युम्नानि) इन सब प्रकार वाले शोभनयश अन्नधनों को (सिषासन्तः) सेवन करते हुए हम (अर्यः) 'अर्यम् विभक्तिव्यत्ययः', तुझ स्वामी को "अर्यः स्वामिवैश्ययोः"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[अष्टा० ३।१।१०३] (वनामहे) चाहते हैं "वनु याचने" [तनादि०]।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! मनुष्यों के हितकर सभी प्रशंसनीय यश बलधनों को हम उपासक सेवन करते हुए तुझ स्वामी को मांगते हैं—चाहते हैं, ऊंची सांसारिक सम्पत्ति प्राप्त करने के अनन्तर परमात्मा का सङ्ग और उसके आनन्द की भी याचना करते हैं ॥ ८ ॥

ऋषिः—आत्मा (आत्मानुभूतिवाला उपासक)

देवता—अन्नम् (सब भूतों का आत्मा—परमात्मा †)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥६॥

(ऋतस्य) वेदज्ञान का "ब्रह्म वा ऋतम्" [श० ४।१।४।१०] (प्रथमजाः) 'प्रथमः सन् जनयिता' प्रथम होता हुआ जनयिता—आविष्कर्ता—प्रकाशक (देवेभ्यः) उत्कृष्ट विद्वानों के लिये (अमृतस्य) मोक्षसुख का (पूर्वं नाम) शाश्वत नमाने वाले "नाम सन्नामयति" [निरु० ४।२७] (अहम्-अस्मि) मैं परमात्मा हूँ (यः) जो (मा ददाति) 'मह्यम्-ङे स्थानेऽम् प्रत्ययश्छान्दसः' मेरे लिये अपने को देता है—समर्पित करता है (सः-इत्-एवम्-आवत्) वह ही हाँ मुझे आलिङ्गित करता है

† "अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा" [गो० २।१।२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अवरक्षण...आलिङ्गन...वृद्धिषु" [भ्वादि०] (अहम्-अन्नम्) कारण कि मैं उसका अन्न हूँ—अन्नरूप आत्मा—आधार हूँ "अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा" [गो० २।१।३] (अन्नम्-अदन्तम्-अद्मि) अन्नरूप तुझ खाते हुए को मैं खाता हूँ अपने अन्दर ग्रहण करता हूँ—स्वीकार करता हूँ "अत्ता चराचरग्रहणात्" [वेदान्त दर्शनम्] कारण कि वह मुझे अपनाता है मैं उसे अपनाता हूँ।

वेदज्ञान का प्रथम से प्रकाशक तथा जीवन्मुक्तों के लिये अमृत मोक्षानन्द को शाश्वतिक नमाने वाला—प्राप्त कराने वाला मैं परमात्मा हूँ, जो मुझे अपना समर्पण करता है वह ही मेरा आलिङ्गन करता है उसका मैं अन्नरूप आत्मा आधार हूँ अन्नरूप मुझे खाते हुए को मैं खाता हूँ अपने अन्दर स्वीकार करता हूँ—अपनाता हूँ ॥ ९ ॥

द्वितीय खण्ड

ऋषिः—श्रुतकक्षः (सुन लिया अध्यात्मकक्ष जिसने ऐसा उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २   ३ २ ३ १ २
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
१ २   ३ २ ३ १ २
परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (कृष्णासु) कृष्णरंगवाली रसवाहिनी नाड़ियों में (रोहिणीषु) रक्तवाहिनी नाड़ियों में (परुष्णीषु) ज्ञानवाहिनी नाड़ियों में (एतत्) यह रुशत्) ज्वलित—रोचमान "रुशत···रोचमान" "रुशत वर्णनाम रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः" [निरु० ६।१४] (पयः) प्राण को "प्राणः पयः" [श० ६।५।४।१५] (अधारयः) धारण करा।

ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे शरीर की रसवाहिनी नाड़ियों में रक्तवाहिनी नाड़ियों में तथा ज्ञानवाहिनी नाड़ियों में इस अध्यात्मप्रेरक रोचमान प्राण को धारण करा, अध्यात्मविरोधी रस, रक्त और ज्ञान का वहन करने वाला न हो किन्तु रोचमान प्राण उनमें कार्य करता रहे ॥ १ ॥

ऋषिः—पवित्रः (कामक्रोध आदि को दूर कर निर्मल हुआ उपासक)

देवता—पवमानः सोमः (आनन्दधारा में प्राप्त होने वाला परमात्मा)

छन्दः—जगती।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः
३ २ ३ २ ३ १ २
पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥

(भुवनेषु वाजयुः) अध्यात्मयज्ञों में उपासकों के वाज—अमृत अन्न को चाहने वाला "छन्दसि परेच्छायामपि क्यच्"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पृश्निः) अपनी आनन्दधाराओं से उपासकों को स्पर्श करने वाला शान्त परमात्मा "पृश्निः....संस्प्रष्टा" [निरु० २।१४] "स्पृशेर्निः" [उणा० ४।५२] (अग्रियः-उक्षा) श्रेष्ठ कामनावर्षक (मिमेति) प्राप्त होता है "मी गतौ" [चुरादि०] "बहुलं छन्दसि-श्लुः" [अष्टा० २।४।७६] (उषसः-अरूरुचत्) उपासकों में ज्ञान-ज्योतियों को चमकाता है (अस्य मायया) इसकी प्रज्ञा से—सर्वज्ञता से (मायाविनः-ममिरे) उपासक प्रज्ञावाले बन जाते हैं (नृचक्षसः पितरः) नरों—शिष्य आदि को ज्ञानदृष्टि देने वाले गुरुजन "ये वै विद्वांसस्ते नृचक्षसः" [काठ० २१।१] तथा पुत्रों के पालन करने वाले वंश के पिता आदि (गर्भम्-आदधुः) स्तुति योग्य परमात्मा को अन्दर आधान करते हैं "गर्भो गृणात्यर्थे" [निरु० १०।२३]।

शान्तस्वरूप परमात्मा अपनी आनन्दधाराओं से अध्यात्मयज्ञों में उपासकों के लिये अमृतभोग का चाहने वाला श्रेष्ठ कामना-वर्षकरूप में प्राप्त होता है, तथा उपासकों के अन्दर ज्ञानज्योतियों को चमकाता है, अपनी सर्वज्ञता से उपासकों को प्रज्ञावाले बनाता है, ऐसे स्तुतियोग्य परमात्मा को विद्वान् गुरुजन और पितृजन अन्दर धारण की परम्परा शिष्यों पुत्रों में चलाते हैं ॥ २ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः (सर्वमित्र आचार्य से सम्बद्ध मधुर इच्छावाला)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः— गायत्री ।

२ ३२उ ३ २ ३ १२ १ ३ १ ३ १ २
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आवचोयुजा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वचोयुजा हर्योः) अपने वचन—आदेश या प्रार्थना से युक्त होने वाले दुःखापहर्ता और सुखाहर्ता दोनों ज्योति और स्नेह या कृपा और प्रसाद का (संचा-आमिश्लः) समन्तरूप से उपासक में मेल कराने वाला है तथा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमात्मा (वज्री हिरण्ययः) ओजस्वी "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] और सुशोभन है।

परमात्मा के आदेश से या उपासक की प्रार्थना से युक्त होने वाले ज्योति और स्नेह या कृपा और प्रसाद का साथ सम्यक् मिश्रण करनेवाला ऐश्वर्यवान् परमात्मा है और वह अपने रूप में ओजस्वी तथा सुशोभन है उसकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
३ २ ३ १ २ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू (उग्रः) तेजस्वी हुआ (उग्रेभिः-ऊतिभिः) अपनी तेजस्वी रक्षाविधियों के द्वारा (वाजेषु) इन्द्रिय विषयरूप साधारण संघर्षप्रसङ्गों में (च) और (सहस्र-प्रधनेषु) बहुतवार होने वाले कामादिसम्बन्धी मानस संग्रामों में (नः-अव) हमारी रक्षा कर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय तेजस्वी परमात्मा अपनी तेजस्वी रक्षाविधियों के द्वारा भोगसघर्षों में और सहस्रवार सताने वाले कामादिसम्बन्धी मानस संग्रामों में हमारी रक्षा किया करता है, अतः उसकी उपसना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

ऋषिः—वसिष्ठः (परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक)

देवता—विश्वेदेवाः (समस्त दिव्यगुणवाला परमात्मा तथा मोक्षधाम †)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३
प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
३ १र २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णोरथन्तरमाजभारा वसिष्ठः ॥ ५ ॥

(आनुष्टुभस्य) अनुष्टुभ्—अनुक्रम से किए अर्चन स्तवन द्वारा सिद्ध होने वाले—"स्तोभति-अर्चतिकर्मा" [निघं० ३।१] (धातुः) विधाता—(सवितुः) प्रेरक—(विष्णोः) व्यापक परमात्मा का (यत्-हविषः-हविः) जोकि 'हविषाम्' हवियों का हवि—अनेक उपहारों में उपहार (रथन्तरम्) अत्यन्त रमणीय या अत्यन्तरसरूप अमृतानन्द है "रसतमं ह वै तद् रथन्तरमित्याचक्षते परोक्षम्" [श० ९।१।२।३६] (द्युतानात्) प्रकाशमय मोक्षधाम से "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३] (वसिष्ठः) परमात्मा में अत्यन्त वसनेवाला उपासक "ये वै ब्राह्मणाः शुश्रुवांसो वसिष्ठाः" [जै० २।२४२] (आजहार) ले

† "स्वर्ग एव लोको विश्वेदेवाः" [जै० १।३३५]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है (यस्य) जिस वसिष्ठ उपासक आत्मा का (प्रथः-च सप्रथः-च नाम) प्रथ—प्रख्यातगुण—ज्ञान—वैराग्य "ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्" [योग० १।१६ व्यास:] और सप्रथ—प्रख्यात सहकारी कर्म—यत्न—अभ्यास "स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" [योग० १।१३] नमाने वाला साधन है।

निरन्तर उपासना स्तुति से सिद्ध—अनुभूत—अनुकूल होने वाले विधाता कर्मफलप्रदाता प्रेरक विभु परमात्मा का जो उपहारों में श्रेष्ठ उपहार अत्यन्त रमणीय अतीव रसरूप अमृत आनन्द है उसे मोक्षधाम से परमात्मा में अत्यन्त बसनेवाला उपासक ज्ञानमय वैराग्य और योगरूप अभ्यास के द्वारा अपने अन्दर ले आता है, ये दोनों उपासक की ओर नमाने के साधन हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (मेधावी और परमात्मा की उपासना में तृप्त)

देवता—वायुः (अध्यात्म जीवनदाता परमात्मा)

छन्द—गायत्री ।

३ १ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
नियुत्वान् वायवागह्ययँ शुक्रा अयामि ते ।
१ २ ३ २ ३ २
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥

(वायो) हे अध्यात्म जीवनप्रद परमात्मन् ! तू (नियुत्वान्) मुमुक्षुजनों का आधार तथा सर्वेश्वर होता हुआ "वायुर्देवानां विशां नेता नियुतो देवानां विशः" [काठ० १२।१३] "नियुत्वान्-ईश्वरनाम" [निघं० २।१२] (आगहि) आ—प्राप्त हो (ते)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे लिये (शुक्र:-अयामि) निर्मल उपासनारस "शुक्र:-निर्मल: सोम:" [श० ३।३।३।६] "वायवायाहि दर्शत इमे सोमा अर कृता:" [ऋ० १।२।१] 'इति यथा' मेरे द्वारा नियत है—समर्पित है (सुन्वत:-गृहं गन्तासि) उपासनारस के निष्पादन करने वाले उपासक के हृदयसदन को प्राप्त होता है।

हे अध्यात्मजीवनप्रद परमात्मन्! तू सर्वेश्वर मुमुक्षुजनों का आधार होता हुआ मेरे हृदयसदन में आजा, तेरे लिये उपासनारस समर्पित है तुझे निश्चय आना होगा ॥ ६ ॥

ऋषि:—नृमेधपुरुमेधावृषी (मुमुक्षु मेधावी और बहुत मेधा-वाला उपासक)

देवता—इन्द्र: (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्द:—अनुष्टुप्।

१र २र ३ १ २ ३ १ २
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय।
१ २ ३ १ २ ३ २ १ ३ १र २र
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥

(अपूर्व्य मघवन्) पूर्ववर्ती माता पिता तथा कारण से रहित शाश्वतिक प्रशस्तज्ञानधनवाले परमात्मन्! (वृत्रहत्याय) आत्म-स्वरूप को आवृत करने वाले अज्ञानपाप को नष्ट करने के लिये (यद्) जब (अजायथा:) उपासक के अन्दर साक्षात् होता है (तद्) तब (पृथिवीम्) उपासक की पार्थिव देह को (अप्रथय) प्रख्यात करता है तेजस्वी बनाता है (उत-उ) और (तद्) तभी (दिवम्) द्योतमान अमृतधाम—मोक्षधाम को भी तू (अस्तभ्ना:)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित रखता है "द्यौरपराजिताऽमृतेन विष्टा" [तै० सं० ४।४।५।२] "त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]।

इन्द्र—ऐश्वर्यवान् परमात्मा का कोई पूर्ववर्ती वंश्य नहीं और न उपादान कारण है वह तो शाश्वत तथा प्रशस्त ज्ञानधनवाला है, अज्ञानपाप को नष्ट करने के लिये उपासक के अन्दर साक्षात् हो जाता है भोगाश्रय पार्थिवदेह को तेजस्वी कर देता है और अपवर्गाश्रय अमृतधाम मोक्षधाम को भी सुरक्षित कर देता है ॥७॥

तृतीय खण्ड

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय परमात्मदेव वाला)

देवता—प्रजापतिः (समस्त प्राणिप्रजा का रक्षक विशेषतः उपासकप्रजा का पालक)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

२ ३ १२ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १र २र
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः ।
३ २ ३ १ २ ३ १र २
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृꣳहतु ॥ १ ॥

(मयि) मेरे में (वर्चः) आत्मबल (अथ-उ) और (यशः) मानस उत्कर्ष (अथ-उ) और (यज्ञस्य यत् पयः) श्रेष्ठकर्म 'यज्ञः-प्रथमास्थाने षष्ठी छान्दसी' जो इन्द्रिय संयम है उसको (परमेष्ठी प्रजापतिः) परम मोक्षधाम में स्थित मुक्त प्रजा का पालक स्वामी परमात्मा (दिवि द्याम्-इव दृंहतु) द्युमण्डल में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति की भांति स्थिर करे "दिवि ते बृहद् भा इत्याह सुवर्ग एवास्मै लोके ज्योतिर्दधाति" [तै० सं० ३।४।३।६]।

मेरे में आत्मबल मेरे में मानस उत्कर्ष—पवित्रभाव मेरे में ऐन्द्रियिक संयम को मोक्षधाम का अधिष्ठाता मुक्तात्माओं का रक्षक स्वामी परमात्मा स्थिर करे जैसे उसने द्युमण्डल में ज्योति को स्थिर किया है जिससे मैं अपने आत्मा मन और इन्द्रियों को परिष्कृत कर उस परमात्मा और मोक्षधाम को प्राप्त कर सकूं ॥१॥

ऋषिः—गोतमः (परमात्मा के प्रति अत्यन्त गतिशील उपासक)

देवता—पवमानः (आनन्दधारा में प्राप्त होता हुआ परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३
सं ते पयाꣳसि समुयन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमाति-
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
षाहः। आप्यमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन् ! (ते-अभिमातिषाहः) तुझ पापभावनाओं काम आदि को सहने दबाने—नष्ट करने वाले के "पाप्मा वा अभिमातिः" [काठ० १३।२] (पयांसि-अमृताय संयन्तु) ज्ञानमय तेज—तेजोरूपधाराएं "एतत् सोमस्य तेजः-यत् पयः" [तै० सं० २।५।२।७] अमृत—अमर हुए जीवन्मुक्त के लिये सम्प्राप्त हों (वाजाः सम्-उ) अमृत अन्न—अनश्वरभोग अवश्य सम्प्राप्त हों (वृष्ण्यानि सम्) रेतःसामर्थ्य भी सम्प्राप्त हों

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाह इति संरेतांसि पाप्मसह इत्येतत्" [श० ७।३।१।४६] तथा (दिवि) मोक्षधाम में (उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) उत्कृष्ट श्रवः-प्रशंसनीय यश—यशस्वी प्रवृत्तियों को धारण करा।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तुझ काम आदि पापभावनाओं के दबाने नष्ट करने वाले के ज्ञानमय तेजप्रवाह अमरयश को प्राप्त हुए मुक्त जीवन्मुक्त को सम्प्राप्त हों—होते हैं अमृतभोग तथा मोक्षधाम में ऊंची यशस्वी प्रवृत्तियां भी धारण करा—करता है ॥ २ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

२ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
१र २र ३ २ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
त्वमा ततनोरुर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३॥

(सोम) हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! (त्वम्) तू (इमाः-विश्वाः-ओषधीः-अजनयः) इन समस्त ओषधियों—तापनाशक द्रव्यों को उत्पन्न करता है (त्वम्-अपः) तू शान्तिकारक जलों को उत्पन्न करता है (त्वं गाः) तू निर्वाह के साधन गौ आदि पशुओं तथा निवास के आश्रय पृथिवी प्रदेशों को उत्पन्न करता है (त्वम्-उरु-अन्तरिक्षम्-आततनोः) तू अवकाशप्रद महान् खुले आकाश को समन्तरूप से तानता है (त्वं ज्योतिषा तमः-वि ववर्थ)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू ज्योति से अज्ञान तथा अन्धकार को अलग करता है हटाता है।

हे शान्तस्वरूप परमात्मन्! तू बड़ा महान् उपकारक है अपनी हम प्रजाओं के ताप भूख हरने के लिये ओषधियों को—शान्तिकारक जलों को जीवननिर्वाहक गौओं निवासाश्रय के लिये भू-प्रदेशों को अवकाशदानार्थ खुले आकाश को उत्पन्न करता है तथा अज्ञान अन्धकार के निवारणार्थ ज्योति को प्रकट करता है, सचमुच तू सर्वथा उपासनीय स्तुतियोग्य है ॥ ३ ॥

ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः (सर्वमित्र उदार महात्मा से सम्बद्ध मधुर इच्छा वाला)

देवता—अग्निः (स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—गायत्री।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
१ २ ३ १ २
होतारं रत्नधातमम् ॥ ४ ॥

(यज्ञस्य) महिमारूप सृष्टियज्ञ के "यज्ञो वै महिमा" [श० ६।३।१।१८] "एतावानस्य महिमा" [ऋ० १०।९०।३] (पुरोहितम्) पूर्व से वर्तमान हुए अपने अन्दर धारणकर्ता—(देवम्) प्रकाशक तथा भोग मोक्षप्रदाता—(ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में जड़ जङ्गम रचयिता—(होतारम्) होमने वाले यजमानरूप—(रत्नधातमम्) रमणीय पदार्थों के अत्यन्त धारक—(अग्निम्) ज्ञानप्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मा को (इडे) स्तुत करूं—स्तुति में लाऊं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा इस सृष्टियज्ञ का अकेला ही पुरोहित भी है सृष्टि से पूर्व वर्तमान होते हुए इसे धारण कर रहा है, वही देव भी है भोग और मोक्ष को देता है उपासक की उपासनारूप हवि को लेता है, ऋत्विक् भी है ऋतु ऋतु में अणुओं का परस्पर योग कर रचयिता है, होता यजमान भी है परिणाम या रूपान्तर करता है रत्नधातम—यज्ञमण्डप भी है सब रमणीय वस्तुओं का आश्रय है और अग्नि भी वही है इसे आगे परिवर्तन करने वाला वही उस ऐसे गुणों वाले की स्तुति मैं करता रहूँ ॥ ४ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देववाला)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ २३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।

१ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २

ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥५॥

(ते) हे अग्ने ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तेरे (गोनां प्रथमं नाम) वेदवाणियों में कहे प्रमुख नाम 'ओ३म्' को (मन्वत) मानती हैं (परमं नाम त्रिः सप्त) 'परे भवं परमम्' मुख्य नाम के परे—अन्त में द्वितीय कोटि का "अन्तो वै परमम्" [ऐ० ५।२१] गौणिक और कार्मिक नाम इक्कीस छन्दों गायत्री आदि छन्दोंयुक्त मन्त्रों में सविता, विष्णु आदि नाम भी (जानन्) जानती हैं (जानतीः) जानती हुईं (ता-क्षाः) वे तेरे आश्रय में—तेरे में ही निवास करने वाली मनुष्य प्रजाएं (अभ्यनूषत) तेरी भली प्रकार स्तुति करती हैं इस प्रकार वे (गावः) स्तुति करनेवाली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यप्रजाएं "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] (यशसा) यश से (अरुणीः-आविः-भुवन्) तेजस्वी प्रसिद्ध हो गईं—हो जाती हैं ।

हे ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मन्! वेदवाणियों में कहे तेरे प्रमुख नाम 'ओ३म्' के पश्चात् द्वितीय कोटि में आनेवाले गायत्री आदि इक्कीस छन्दों वाले मन्त्रों में कहे सविता आदि गौणिक और कार्मिक नामों को जानती हुईं तेरे आश्रय में निवास करती हुईं मनुष्यप्रजाएं तेरी स्तुति करती हैं तो यशोमय जीवन में प्रसिद्ध हो जाती हैं ॥ ५ ॥

ऋषिः—गृत्समदः (स्तुतिकर्ता हर्षालु उपासक)

देवता—पूर्ववत् ।

छन्दः—पूर्ववत् ।

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ ३ २ ३क २र
समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र १ २ ३ १ २
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसं समपान्नपातमुपयन्त्यापः ॥६॥

(समानम्-ऊर्वम्) समान—एक ही नदियों के आश्रयरूप आच्छादन या वरण करनेवाले महानद समुद्र को 'ऊर्वी उर्व्यः-नदीनाम" [निघं० १।१३] "उर्वी-ऊर्णोति वृणोतेरित्यौपमन्यवः" [निरु० २।२७] 'छान्दसं रूपम्' (नद्यः पृणन्ति) नदियां तृप्त करना चाहती हैं—भरना चाहती हैं 'अन्तर्गत सन्नर्थः' अथवा (नद्यः-स्पृणन्ति) नदियां समुद्र की ओर चलती हैं जाती हैं "स्पृ प्रीतिचलनयोः" [स्वादि०] 'विकरण व्यत्ययेन श्ना' परन्तु उनमें (अन्याः-उपयन्ति) सब नहीं विरली नदियां समुद्र को प्राप्त

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं। इसी प्रकार (शुचयः-आपः) पवित्र—पापरहित एवं ज्ञानवैराग्य से प्रकाशमान आध्यात्मिक आप्तमनुष्य "आपोऽद्दिति या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मम्" [कौ० ७।४] "मनुष्या वा आपश्चन्द्राः" [श० ७।३।१।२०] (तम्-उ) उस ही (शुचिं दीदिवांसम्) पवित्र—पापसम्पर्करहित सर्वज्ञ अत्यन्त प्रकाशमान—(अपान्नपातम्) आप्तजनों को न गिरानेवाले परमात्मा को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं।

जैसे अपने वरनेवाले समानरूप समुद्र को नदियां भरना या प्राप्त होना चाहती हैं परन्तु विरली नदियां समुद्र तक पहुँचती हैं, ऐसे ही पवित्र निष्पाप ज्ञानवैराग्य से प्रकाशमान आध्मात्मिक आप्त मनुष्य इस अपने इष्टदेव पवित्र निष्पाप सर्वज्ञ अत्यन्त प्रकाशमान आप्त मुमुक्षुओं को अपनाने वाले परमात्मा को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपासनीय देववाला)

देवता—रात्रिः (सुखदात्री परमात्मा की छाया शरण)

छन्दः—अनुष्टुप्।

१र २र ३ १ २ ३१र २र ३१र २र
आ प्रागाद् भद्रा युवतिरह्नः केतून् समीर्त्सति।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभूद् भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥

(रात्री) उपासकों को रमण कराने वाली या आनन्द देने वाली परमात्मा की श्री—आश्रयरूपा छाया, रक्षा "यस्यच्छायाऽमृतम्" [ऋ० १०।१२१।२] "रात्रिरेव श्रीः" [श० १०।२।६।१६] "क्षेमो रात्रिः" [श० १३।१।४।३] (भद्रा) कल्याणरूपा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणकारिणी (युवतिः) दुःखबन्धन से अलग करने और मोक्षानन्द से मिलाने वाली (अह्नः केतून्) अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले ज्ञानानन्द का उपहार देने वाले प्रेरक परमात्मा के "अहरेव सविता" [गो० १।१।३३] प्रज्ञानों—बोधप्रेरणाओं या झांकियों को "केतुः प्रज्ञानम्" [निघं० ३।९] (समीर्त्सति) समृद्ध करती है (भद्रा) वह कल्याणरूपा (विश्वस्य जगतः) समस्त उपासक या मनुष्यमात्र की (निवेशनी-अभूत्) अपने में निवेश—पूर्ण आश्रय देने वाली है।

उपासकों को रमण कराने वाली या आनन्द देने वाली परमात्मा की श्री—आश्रयरूपा छाया रक्षा कल्याणकारी दुःखबन्धन से अलग करने और सुख मोक्षानन्द से मिलाने वाली अज्ञानान्धकार को नष्ट करने ज्ञानानन्द का उपहार देनेवाले प्रेरक परमात्मा के प्रज्ञानों—बोध सङ्केतों को या झांकियों को समृद्धि करती है परमात्मा की ओर गति करने वाले मनुष्यमात्र को आश्रय देने वाली है ॥ ७ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्न का धारणकर्ता उपासक)

देवता—अग्निर्वैश्वानरः (विश्वनायक परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्रत्नस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जात-
२ ३ १ २ ३ १२ २र २ ३ १ २ ३
वेदसे । वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते
१ २ ३ १ २
चारुरग्नये ॥ ८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रत्नस्य) 'प्रत्नाय' सम्पृक्त करने वाले व्यापक—(वृष्णः) 'वृष्णे' कामनावर्षक—(अरुणस्य) अरुणाय तेजस्वी—"चतुर्थ्यर्थे षष्ठी बहुलम्" [अष्टा० २।३।६२] (जातवेदसे नव्यसे वैश्वानराय-अग्नये) सब जानने वाले सबके उत्पादक विश्वनायक अत्यन्त स्तुतियोग्य प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये (नु) शीघ्र (महः-वचः) पूजा करनेवाले वचन (मतिः) स्तुति "मन्यते अर्चति-कर्मा" [निघं० २।६] और (शुचिः-चारुः सोमः) पवित्र सुन्दर या चरणशील उपासनारस (इव) "इवोऽपि दृश्यते" [निरु० १।११] वेदनस्थानों—हृदयों में (पवते) प्राप्त होता है उसे स्वीकार करे ।

सबको सम्पृक्त करने वाले व्यापक कामनावर्षक तेजस्वी सबके ज्ञाता सबके उत्पादक विश्वनायक अत्यन्त स्तुतियोग्य प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये हमारा पूजन आदरवचन प्रार्थना स्तुति और पवित्र सुन्दर उपासनारस हृदयों में शीघ्र प्रवृत्त होता है उसे परमात्मा स्वीकार करे ॥ ८ ॥

ऋषिः—भरद्वाजः (अमृतान्नभोग को अपने में भरने वाला उपासक)

देवता—विश्वेदेवाः ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३१र २र ३ २ ३१र २र ३१र २र २ ३ २
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपांनपाच्च मन्म ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३२र ३ १ २
मा वो वचांसि परि चक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् वेदप्रवक्ता ऋषिजन "विश्वे देवाः सूक्तवाचः" [तै० सं० ३।३।२।१-२] (मम) मेरे (यज्ञम्) अध्यात्मयज्ञ को अनुमोदित करें— उसमें सहयोग देकर बढ़ावें (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी "रोदसी द्यावापृथिवीनाम" [निघं० ३।३०] मेरे पिता और माता "द्यौर्मे पिता माता पृथिवी महीयम्" [ऋ० १।१६४।३३] भी अनुमोदन दें—पुष्ट करें। अथवा विश्वेदेव—इन्द्रियां "प्राणा वै विश्वेदेवाः" [तै० सं० ५।२।२।११] "प्राणा इन्द्रियाणि" [काठ० ८।१] और द्याव-पृथिवी—प्राणोदान "द्यावीपृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२] (च) और (अपान्नपात्) आप्त उपासकों को न गिराने वाला—रक्षा करने वाला अपनाने वाला परमात्मा मेरे (मन्म) मननीय स्तुतिवचन "मन्मभिः-मननीयैः स्तोमैः" [निरु० १०।६] (शृण्वन्तु) सुनें—स्वीकार करें (वः) तुम्हारे लिये (परिचक्ष्याणि वचांसि) निन्दनीय वचनों को (मा वोचम्) मैं न बोलूं—प्रतिकूल न आचरूं (सुम्नेषु-इत्) तुमसे होने वाले सुखों के निमित्त (वः-अन्तमाः-मदेम) तुम्हारे समीप में रहकर हर्षित हों।

हे सब मुमुक्षु ऋषियो ! मेरे अध्यात्मयज्ञ को अनुमोदित करो पुष्ट करो बढ़ाओ, माता पिताओं एवं प्राणोदानो तुम भी बढ़ाओ, आप्त जीवन्मुक्तों का रक्षक अपनाने वाला परमात्मा मननीय स्तुति-वचन को सुने स्वीकार कर मैं तुम्हारे लिये निन्दनीय वचन न बोलूं—प्रतिकूल न आचरूं सुखों के निमित्त तुम्हारे समीप में हर्षित होवें ॥ ९ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेववाला उपासक)

देवता—लिङ्गोक्ताः (मन्त्र में कहे हुए दिव्य नाम)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—महापक्तिः ।

यशो मा द्यावा पृथिवी यशो मेन्द्राबृहस्पती । यशो भगस्य
विन्दतु यशो मा प्रति मुच्यताम् । यशस्व्यस्याः सꣳ
सदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

(द्यावापृथिवी) पिता माता "द्यौर्मे पिता माता पृथिवी महीयम्" [ऋ० १।१६४।३३] (मा यशः) मुझे यश प्राप्ति के कारण हों—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति के कारण बनें "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२।३] (इन्द्राबृहस्पती) शिष्य और गुरु (मा यशः) मुझे यश प्राप्ति के कारण हों—अन्ततः परमात्मा की प्राप्ति के कारण बनें (भगस्य यशः-विन्दतु) ऐश्वर्य का यश प्राप्ति हो—अन्ततः ऐश्वर्य भी परमात्मा को प्राप्त करावे (यशः-मा प्रति मुच्यताम्) यश मुझे ग्रहण करे—यशोरूप परमात्मा मुझे स्वीकार करे "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च" [पार० २।२।११] (अस्याः संसदः) इस मानवसमाज का (अहं यशस्वी प्रवदिता स्याम्) मैं यशस्वी प्रवक्ता—अन्ततः यशोरूप परमात्मा का प्रवक्ता होऊं ।

पिता माता की सेवामें आज्ञापालन में मैं यशस्वी बनूं अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति करूं, शिष्य और गुरु से ऐसेवर्तूं जिससे मैं यशोभाक् बनूं—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति में सहायक बने, ऐश्वर्य का यश पाऊं—अन्ततः यशोरूप परमात्मा की प्राप्ति का साधन बनें, यश मुझे अपनावे अपयश का कार्य न कर पाऊं अन्ततः यशोरूप परमात्मा मुझे प्राप्त हो, मानवसमाज

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का यशस्वी हित वक्ता बनूं अन्ततः यशोरूप परमात्मा का कुशल प्रवक्ता बनूं ॥ १० ॥

ऋषिः—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः (प्राणविद्या में सम्पन्न बहुविध ज्ञानज्योति वाला उपासक)

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥११॥

(इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (नु) शीघ्र शीघ्र—वार वार (वीर्याणि प्रवोचम्) वीरकर्मों को—स्वाधार बलों—पराक्रमों को प्रशंसित करता हूँ (वज्री) वह वज्रवान् उपासक को बन्धन से वर्जित करने वाले—छुड़ाने वाले "वज्रः कस्माद् वर्जयतीति सतः" [निरु० ३।१२] ओजस्वी "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (यानि प्रथमानि चकार) जिन प्रमुख पराक्रमों को करता है, जैसे (अहिम्-अहन्) समन्तरूप से सबके मारक मृत्युरूप सर्प को मारता है "अहिः निर्ह्रसितोपसर्ग आहन्तीति" [निरु० २।१७] (अपः-अनुततर्द) बन्धन के कारणभूत कामनाओं—कामवासनाओं को "आपो वै सर्वे कामाः" [श० १०।५।४।१५] नष्ट कर देता है (पर्वतानां वक्षणाः प्राभिनत्) पर्व—तृप्तिकारक ज्ञानज्योतियों वाले वेदों के "पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा" [निरु० १।२०] "पर्वती भास्वती" [निरु० ९।२५] "पर्वतः पर्ववान्" [निरु० १।२०] "तप् पर्वमरुद्भ्याम्" [अष्टा० ५।२।१२२ वा०] ज्ञानामृत स्रोतों—झरनों को खोलता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वैश्वर्यवान् परमात्मा के वीरकर्मों—स्वाधार पराक्रमों की शीघ्र शीघ्र—वार वार प्रशंसा करता हूँ जो ओजस्वी उपासकों को बन्धन से छुड़ाने वाला भारी पराक्रमों को करता है, सबके मारक मृत्युरूप सर्प को कामवासना को भी नष्ट करता है एवं तृप्तिकारक ज्ञानज्योतियों से पूर्ण वेदों के ज्ञानामृत स्रोतों—झरनों को बहाता है ॥ ११ ॥

ऋषिः—विश्वामित्रः (सबका मित्र उदार उपासक)

देवता—सर्वात्मा-अग्निः (सबका आत्मस्वरूप अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥

(अग्निः) मैं विश्व का अग्रणेता शासक परमात्मा (जन्मना जातवेदाः-अस्मि) जन्म से क्या कहूँ किन्तु जन्मे हुओं को जानने वाला हूँ अर्थात् मेरा जन्म नहीं मैं तो जन्मे हुओं का ज्ञाता हूँ—जन्मरहित शाश्वत सर्वज्ञ हूँ (मे चक्षुः-घृतम्) मेरा नेत्र गोलकरूप नहीं अपितु तेज है "तेजो वै घृतम्" [मै० १।६।८] जिससे मैं नेत्रवालों को नेत्र देता हूँ (मे-आसन्-अमृतम्) मेरे मुख में अमृत है—अमृत ही मुख है (त्रिधातुः-अर्कः) तीनों लोकों पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोकों का धारणकर्ता "स प्रजापतिः-इमान् त्रीन् लोकाँ स्त्रेधाऽदुहत् तत् त्रिधातोस्त्रिधातुत्वम्" [तै० सं० २।३।६।१]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्चनीय देव हूँ। (रजसः-विमानः) लोकमात्र का पृथक् पृथक् गति देने वाला—सञ्चालक हूँ (अजस्रं ज्योतिः) अनश्वर ज्योति—सब ज्योतियों का ज्योति—अमर ज्योति (सर्वं हविः-अस्मि) ओ३म् नामक हवि—ग्रहण करने योग्य—अपने अन्दर धारण करने योग्य हूँ "ओमिति ब्रह्म, ओमितीदं सर्वम्" [तै० आ० ७।८।१]।

मैं विश्व का अग्रणेता शासक परमात्मा जन्म से कौन हूँ क्या कहूँ ! किन्तु जन्मे हुओं को जानने वाला हूँ जन्मरहित शाश्वतिक हूँ मेरी आँख तेज है जिस तेजको आँखों वालों की आँख में देता हूँ, मेरा मुख अमृत है या मेरे मुखमें अमृतवचन है, तीनों पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोकों का धारणकर्ता अर्चनीय देव हूँ लोकमात्र को पृथक् पृथक् गति देने वाला हूँ अनश्वर ज्योति—ज्योतियों का ज्योति ओ३म् नाम अपने अन्दर धारण करने योग्य उपास्य हूँ ॥ १२ ॥

ऋष्यादयः पूर्ववत् ।

२ ३ २ ३१२ २२ ३ १२ २२ ३१२ २२३ १२
पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
२ ३ १ २ ३१ ३१२ २२ ३१२ ३१२३२
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः
॥ १३ ॥

(विपः-अग्निः) विपश्चित्—सर्वज्ञ अग्रणायक परमात्मा "विपः-मेधावी" [निघं० ३।१५] (वेः-अग्र पदं पाति) गतिशील निरन्तर अतनशील आत्मा के अगले पद—जन्मान्तर देह की रक्षा करता है कर्मानुसार सुरक्षित रखता है (यह्वः) महान्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रणेता परमात्मा "यह्वः-महन्नाम" [निघं० ३।३] (सूर्यस्य चरणं पाति) विद्यासूर्य विद्वान् सब इन्द्रियों के स्वामी वशीकर्ता जीवन्मुक्त आत्मा के "तं सर्वाणि भूतानि सोऽयं सोऽयं इत्ययन् तत्सोऽयंस्य सोऽयंत्वं सोऽर्यो नामैष तं सूर्यं इति परोक्षमाचक्षते" [जै० ३।३।५७] "सूर्य आत्मा" [तै० सं० १।४।४३।१] सेवन करने योग्य मोक्ष की रक्षा वाला है (नाभा) नाभि—प्राणों को बान्धने वाला अग्रणेता परमात्मा "नाभिर्वै प्राणान् दाधार" [काठ० ३७।१६] (सप्तशीर्षाणं पाति) सात ऊपरी प्राणवाले आत्मा की रक्षा करता है "प्राणो वै शिरः" [जै० १।२।६८] (ऋष्वः) सबको प्राप्त महान् परमात्मा (देवानाम्-उपमादम्) समस्त उपासक विद्वानों के अभ्युदयरूप सांसारिक हर्षकारी सुख की भी रक्षा करता है।

सर्वज्ञ अग्रणेता परमात्मा एकदेह से दूसरे देह में जाने वाले आत्मा के अगले जन्म की रक्षा करता है—उसे नियत करता है। वह प्राणों को बान्धनेवाला सात ऊपर प्राणों—दो आंखों दो कानों दो नासिकछिद्रों एक मुख से उचित कार्य लेने वाले संयमी की रक्षा करता है सच्चा सुख प्राप्त कराता है जीवन्मुक्त की रक्षा करता है ॥ १३ ॥

चतुर्थ खण्ड

ऋषिः—वामदेवः (वननीय परमात्मदेववाला)

देवता—अग्निः (ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमात्मा)

छन्दः—पंक्तिः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि।
१र २र ३ १ २ ३ २ ३१र २र ३ १ २
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद् रयिं वर्चो दृशे दाः ॥१॥

(समिधान दीदिवः-अग्ने) हे सम्यक् प्रकाशमान अन्यों को प्रकाशित करनेवाले अग्रणायक परमात्मन् ! (भ्राजन्ती जिह्वा) तेरे गुणों का प्रकाश करती हुई वाक्—वाणी "जिह्वा वाङ्नाम" [निघं० १।११] (आसनि-अन्तः-चरति) मुख के अन्दर प्राप्त है (सः-त्वम्) वह तू (वसुविद्-अग्ने) हे धनप्राप्त कराने वाले परमात्मन् ! (दृशे) अपने दर्शनार्थ (नः) हमारे लिये (रयिं वर्चः पयसा) पुष्टि—स्वास्थ्य "पुष्टं वै रयिः" [श० २।३।४।१३] ब्रह्मवर्च को प्राणशक्ति के साथ "प्राणः पयः" [श० ६।५।४।१५] (अदाः) प्रदान कर।

हे स्वयं प्रकाशमान अन्यों को प्रकाशित करनेवाले अग्रणायक परमात्मन् ! तेरे गुणों का प्रकाश करती हुई वाणी मेरे मुख के अन्दर प्राप्त है यह तेरी स्तुति करती रहती है, इस प्रतीकार में तू अपने दर्शनार्थ हमारे लिये पुष्टि स्वास्थ्य प्राणशक्ति और ब्रह्मवर्चस प्रदान कर ॥ १ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—ऋतवः।

छन्दः—पूर्ववत्।

३ १र २र ३ १र २र
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
१ २र ३ ३ १ २ १ ३ १र २र ३ १र २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वसन्तः-इत्-नु रन्त्यः) हे प्रकाशस्वरूप अग्रणेता परमात्मन् ! मेरा प्राण "प्राण एव वसन्तः" [जै० २।५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो प्राणायामादिद्वारा (ग्रीष्मः-इत्-नु रन्त्यः) मेरी वाक्—वाणी "वाग्ग्रीष्मः" [जै० २।५०] हाँ शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो स्तुतिद्वारा (वर्षाणि-अनु) साथ ही मेरी आंख "चक्षुर्वर्षाः" [जै० २।५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे दर्शन की उत्सुकताद्वारा तेरे रचे जगत् में तेरी कला को देख देखकर तेरे पाठ पढ़ पढ़कर (शरदः) मेरा श्रोत्र – कान "श्रोत्रं शरदः" [जै० २।५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे सम्बन्ध में श्रवणद्वारा (हेमन्तः) मेरा मन "मनो हेमन्तः" [जै० २।५१] हाँ शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो तेरे मनन चिन्तनद्वारा (शिशिरः-इत्-नु रन्त्यः) मेरा प्ररिष्ठान नाभि के नीचे का अङ्ग "शिशिरं प्रतिष्ठानम" [मै० ४।९।१८] हो शीघ्र शीघ्र—वार वार तेरे में रमण करने योग्य हो आसन सदाचरण द्वारा।

परमात्मन् ! मेरा प्राण प्राणायामद्वारा मेरा मन मननद्वारा मेरा कान तेरे श्रवणद्वारा मेरी आंख तेरे दर्शन एवं वस्तु वस्तु में तेरी छवी देख तेरे पाठ पढ़ मेरी वाणी तेरी स्तुति गुणगान कर मेरा नाभि का अधोभाग आसन एवं सदाचरण द्वारा तेरे में सदा वार वार समर्पण करने योग्य रहे ॥ २ ॥

ऋषिः—नारायणः (नाराः—नर जिसके सूनुसन्तान हैं ऐसे "आपः-नाराः" अयनज्ञान का आश्रय जिसका हो)

देवता—पुरुषः (सृष्टिपुर में बसा हुआ पूर्णपुरुष परमात्मा)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दः—अनुष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रगात् ।
१२ २२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिꣳ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥३॥

(सहस्रशीर्षा) असंख्यात "सहस्रं बहुनाम" [निघं० ३।१] शिरों वाला अनन्तज्ञानशक्तिमान् (सहस्राक्षः) असंख्यात नेत्रों वाला—अनन्तदर्शनशक्तिमान् (सहस्रपात्) असंख्य पादों वाला—अनन्तगतिशक्तिमान् (पुरुषः) सृष्टि में पूर्ण पुरुष परमात्मा है (सः) वह (भूमिं सर्वतः-वृत्वा) भुवन—जगत् को सब ओर से घेरकर—व्याप्त होकर (दशाङ्गुलम्-अत्यतिष्ठत्) दशाङ्गुल परिमाण वाले—दश अङ्गुलि सङ्केतों से गिने जाने वाले पञ्चस्थूल भूत पञ्च सूक्ष्मभूतरूप जगत् को या दशाङ्गुलिसम्पुट—दोनों हाथों की मुट्ठी में वश किए ब्रह्माण्डगोल को अतिक्रमण कर उससे भी बाहिर अनन्तरूप से रहता है "त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः" [ऋ० १।५२।१२] परमात्मन् ! तू आकाश के भी पार है "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" [ऋ० १०।९०।३]।

समस्त जगत् का रचयिता परमपुरुष परमात्मा इस जगत् के अन्दर पूर्ण हुआ अनन्तज्ञान शक्तिमान्, अनन्तदर्शन शक्तिमान् अनन्तगतिशक्तिमान् है, जगत् के सब पदार्थ उसके ज्ञानमें हैं सब जीवों के कर्मों को जानता है सब उसकी दृष्टि में हैं सबको गति देता है समस्त जगत् में व्याप्त है उसके सम्मुख सीमित है कारण कि उससे बाहिर भी अनन्त है उसकी शरण परमकल्याणप्रद है ॥ ३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिदेवताच्छन्दांसि पूर्ववत्।

३ २ ३ २उ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४॥

(त्रिपात् पुरुषः) तीनपाद—तीनगुणा या तीन अमृतानन्द-रूपों वाला परम पुरुष (उर्ध्वः-उदैत्) नश्वर जगद्रूप से ऊपर उठा हुआ है (अस्य पादः-इह-पुनः-अभवत्) इसका पादमात्र जगद्रूप यहां नीचे पुनः पुनः होता है (तथा) इस रूप में वह (अशनाशने-अभि) भोगनेवाले जङ्गम—चेतन और न भोगनेवाले जड़ को लक्ष्य कर (विष्वङ् व्यक्रामत्) उत्पादन धारण नियन्त्रण कर्म-फल प्रदान आदि विविध शक्तियों से सुगमतया प्राप्त होने वाला परमात्मा अपने विक्रम में रखता है।

पूर्णपुरुष परमात्मा की विराजमानता दो स्थानों में है एक तो स्थान जगत् है जो वार वार उत्पन्न हुआ करता है जिसमें भोगने वाले जङ्गम और न भोगने वाले जड़ उत्पन्न होते रहते हैं, इन्हें परमात्मा अपनी विविध शक्तियों से स्ववश किए हुए है, दूसरा स्थान जगत् से पृथक् अमृतानन्दरूप मोक्ष है, मुमुक्षु उपासक आत्मा उसमें मोक्षानन्द प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिदेवताच्छन्दांसि पूर्ववत्।

१ २ ३२उ ३ २ ३२उ ३ १ २
पुरुष एवेदँ सर्वं यद् भूत यच्च भाव्यम्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरुषे-एव) पूर्णपुरुष परमात्मा के अन्दर ही (इदं सर्वम्) यह सब जगत् है (यत्-भूतं यत्-च भाव्यम्) जो उत्पन्न हुआ जो उत्पन्न होनेवाला है, अतः (सर्वा भूतानि-अस्य पादः) सारी उत्पन्न वस्तुएं और जो उत्पन्न होनेवाली हैं इस पूर्णपुरुष परमात्मा का पादमात्र है—एकदेश या एकअंश मात्र है (अस्य त्रिपात्) इसका तीनपाद जो भूत भविष्य से परे न उत्पन्न होनेवाला अभौतिक (अमृतं दिवि) मृतिरहित—स्थिर द्योतनात्मक मोक्षधाम में है।

पूर्णपुरुष परमात्मा में जो यह उत्पन्न हुआ या उत्पन्न होने वाला जगत् है जिसके अन्दर सब ही जड़ जङ्गम हैं परमात्मा का एकपाद—एकदेश में वर्तमान होने से एकअंश मात्र है परन्तु इसका पादत्रय—तीनपादवाला स्वरूप अमृतानन्द इस भौतिक जगत् से परे है अभौतिक द्योतनात्मक स्वस्वरूप में या मोक्षधाम में है ॥ ५ ॥

ऋषिदेवताच्छन्दांसि पूर्ववत्।

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः।
३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेननातिरोहति ॥६॥

(तावान्-अस्य महिमा) उतना एकपाद मात्र उत्पन्न और उत्पन्न होनेवाला भौतिक जगत् यह सब पूर्णपुरुष परमात्मा की महिमा—स्थूलदृष्टि से परिचय करानेवाली है (च) और (ततः-ज्यायान् पुरुषः) उससे अधिक महान् पूर्णपुरुष परमात्मा है (उत) और वह (अमृतत्वस्य-ईशानः) त्रिपादरूप अमृतस्वरूप का ईश है—स्वामी है (यत्-अन्नेन-अतिरोहति) जोकि कर्मफल भोग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से—भोग का लक्ष्य बना जगत् में आकर अतिरोहण करता है—मोक्ष की ओर जाता है उस जीववर्ग का भी स्वामी है।

जितना भी भौतिक जगत् है जो उत्पन्न हुआ या होनेवाला है वह सब पूर्णपुरुष परमात्मा की महिमा मात्र है पुरुष परमात्मा तो इससे महान् है वह अमृतत्व का स्वामी है और जो कर्मफल भोग के लक्ष्य से आकर पुनः मोक्ष की ओर भी अतिरोहण करता है उस जीववर्ग का भी स्वामी है, उसे ऐसे पुरुष की शरण लेना कल्याणकर है ॥ ६ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—स्रष्टा।

छन्दः—अनुष्टुप्।

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।

२ ३ १र २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥७॥

(ततः-विराट्-अजायत) उस पूर्णपुरुष परमात्मा से विराट्—विविध पदार्थों से राजमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ (विराजः-अधि पुरुषः) विराट्—ब्रह्माण्ड के ऊपर उसका अधिनायक पूर्णपुरुष परमात्मा है (पश्चात् सः-जातः) पश्चात् उस उत्पन्न हुए विराट्—ब्रह्माण्ड ने परमात्मा के अधिष्ठातृत्व में (भूमिम्-अथ पुरः-अति-अरिच्यत) उत्पत्तिस्थान—लोकमात्र को इसके अनन्तर पुरों—जीव-शरीरों को अतिशय से विरेचित किया—बाहिर निकाला—प्रकट किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णपुरुष परमात्मा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न कर इसका अधिष्ठाता बना, फिर ब्रह्माण्ड का विस्तार भूमि आदि भिन्न भिन्न लोकों में हुआ, उनपर भिन्न भिन्न प्राणिदेह—जरायुज अण्डज स्वेदज उद्भिज्ज हुए जिनमें जीवात्मा बन्धे हैं उस उत्पन्नकर्ता परमात्मा को मान और जानकर उसकी स्तुति प्रार्थना उपासना करके बन्धन से छूट मोक्ष और ब्रह्मानन्द को पाता है ॥ ७ ॥

ऋषिः—वामदेवः (वननीय उपास्य परमात्मदेव वाला उपासक)

देवता—द्यावापृथिवी (अमृत प्राण उदान †)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १र
मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि
२र १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
योजनम् । द्यावापृथिवी भवतंᳲ स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः
॥ ८ ॥

(सुभोजसौ द्यावापृथिवी) हे मेरे उत्तम पालन करने वाले प्राण और उदान "द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२] (वाम्) तुम दोनों को (मन्ये) चाहता हूं "मन्यते कान्तिकर्मा" [निघं० २।६] (ये अमितं योजनम्-अभि-अप्रथेथाम्) जो तुम दोनों अपरिमित योजन मुझे जहां युक्त होना हो ऐसे योजनीय मोक्षधाम को सम्मुख प्रसिद्ध करो (द्यावापृथिवी स्योने भवतम्) तुम दोनों प्राण और उदान सुखदायक होओ (ते) वे तुम दोनों

† "द्यावापृथिवी प्राणोदानौ" [श० ४।३।१।२२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अंहसः-मुञ्चतम्) आत्मघात पापबन्धन से छुड़ाओ "पाप्मा वा अंहः" [तै० २।२।७।४] "अंहः....हन्तेः" [निरु० ४।२५]।

हे मेरे जीवन के साथियो उत्तम पालन करने वाले प्राण और उदान ! तुम जन्म से साथ हो मैं तुम्हें चाहता हूँ, तुम संसार में सुखदायक बनो तथा मुझे पापबन्धन से छुड़ाओ और असीम योग मेल के स्थान मोक्ष को मेरे लिये प्रसिद्ध करो जीवन को चलाओ—अध्यात्मक्षेत्र में प्रेरित करो परमात्मा की उपासना में लगो लगाओ ॥ ८ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—अनुष्टुप् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषसो वनर्गवः ॥९॥

(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! (ते) तेरे दिए हुए (श्मश्रूणि) 'श्मश्रुणी-वचनव्यत्ययः' शरीर में—हृदय में "श्म शरीरम्" [निरु० ३।५] "शरीरं हृदयम्" [तै० ३।१०।८।७] श्रित—प्राप्त हुए "श्मश्रुश्मनि श्रितम्" [निरु० ३।५] (हरी) रोगापहरण करने और स्वास्थ्याहरण करने वाले प्राण और उदान दोनों "प्राणो वै हरिः" [कौ० १७।९] (ते) तेरे (हरी हरितौ) अज्ञानान्धकारापहरण करने आनन्दाहरण करने वाले दिव्यस्वरूपों को "हरितेन हिरण्यमयेन" [मै० ४।२।१] ज्योतिःस्वरूप और शान्तस्वरूप "ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी" [ऐ० २।२४]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ज्योतिस्तद्यद्दृक्" [जै० १।७६] "यद्ध वै शिवं शान्तं····तत् साम" [जै० ३।५२] इनको (तं त्वा) और उस तुझको (वनर्गवः) तुझ वननीय सम्भजनीय परमात्मा की ओर जाने वाले विरक्त "वनर्गू वनगामिनौ" [निरु० ३।१४] (कवयः पुरुषासः) विद्वान् जन "ये विद्वांसस्ते कवयः" [ऐ० २।२] (स्तुवन्ति) स्तुत—प्रशंसित करते हैं।

हे ऐश्वर्यवन् परमात्मन्! तेरे दिए हुए तेरे रचे हुए शरीर में—हृदय में प्राप्त रोगापहर्ता स्वास्थ्याहर्ता अज्ञाननाशक और आनन्दप्रापक दिव्यप्राण और उदान को साधने वाले विरक्त जन तेरी स्तुति प्रशंसा करते हैं॥ ९॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—आत्मा (स्वात्मा और परमात्मा)

छन्दः—पूर्ववत्।

२उ ३ १२ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ २
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सꣳ सृजामसि॥१०॥

(हिरण्यस्य यत्-वर्चः) सोने का जो तेज—सौन्दर्यरूप है "हिरण्यं हिरण्यनाम" [निघं० १।२] "हितं जनाज्जनम्" [निरु० २।१०] "सुवर्णे यद् वर्चो मयि" [शां० १२।१] (यत्-वा) और जो (गवाम्-उत) सूर्यकिरणों का वर्च—तेज चमकरूप है "सूर्यस्य वर्चसा वर्चस्वी भूयासम्" [काठ० ५।५] तथा वेदवाणियों का वर्च—तेज—ज्ञानरूप है "गौः-वाङ्नाम" [निघं० १।११] "गोषु यद्वर्चो मयि" [शांखा० १२।१] (सत्यस्य ब्रह्मणः-वर्चः) सत्यस्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा का जो वर्च—तेज ब्रह्मानन्दरूप है (तेन मा संसृजामसि) उससे मैं अपने को संसृष्ट करूं—संस्कृत करूं सुभूषित करूं "अस्मदोद्वयोश्च" [अष्टा० २।२।५९] 'धूयेक वचनं बहुवचनम्'।

सोने के तेज—सौन्दर्य, सूर्यकिरणों के तेज—प्रकाश, वेद-वचनों के तेज—ज्ञान, सत्यस्वरूप परमात्मा के तेज—ब्रह्मानन्द से मैं उपासक अपने को संस्कृत एवं सुभूषित करूं। मेरे शरीर में मेरे मस्तिष्क में मेरे मन में मेरे आत्मा में क्रमशः स्वास्थ्य सौन्दर्य, प्रकाश, ज्ञान, ब्रह्मानन्द प्राप्त हो ॥ १० ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

देवता—इन्द्रः (ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

छन्दः—त्रिष्टुप्।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र २ ३ १ २
सहस्तन्न इन्द्र तद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।
२ ३ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥

(विरप्शिन्-इन्द्र) हे महान् ऐश्वर्यवाले परमात्मन्! "विरप्शी-महन्नाम" [निघं० ३।३] (नः) हमें (तत् सहः) उस बल—बाहुबल को (ओजः) आत्मबल को (दद्धि) दे—प्रदान कर (अस्य महतः) तू इस महान् संसार का (ईशे हि) स्वामित्व—शासन करता है ही, सो बल और ओज रखता हुआ ही संसार पर शासन करता है, हम शरीर और मन पर शासन कर सकें (क्रतुं न स्थविरं नृम्णं वाजं च) प्रज्ञा दे "क्रतुः प्रज्ञानाम" [निघं० ३।९] तथा प्रज्ञा के समान स्थिरधन—मोक्षैश्वर्य को दे "नृम्णं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धननाम" [निघं० २।१०] और स्थिर अन्न—अमृतभोग—ब्रह्मानन्द को भी दे "अमृतोऽन्नं वाजः" [जै० २।१९३] एवं (वृत्रेषु) कामक्रोध आदि पापभावों के निमित्त "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] (नः सहना शत्रून् कृधि) हमें सहनेवाले और शमन करनेवाले करदे—बनादे "शत्रुः शमयिता" [निरु० २।१७]।

हे महान् ऐश्वर्यवन् परमात्मन् ! तू हमें बाह्यबल और आत्मबल दे जिसके द्वारा तू विस्तृत संसार पर शासन करता है हम संसार पर नहीं शरीर और मन पर शासन कर सकें, तथा प्रज्ञा भी दे प्रज्ञा के समान स्थिरधन—मोक्षैश्वर्य और ब्रह्मानन्द भी दे, कामक्रोध आदि पापभावों के निमित्त हमें सहन करने वाले संयमी और शमन करने वाले बनादे ॥ ११ ॥

ऋषिः—पूर्ववत् ।

देवता—गौः 'गावः' (स्तुतियां

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि विभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १२ २२ ३ ३ १ २
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त
॥ १२ ॥

(सहर्षभाः) हे स्तुतिवाणियो ! तुम ऋषभरूप आत्मा के साथ "इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय" [मै० ३।११।९] (सहवत्साः) मनरूप बच्चे के सहित "मन एव वत्सः" [श० ११।३।१।१] (द्व्यूध्नीः) ऐहिक सुख पारलौकिक मोक्षानन्द फल देने वाली (विश्वा रूपाणि विभ्रतीः) सारी कमनीय वस्तुओं को धारण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

करती हुई विराजमान रह (अयं यः) यह जो (उरुः पृथुः-लोकः-अस्तु) महान्—विस्तृत—विशाल मोक्षधाम है (इह) इस मोक्ष-धाम में (इमाः सुप्रपाणाः-आपः-स्त) यह प्रसिद्ध भरपूर पान करने के योग्य व्यापक प्रजापति परमात्मा है "आपो वै प्रजापतिः" [श० ८।२।३।१३] 'स्त-सन्ति' "इति छान्दसं रूपं वचनव्यत्ययो विसर्गलोपश्च च" ।

हे स्तुतिवाणियो ! तुम आत्मा के साथ तथा मनके भी साथ दोनों लोको में फल देनेवाली, संसार में भी सच्चा सुख और मोक्ष में भी शान्त आनन्द प्राप्त कराने वाली तुम हो तुम बढ़ती रहो अन्ततः तुम्हारे लिये महान् विस्तृत मोक्षधाम है जहाँ भलीभांति पान करने योग्य प्रजापति परमात्मा है जिसकी प्यास तुम्हें लगी हुई है जिसे पान करना तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य है ॥ १२ ॥

पञ्चम खण्ड

ऋषिः—शतं वैखानसः-ऋषयः (बहुत सारे अमृत आनन्द का विशेष खनन—खोज करनेवाले उपासक जन †)

देवता—अग्निः पवमानः (प्रेरणा देनेवाले अग्रणायक परमात्मा)

छन्दः—गायत्री ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

---

† "विखननाद् वैखानसः" [निरु० ३।१७]

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्ने) हे अग्रणेता परमात्मन् ! (आयूंसि पवसे) प्राणों को "यो वै प्राणः स आयुः" [श० ५।२।४।१०] प्रेरित कर "लिङर्थे लेट्" [अष्टा० ३।४।७] (ऊर्जम्-इषं च नः-आसुवः) अतः रसात्मक सूक्ष्मभोग को मोक्षरूप आयु का फल और स्थूल अन्नभोग तथा संसार में भौतिक प्राणों का फल अन्न हमारे लिये प्रादुर्भूत कर (दुच्छुनाम्) पापप्रवृत्ति को "यः पापं कामयते स वै दुच्छुना" [जै० १।९३] (आरे बाधस्व) दूर भगा "आरे दूर-नाम" [निघं० ३।२६]।

हे अग्रणायक परमात्मन् ! तू हमारे प्राणों को आगे आगे प्रेरित कर, भौतिकता से बढ़ते बढ़ते अमृतरूप धारण करें मोक्ष-धाम में, इस जगत् में स्थूल अन्नभोग को प्राप्त कराते हुए पुनः मोक्ष में अमृतरस को भी तो प्राप्त करा इस लोक की उस दुष्प्रवृत्ति को दूर भगा ॥ १ ॥

ऋषिः—विभ्राट् सौर्यः (सूर्यसमान अध्यात्म तेजवाला योगी)

देवता—सूर्यः † (उपासकों को अध्यात्म प्रकाशदाता परमात्मा)

छन्दः—जगती ।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद् यज्ञपतावविह्रुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥ २ ॥

---

† खण्ड के अन्त तक ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञपतौ) अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक के निमित्त (अविहृतम्-आयुः-दधत्) अविकलित—सरल जीवन को धारण कराने के हेतु (विभ्राट्) विशेष प्रकाशमान सब प्रकाशमानों में प्रकाशमान परमात्मा (बृहत् सोम्यं मधु) भारी उपासनारसवाला मधुपानक (पिबतु) पान करे—स्वीकार करे—करता है (यः-वातजूतः) जो मनसे प्रेरित प्रार्थित "वातो वा मनोवेति" [श० ५।१।४।८] (त्मना) आत्मभाव से—स्नेह से (प्रजाः-अभिरक्षति) उपासक प्रजाओं पर दया करता है (पिपर्ति) उनका पालन करता है (बहुधा विराजति) बहुत प्रकार से उनके अन्दर प्रकाशमान होता है।

अध्यात्मयज्ञ के यजमान उपासक को सरल जीवन को धारण करने के हेतु विशेष प्रकाशमान अध्यात्मप्रकाशदाता परमात्मा उपासकों द्वारा आत्मभाव से समर्पित मधुर उपासनारस को दया कर स्वीकार करता है तथा उनका पालन करता एवं उनको साक्षात् होता है ॥ २ ॥

ऋषिः—कुत्सः (स्तुतियों का कर्ता उपासक †)

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २र ३ १ २
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

† "कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानाम्" [निरु० ३।१२]

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जगतः-च-तस्थुषः-आत्मा) जङ्गम—चर चेतन का और स्थावर का—जड़ का आत्मा—विश्व का आत्मा परमात्मा (सूर्यः) ज्ञानप्रकाशस्वरूप—ज्ञानसूर्य (देवानां चित्रम्-अनीकम्) मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का अद्भुत श्रेष्ठ प्राण "अन प्राणने" [अदादि०] 'ततः-ईकन् प्रत्ययः' [उणा० ४।१७] तथा अग्रणायक "सेनाया वै सेनानीरनीकम्" [श० ५।३।१।१] (मित्रस्य वरुणस्य-अग्नेः-चक्षुः) मेरे प्राण का "प्राणो वै मित्रः" [तै० सं० ५।३।४।२] अपान का "अपानो वरुणः" [तै० सं० ५।३।४।२] और वाक्—वाणी का "अग्निर्वै वाक्" [जै० २।५४] प्रख्यापक—प्रकाशक (उदगात्) अहो मुझ उपासक—ध्यानी के अन्दर साक्षात् हो—हो गया (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्-आप्राः) मेरे ऊपर के अङ्ग मूर्धा को नीचे के अङ्ग कटि को और हृदयावकाश को ज्ञान जीवनगति प्रवृत्तियों से भर दिया है "भूमिः प्रभाऽन्तरिक्षमुदरं दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" [अथर्व० १०।७।३]।

चर अचर—जङ्गम जड़ का आत्मा परमात्मा स्वतः ज्ञान-प्रकाशस्वरूप ज्ञानसूर्य मुमुक्षुओं जीवन्मुक्तों का अद्भुत श्रेष्ठ मुख्य प्राण तथा श्वास उच्छ्वास और वाणी का प्रकाशक उपासक के अन्दर साक्षात् होता है पुनः मूर्धा हृदय और कटि को अपनी ज्ञान जीवनगति शक्तियों से भर देता है ॥ ३ ॥

ऋषिः—सार्पराज्ञी (वाक्शक्तिसम्पन्न व्यक्ति †)

छन्दः—गायत्री †† ।

---

† "वाग्वै सर्पराज्ञी" [कौ० २७।४]

†† खण्ड के अन्त तक ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसन्मातरं पुरः।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ ४॥

(अयम्) यह (गौः) स्तोता—उपासक "गौः स्तोतृनाम" [निघं० ३।१६] (पृश्निः) परमात्मज्योति का स्पर्श करने वाला—प्राप्त करने वाला उपासक आत्मा "पृश्निः संस्पृष्टा भासम्" [निरु० २।१४] (आ-अक्रमीत्) संसार में आया—आता है (पुरः-मातरं पितरं च-आसदत्) प्रथम माता और पिता को प्राप्त होता है पुनः (प्रयन्) प्रगति करता हुआ (स्वः) मोक्षधाम को पहुँचाता है।

यह स्तुतिकर्ता उपासक परमात्मज्योति को स्पर्श करने वाले प्राप्त करने वाला आत्मा—जीवात्मा संसार में अवतरण करता है प्रथम माता पिता को प्राप्त होता है, पिता को वीजभाव से माता को गर्भधारण से, पुनः उत्पन्न होकर जीवन में प्रगति करता हुआ—उन्नति करता हुआ नितान्त सुखस्थान मोक्षधाम को प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

छन्दः—पूर्ववत्।

३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
२उ ३ १र २र
व्यख्यन्महिषो दिवम्॥ ५॥

(महिषः-रोचना) महान् "महिषः-महन्नाम" [निघं० ३।३] 'रोचनः, आकारादेशश्छान्दसः' रोचमान—प्रकाशमान (अस्य)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जगत् के (अन्तः) अन्दर (चरति) प्राप्त हो रहा है (प्राणात्-अपानती) द्युलोक से पृथिवीलोकपर्यन्त "द्यावापृथिवी प्राणापानौ" [श० ४।३।२।१२२] (दिवं व्यख्यत्) मोक्षधाम को प्रकाशित करता है।

महान् प्रकाशमान परमात्मा इस जगत् के अन्दर द्युलोक से लेकर पृथिवी तक प्राप्त हो रहा है और मोक्षधाम को स्वप्रकाश से प्रकाशित कर रहा है ॥ ५ ॥

ऋषिः—पूर्ववत्।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
त्रिंꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥

(पतङ्गाय) मुक्त आत्मा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के लिये (प्रति वस्तोः-वाक्-धीयते) प्रतिदिन मेरे द्वारा स्तुति आधान की जाती है—समर्पित की जाती है (अह) क्या ही अच्छा है "अह-पूजायाम्" [अव्ययार्थनिबन्धनम्] (द्युभिः) अपनी ज्योतियों से मेरे अन्दर (त्रिंशत्-धाम) तीसों घड़ी (विराजति) विशेष भासित रहता है "राजृ दीप्तौ"।

आत्मा में प्राप्त होने वाले परमात्मा के लिये मुक्त उपासक-द्वारा प्रतिदिन स्तुति समर्पित की जाती है यह अच्छा है, वह पर-मात्मा भी अपनी ज्योतियों से तीसों घड़ी—दिनरात मुक्त उपासक के अन्दर विशेष भासित रहता है, मेरी स्तुति रिक्त नहीं जाती और वह भी दया न्याय नहीं त्यागता है ॥ ६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः† (मेधावी से सम्बद्ध अति मेधावी)

१ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
३
सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥

(यथा) जैसे (सूराय) सूर्य के आगमन को लक्ष्य कर—सूर्य के उदय हो जाने पर "सजूः सूराः.....सूर्यमेव प्रीणाति" [मै० ३।४।४] (अक्तुभिः-नक्षत्रा) रात्रियों के सहित बुध शुक्र आदि ग्रह तारे (अपयन्ति) दूर हो जाते हैं हट जाते हैं, ऐसे ही (विश्वचक्षसे) विश्वद्रष्टा परमात्मा को लक्ष्य कर उपासक (त्ये तायवः) वे चोरभाव अन्दर कुछ बाहर कुछ तथा छिपे काम आदि दोष "तायुः स्तेननाम" [निघं० ३।२४] दूर हो जाते हट जाते हैं "अत्र वाक्योपमालङ्कारः" ।

जैसे सूर्य के आगमन पर राते और तारे चले जाते हैं ऐसे ही सर्वद्रष्टा सर्वदर्शक परमात्मा के आने पर मनमें कुछ बाहर कुछ भाव तथा काम आदि गुप्तदोष चले जाते हैं ॥ ७ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
२ ३ २
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥

(अस्य केतवः) इस सूर्यरूप परमात्मा के केतु सुझाने वाले सङ्केतित करने वाले (रश्मयः) सर्वत्र व्याप्त गुण (जनान्-अनु) उपासक एवं मननशीलजनों के प्रति (अदृश्रन्) दिखाई पड़ते हैं

† खण्ड के अन्त तक ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यथा भ्राजन्तः-अग्नयः) जैसे जाज्वल्यमान अग्नियां दिखलाई पड़ती हैं ।

अहो इस सरणशील—व्यापनशील प्रकाशमान परमात्मा की ज्ञापक गुण रश्मियाँ उपासक एवं मननशीलजनों के प्रति दिखलाई पड़ रही हैं जैसे जाज्वल्यमान अग्नि की ज्वालाएं साक्षात् दिखलाई पड़ रही होती हैं ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥

(सूर्य) हे सर्वत्र सरणशील व्यापनशील परमात्मन् ! तू (तरणिः) मुमुक्षुओं को दुःखसागर से तरानेवाला है (विश्वदर्शतः) सबका दर्शनीय (ज्योतिष्कृत-असि) ज्ञानज्योति का करने वाला—देने वाला है (विश्वं रोचनम्-आभासि) समस्त प्रकाशवाले को तू ही प्रकाशित करता है—प्रकाश देता है ।

सर्वत्र व्यापनशील परमात्मा मुमुक्षु उपासकों को दुःखसागर से तरानेवाला, सबके दर्शन योग्य, अन्तःकरण में ज्ञानज्योति करनेवाला समस्त प्रकाश वाले पदार्थों का प्रकाशदाता है उसकी उपासना से ज्ञानप्रकाश तथा अमृत आनन्द को प्राप्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
३ २उ ३क २र ३ २
प्रत्यङ् विश्वᳬ स्वर्दृशे ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वः-दृशे) सुखदर्शन के लिये (देवानां विशः प्रत्यङ्-उदेषि) देवों—जीवन्मुक्तों की श्रेणि में आने वाले नियमित जीवनयात्रा करने वाले—परमात्मा में अपने को नियुक्त करने वाले मनुष्यों के सम्मुख परमात्मन् ! तू उत्साह से जाता है "नियुतो देवानां विशः" [काठ० २।१३] "विशः-मनुष्याः" [निघं० २।३] "नियुतो नियमनाद्वा नियोजनाद्वा" [निरु० ५।२७] (मानुषान् प्रत्यङ्) मनुष्यश्रेणी के उपासकों के सम्मुख भी उत्साह से आता है (विश्वं प्रत्यङ्) सबदर्शकवर्ग के सम्मुख भी उत्साह से आता है ।

हे व्यापनशील परमात्मन् ! तू महान् उदार है तू जीवन्मुक्तों के सम्मुख सुखदर्शन कराने उत्साह से आता है, उपासक मनुष्यों के सम्मुख भी सुखदर्शन कराने उत्साह से आता है, तथा सबही जनवर्ग के सम्मुख भी सुखदर्शन कराने उत्साह से आता है, तेरे यहां भेद नहीं यथायोग्य यथापात्र अपना सुखदर्शन तू देता ही है जितना तेरे दर्शन का उत्सुक तेरी ओर प्रवृत्त होने में कोई यत्नशील होगा उतना सुखदर्शक तेरा कर लिया करता है ॥१०॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
१ २ ३ १ २
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥

(पावक वरुण त्वम्) हे पवित्रकारक वरनेयोग्य वरने वाले परमात्मन् ! तू (येन चक्षसा) जिस उपकारदृष्टि से (जनान्-अनु भुरण्यन्तं पश्यसि) जन्यमान प्राणियों के भरण करते हुए जगत् को देखता है, उससे हम उपासकों को भी देख—देखता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र करने वाला वरनेयोग्य वरनेवाला व्यापनशील परमात्मा जन्यमान प्राणियों के भरण करते हुए जगत् को जिस उपकार या कृपादृष्टि से देखता है भोगप्रदानार्थ वैसे ही हम उपासकों के हेतु, अमृतसुखार्थ अपवर्ग को भी देख—देखता है ॥११॥

१र २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः।
२ ३ १ २
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥

(सूर्य) हे सरणशील—व्यापनशील परमात्मन् ! तू (द्याम्) द्युलोक को (रजः) अन्तरिक्ष को "रजसः····अन्तरिक्षलोकस्य" [निरु० १२।७] (पृथु) ठोस—पृथिवीपिण्ड को (अक्तुभिः-अहा) रात्रियों के साथ दिनों को—रात्रिदिनों को (मिमानः) निर्माण करता हुआ (जन्मानि पश्यन्) हम जन्मपाने वालों को दृष्टि में रखने के हेतु (उदेषि) उत्साह से प्राप्त हो।

व्यापनशील परमात्मा द्युलोक अन्तरिक्षलोक पृथिवीलोक—तीनों लोकों को तथा दिनरातों को निर्माण करता हुआ हम जन्मपाने वालों पर कृपादृष्टि रखता हुआ उत्साह से प्राप्त होता है या हम जन्मपानेवालों पर कृपादृष्टि रखने के हेतु इन सबका निर्माण करता है जिससे हम भोग अपवर्ग पासकें अतः हमें उसकी उपासना करनी चाहिए ॥ १२ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
१ २ ३ १ २
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

(सूरः) प्रेरक परमात्मा (सप्त) समवेत हुए "रूप समवाये"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भ्वादि०] (शुन्ध्युवः) प्राण 'आपः-प्राणाः' "आपोऽपि शुन्ध्युव उच्यन्ते" [निरु० ४।१६] "प्राणा वा आपः" [तां० ९।९।४] (रथस्य नप्त्यः) शरीररथ के न गिराने वाले सम्भालने वालों को (अयुक्त) नियुक्त किए हैं (ताभिः स्वयुक्तिभिः) उन स्वयुक्त किए जाने वाले प्राणों—प्राणप्रवन्धों से प्राप्त है ॥१३॥

३१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सप्त त्वा हरितो रथ वहन्ति देव सूर्य ।
३ १ २
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥

(विचक्षण सूर्य) हे सर्वद्रष्टा सरणशील—व्यापनशील परमात्मन् ! (सप्त हरितः) उक्त समवेत होने वाले तुझे ले आने वाले प्राण (रथे) मेरे शरीररथ में—हृदयसदन में (त्वा शोचिष्केशं वहन्ति) तुझ दीप्तज्ञान रश्मिवाले को ले आते हैं "केशा रश्मयः" [निरु० १२।२६]।

हे सर्वद्रष्टा व्यापनशील परमात्मन् ! ये समवेत हुए प्राण तुझे ले आने वाले मेरे शरीररथ में हृदयसदन में तुझ ज्ञानरश्मियों से दीप्त उपास्यदेव को ले आते हैं जोकि तूने देहरथ में जोड़े हैं जब तक देहरथ है तब तक तो तुझे मुझ तक ले आते हैं और जब शरीर से अलग होते हैं तब मुझे तुझ तक ले जाते हैं ॥१४॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ महानाम्न्यार्चिकः

ऋषिः—प्रजापतिः† (इन्द्रियों का स्वामी उपासक)

देवता—त्रैलोक्यात्मेन्द्रः†† (त्रिलोकी का आत्मा—विश्वात्मा ऐश्वर्यवान् परमात्मा)

३ १ २ ३ २ ३ १र २र ३ १ २
विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
१ २ ३ १ २
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरुवसो ॥१॥

(मघवन्) हे मोक्षैश्वर्यवाले परमात्मन् ! (विदाः) तू सब कुछ जानता है, अतः (गातुं विदाः) जीवन के मार्ग या गन्तव्य को प्राप्त करा (दिशः-अनुशंसिषः) आगे बढ़ने की दिशाओं को सुझा (पूर्वीणां शचीनां पते) शाश्वतिक प्रज्ञाओं—विद्याओं के स्वामिन् (पुरुवसो) बहुत ज्ञान धन वाले परमात्मन् ! (शिक्ष) उन शाश्वतिक प्रज्ञाओं को विद्याओं को ज्ञानधनों को मुझे प्रदान कर "शिक्षति दानकर्मा" [निघं० ३।२०]।

परमात्मा सर्वज्ञ है वेदत्रयी—समस्त शाश्वतिक विद्या का स्वामी है, मानव को जीवनयात्रा के मार्ग और गन्तव्य की दिशाएं भी सुझाता है विशेषतः उपासक का महान् पथप्रदर्शक बनता है ॥ १ ॥

---

† समस्तस्य महानाम्न्यार्चिकस्य ।

†† समस्तस्य महानाम्न्यार्चिकस्य ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ २उ ३ १ २ ३ २ १
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा ३ऽर्णांशुः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥

(प्रचेतन इन्द्र) हे सचेत करने वाले ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! (त्वम्) तू (आभिः-अभिष्टिभिः) इन हमारी प्रार्थनाओं से (स्वः-न-अंशुः) सुखमय—मोक्षधाम के समान तथा व्यापक होता हुआ तू (नः) हमारे (द्युम्नाय) यशोरूप स्वस्वरूप प्राप्ति के लिये "द्युम्नं द्योतते यशो वा" [निरु० ५।५] "यस्य नाम महद् यशः" [यजु० ३२।३] एवं (इषे) लौकिक अन्नादि इष्टसिद्धि के लिये भी (प्रचेतय) चेता—बोधित कर—करता है।

चेताने वाला मोक्षधाम के समान महान् परमात्मा हमारी प्रार्थनाओं से हमें चेताता है आध्यात्मिक यश परमात्मरूप स्वस्वरूप दर्शनार्थ तथा सांसारिक अन्न आदि इष्टसिद्धि के लिये भी चेताता है—बोध देता है ॥ २ ॥

३२उ ३ २ ३ १२ २र १ २ ३ २ ३
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
मꣳहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आयाहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

(एव हि) ऐसे ही (शक्र-उ) हे नितान्त सुख देने में शक्त—समर्थ परमात्मन् ! (राये) मोक्षैश्वर्य के लिये (वज्रिवः) हे ओजस्वी ! "वज्रो वा ओजः" [श० ८।४।१।२०] (वाजाय) अमृत अन्नभोग के लिये "अमृतोऽन्नं वै वाजः" [जै० २।१९३] (शविष्ठ वज्रिन्-ऋञ्जसे) हे अत्यन्त बलवन् ! ओजस्वी परमात्मन् ! तू हमें समर्थ बनाता है (आयाहि) आजा (पिब)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासनारस को पानकर—स्वीकार कर (मत्स्व) हम पर प्रसन्न हो ।

ऐसे ही सुखप्रदान में समर्थ परमात्मन् ! तू मोक्षैश्वर्य के देने को समर्थ है तथा हे ओजस्वी परमात्मन् तू अमृतभोग देने के लिये बलवन् परमात्मन् ! तू हमें समर्थ बनाता है हे प्रशंसनीयदेव तू हमारे हृदय में आ उपासनारस को पानकर—स्वीकार कर हमें सब प्रकार समृद्ध कर ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
१ २ ३ १ ३ १२ २र १ २
मꣳहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

(राये सुवीर्यं विदाः) मोक्षैश्वर्य के लिये संयतवीर्य प्राप्त करा (वाजानां पतिः) बलों के स्वामिन् (वशान्-अनुभुवः) अपने वशों में उन्हें अनुभावित कर (मंहिष्ठ वाजिन्-ऋञ्जसे) हे प्रशंसनीय बलवन् ! तू हमें समर्थ कर (यः) जो तू (शूराणां शविष्ठ) शूरवीरों में—प्रख्यातों में अत्यन्त बलवान् है ।

परमात्मा मोक्षैश्वर्य प्राप्त करने के संयम वाला वीर्य देता है वह समस्तबलों का स्वामी है उन्हें अपने वश किए हुए है वह प्रशंसनीय महान् है, हमें समर्थ बनाता वह शूरवीरों में प्रख्यात महान् है उसकी शरण लेना उसकी उपासना करना चाहिए ॥ ४ ॥

१र २र ३ १ २ ३ २उ ३ २
यो मꣳहिष्ठो मघोनामꣳशुर्न शोचिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मघोनां मंहिष्ठः-यः) धनवानों में अत्यन्तदानी जो परमात्मा है (अंशुः-न शोचिः) अंशुमान्—रश्मिवाले सूर्य के समान प्रकाशमान है (चिकित्वः) वह तू ज्ञानवन् परमात्मन् (नः-अभि नय) हमें ले चल (इन्द्रः-विदे) ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमें ज्ञान दे—देता है अतः (तम्-उ स्तुहि) हे मन तू उसकी स्तुति कर ।

धनवालों में अत्यन्तदानदाता परमात्मा ही है जो भोग भी देता है भोग के साधन भी देता है—सूर्यसमान तेजस्वी या प्रकाशमान है योगी के अन्दर उसका ही प्रकाश होता है वह ज्ञानवान् हुआ हमें ले जाता है "अग्ने नय" इस प्रकार हमें ले जाता है उस ऐसे परमात्मा की रे मन स्तुति कर ॥५॥

२ ३ २ ३२३ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
१ २ ३ १ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥

(शक्रः) शक्तिमान् परमात्मा (ईशे हि) नितान्त स्वामित्व करता है—शासन करता है (तं जेतारम्-अपराजितम्) उस पराजित न होने वाले विजयशील को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) हम आमन्त्रित करते रहें उपसनाद्वारा (स्व-नः-द्विषः) वह हमारी द्वेषभावनाओं को (अति स्वर्ष) बुरे प्रकार नष्ट करे "स्वृ उपतापार्थः" (भ्वादि) 'लिङर्थे लेट्' (क्रतुः-छन्दः-ऋतं बृहत्) कर्म, रक्षण, "छन्दांसिछादनात्" [निरु० ७।१२] ज्ञान बढ़े ।

शक्तिमान् परमात्मा हम पर स्वामित्व करे स्वामीरूप में विराजमान रहे आत्मरक्षा के लिये कभी न हारनेवाले सदा विजयशील को आमन्त्रित करते रहें वह हमारी द्वेषभावनाओं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सर्वथा मिटादे हमारी कर्मशीलता रक्षणशक्ति ज्ञानप्रवृत्ति को बढ़ाता रहे ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जतारमपराजितम् ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स नः स्वर्षदाति द्विषः स नः स्वर्षदाति द्विषः ॥ ७ ॥

(धनस्य सातये) मोक्षैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (अपराजितं जेतारम्-इन्द्रम्) पराजय से रहित सदाविजयशील ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (हवामहे) आमन्त्रित करते हैं (सः-नः द्विषः-अति स्वर्दत्) वह हमारी द्वेषभावनाओं को अति दूर करदे (सः-नः स्वर्दत्-अति द्विषः) वह द्वेषभावाना से हमें अति दूर करे—करता है ।

अपराजित जेता ऐश्वर्यवान् परमात्मा को मोक्षैश्वर्य प्राप्ति के लिये आमन्त्रित करते हैं जोकि हमारे से द्वेषभावना को हटा दे तथा हमें द्वेषभावना से हटा दे ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽᳪशुर्मदाय । सुम्न आधेहि नो वसो
३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १र २र
पूर्त्तिः शविष्ठ शस्यते । वशो हि शक्रो नूनं तन्नव्यᳪ
३ १ २
संन्यसे ॥ ८ ॥

(अद्रिवः) हे ओजस्वी परमात्मन् ! (ते पूर्वस्य) तुझ सनातन का (यत्) जो (अंशुः) ध्यानतरङ्ग—स्वरूप झांकी (मदाय) हर्ष प्राप्ति के लिये है (नः सुम्ने-आधेहि) हमारे सुख के निमित्त "सुम्नं सुखनाम" [निघं० ३।६] आधान कर—भलीभांति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाविष्ट कर (वसो शविष्ठ) हे वसानेवाले अत्यन्त बलवन्! तू (पूर्त्तिः शस्यते) कामनापूरण करने वाला प्रशंसित किया जाता है (नूनम्) निश्चय ही तू (वशी शक्रः) विश्व को वश-कर्ता समर्थ है (तत्-नव्यं संन्यसे) तिससे तुझ स्तुतियोग्य को हृदय में संस्थापित करता हूँ।

ओजस्वी परमात्मा सनातन अनादि है, ध्यानोपासनद्वारा उसकी दर्शनझांकी उपासक के हर्ष का निमित्त है, उसके सुखार्थ परमात्मा उसके अन्दर आधान करता है, वसाने वाले महाबलवान् कामनापूरक की स्तुति करनी चाहिए उस सबके वश करने वाले स्तुत्यदेव को हृदय में संस्थापित करना चाहिए ॥ ८ ॥

२ १र २र ३ १र २र
प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्यैषु ब्रवामहै।
२ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

(जनस्य-अर्येषु) जनवर्ग के स्वामियों राजाओं शासकों में "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" [अष्टा० ३।१।१०३] (वृत्रहन् प्रभो) हे पापनाशक "पाप्मा वै वृत्रः" [श० ११।१।५।७] प्रभु तू ही अर्य—राजा—शासक है सर्वथा स्वामिधर्म और पापविनाशन प्रवृत्ति तुझ में ही है, अतः (सम्ब्रवामहै) तेरी स्तुति करते हैं (यः) जो (शूरः) पराक्रमी (सखा) मित्र (सुशेवः) सुन्दर सुखदाता (अद्वयुः) अद्वितीय—अकेला (गोषु गच्छति) पृथिवी आदि लोकों में "इमे वै लोका गौः" [श० ६।१।२।३४] विभुगति से प्राप्त होता है।

मनुष्यवर्ग के राजाओं—शासकों में पापनाशक प्रभु तेरा जैसा नहीं है तू उन शासकों के भी पापों को अपने कृपा एवं दण्ड

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नष्ट करता है, तू मित्र और यथार्थ सुखदाता है पराक्रमी अद्वितीय अकेला समस्त पृथिवी आदि लोकों में विभुगति से प्राप्त हो शासन करता है तेरी स्तुति हम करते रहें ॥ ९ ॥

३ २   १   ३ १ २   ३ १ २
एवा ह्येऽ३ऽ३ऽ३व । एवा ह्यग्ने । एवा हीन्द्र ।
३ १र   २र   ३ १र २र
एवा हि पूषन् । एवा देवाः ॥ १० ॥

(एव हि-एव) हे परमात्मन् ! ऐसे ही कहे गुणों वाला है (एवं हि-अग्ने) ऐसे ही अग्निनाम से अग्रणेता परमात्मन् तू ही है (एव हि-इन्द्र) ऐसा ही ऐश्वर्यवाला इन्द्रनाम से तू है (एव हि पूषन्) ऐसा ही पुष्टिकर्ता पूषानाम से परमात्मन् तू है (एव हि देवाः) ऐसे ही दिव्यगुणों से युक्त तू भिन्नभिन्न देवनामों से कहा परमात्मन् तू ही है।

हे परमात्मन् ! इन मन्त्रों में उपासकों की वाणी में संसार में तेरी ही कीर्तन है कहीं पूर्णपुरुषनाम से तेरी पूर्णता स्मरण है, कहीं अग्निनाम से अग्रणीरूप में तेरा स्तवन है कहीं इन्द्रनाम से तेरे ऐश्वर्यवान् रूप का प्रशंसन है, कहीं पूषानाम से पोषणकर्ता के रूप में तेरी यशोगान है, कहीं बहुवचन में समस्त देवधर्मों वाला मानकर तेरी स्तुति है, इस प्रकार समस्त दिव्यगुणों वाले तुझ परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं करते रहें ॥१०॥

महानाम्न्यार्चिक एवं पूर्वार्चिक सामवेद आध्यात्मिक मुनिभाष्य ।
स्वामी ब्रह्ममुनि कृत सामवेद पूर्वार्चित भाष्य समाप्त ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० विश्वनाथ स्मृति संग्रह

वक्तव्य

अङ्गुलियाँ लिखने में अब असमर्थ होगईं, अपना पुस्तकसंग्रह नहीं अन्य पुस्तकालयों से यथेच्छ पुस्तकों का लाभ नहीं मिलता, प्रकाशक वेद की पुस्तक छपाने को तैयार नहीं फिर स्वयं ही छपानी पड़ती है। संन्यासेतर आश्रमों में मिट्टी के तैल लकड़ी गोबर से भोजन बनाने वाले स्वयंपाकी जनों के मध्य में रहने से ऐसे अनुसंधान कार्य एवं अध्यात्म साधनाएं नहीं बनती वे तो प्रातः चार बजे ही स्टोव आदि जलाना आरम्भ कर देते हैं, बड़े बड़े गुरुकुलों में अनेकों कार्यविभागों के होने से ठहरने को स्थानाभाव होता है, व्यक्तियों के छोटे छोटे गुरुकुलों आश्रममठों में उनके स्वामियों का एकाधिपत्य है उन्हें अन्य का रहना असह्य है† ये कठिनाइयां हैं। अतः सार्वदेशिक सभा की ओर से संन्यासाश्रम का होना आवश्यक है।

प्रेसकापीलेखनकार्यार्थ स्वेच्छया सहायता श्री चौधरी प्रतापसिंह जी (माडल टाउन, करनाल) ने प्रदान की इस उदारता के लिये उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

8164

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

† गुरुकुल झज्जर को छोड़कर।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Accession 101513

Class on

Cat on

Tag etc. Sharma 24.11.03

Checked

Any Other

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुक्त सम्मर्शः

स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड का रचित यह निरुक्त भाष्य कठिन से कठिन स्थल का भी सुगम ढंग से स्पष्टीकरण करता है इसे पढ़कर विचारशील विद्वानों को आश्चर्य मिश्रित हर्ष होगा, अन्य भाष्यकारों द्वारा उपेक्षित स्थलों को स्पष्ट करने पर विशेष ध्यान दिया है, उहापोह और खोज से पूर्ण है। इस पर उत्तर प्रदेश सरकार से पांच हजार रुपये पुरष्कार लेखक को मिला है। लम्बा साइज ९६८ पृष्ठ, पृष्ठों में पक्की जुजबन्दी पूरे कपड़े की जिल्द, मूल्य लागतमात्र १५) पन्द्रह रुपये।

मिलने का पता—
आर्य साहित्य मण्डल लि०
श्रीनगर रोड, अजमेर

वेदाध्ययन प्रवेशिका

महाविद्यालयों विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले वेद सूक्तों का हिन्दी भाष्य ऋग्वेदादि के ४० सूक्तों (५४२ मन्त्रों)के सुगम सप्रमाण अर्थ हैं, स्वाध्यायीजनों के लिये भी हितकर है। पूरे कपड़े की जिल्द ५०० पृष्ठ, मूल्य ५)।

मिलने का पता—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द भवन (रामलीला मैदान)
न्यू देहली १

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar